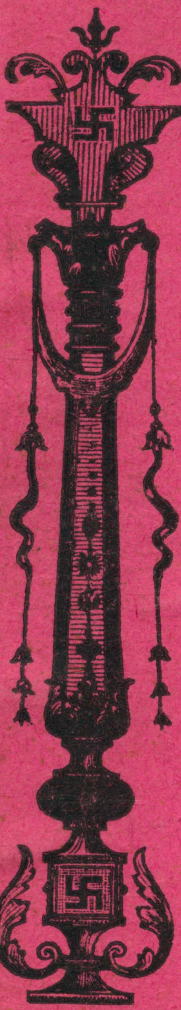
卐卐卐卐卐卐卐卐

जैनं जयति शासनम्



卐卐卐卐卐卐卐卐

समरसिंह

卐

महाजनो येन गतः स पन्थाः

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी.

श्री रत्नप्रभसूरिपादपद्मेभ्यो नमः

श्रीमदुपकेश गच्छाचार्य श्री सिद्धसूरि के उपदेश से
शत्रुञ्जय तीर्थ के पंद्रहवाँ उद्धार को करानेवाले
श्रेष्ठीगोत्रीय तिलंगदेशका स्वामी धर्मवीर

समरसिंह ।

लेखक,
मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

द्रव्य-सहायक—
श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला,
फलोधी (राजपूताना)

प्रकाशक,
श्री जैन ऐतिहासिक ज्ञान-भंडार,
जोधपुर (राजपूताना)

प्रति ५००] सर्व हक स्वाधीन. [विक्रम सं. १९८७

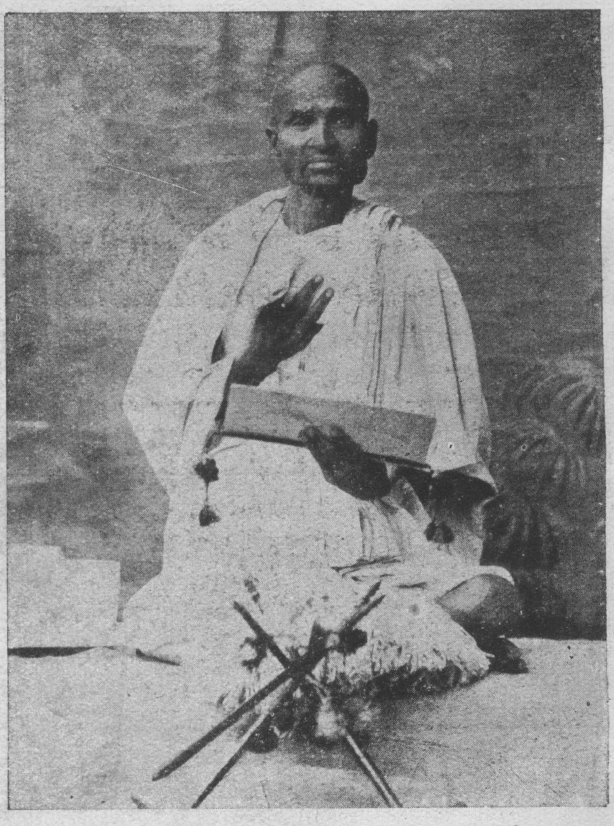
मूल्य १॥=)

प्रकाशक—
श्री जैन ऐतिहासिक ज्ञान-भंडार,
जोधपुर (मारवाड़)

Can be had of
JAIN ETIHASIK GYAN BHANDAR
JODHPUR.
(Rajputana)

मुद्रक—शाह गुलाबचंद लल्लुभाई
श्री आनंद प्रिन्टिंग प्रेस.
भावनगर—(काठियावाड़).

द्रव्य सहायक—
श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला
मु० फलोधी (मारवाड़).



प्रातःस्मरणीय परमयोगी निस्पृही, गुरुवर्य
मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज ।

समर्पण

श्रद्धेय, परमयोगी, शान्तमूर्ति, निस्पृही,
सद्गत गुरुवर्य
श्रीरत्नविजयजी महाराज

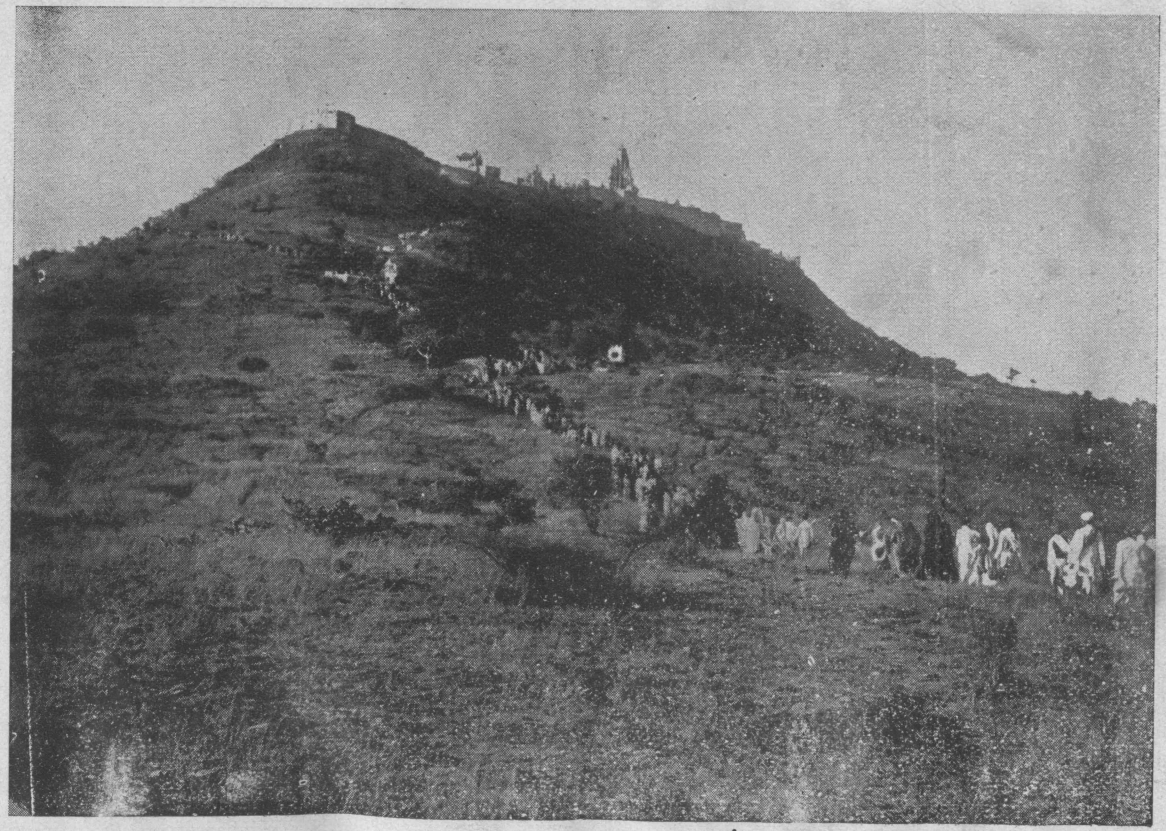
आपने मुझ भ्रमित को सद्मार्ग बताकर
उन्नत पथका पथिक बनाया
आप ही की पवित्र सेवामें
मेरी यह नगण्य कृति
भक्ति, आदर और श्रद्धापूर्वक
समर्पित है।

अनुचर,
मुनि ज्ञानसुन्दर.

कंतार चोर सावय
समुद्ददारिद्दरोगरिउरुद्दा
मुच्चंति अविग्घेणं
जे सेत्तुजं धरंति मणे

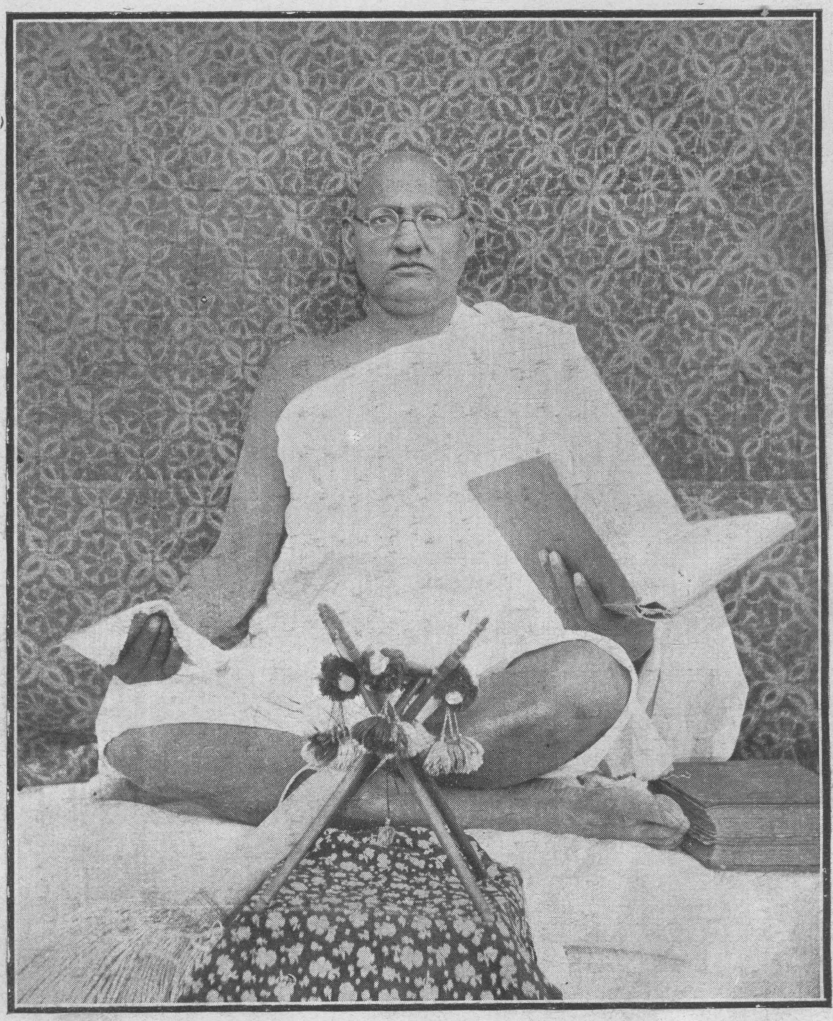
श्रीनाभिसूनो ! जिन सार्वभौम
वृषध्वज त्वन्नतये ममेहा
षड्जीवरक्षापर देहि देवी
भर्त्रार्चितं स्वं पदमाशुवीर

हे श्री नाभिराजा के पुत्र जिनों के चक्रवर्ति वृषध्वज श्री वृषभ ! आपको नमस्कार करने की मेरी इच्छा है। षट्काय के जीवों की रक्षा में तत्पर वीर—महावीर ! आप अपना देवों से अर्चित पद (मोक्ष) मुझे दीजिये।



तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय गिरि.

इस ग्रंथके लेखक



साहित्यसेवी—इतिहासप्रेमी—मुनिवर्यश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज.

लेखक का संक्षिप्त परिचय।

वाचकवृन्द !

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद इतिहासवेत्ता मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज का जन्म उपकेश वंश के श्रेष्ठि गोत्रीय वैद्य मुहत्ता घराने में मारवाड़ प्रान्तार्गत वीसलपुर ग्राम में श्री नवलमलजी की भार्या की कूख से वि. सं. १९३७ के आश्विन शुक्ला १० (विजयादशमी) को हुआ। आप का नाम 'गयवरचन्द्र' रखा गया था। बाल्यकाल में समुचित शिक्षा प्राप्तकर आपने व्यापारिक क्षेत्र में प्रवेश किया। सं० १९५४ में आपका विवाह हुआ था। देशाटन में आपने अनेक अनुभव प्राप्तकर साधुसंगत से भर जवानी में सांसारिक मोह को त्याग सं० १९६३ में स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षा ली।

साधु होकर आप ज्ञान, ध्यान और तपस्या में लीन हुए। आपने जिज्ञासुवृत्ति से सूत्रों का अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप आपने निस्पृह योगीराज रत्नविजयजी के पास ओसियां तीर्थपर सं० १९७२ की मौन एकादशी को संवेगी आम्नाय में दीक्षा ली। आप का व्याख्यान बहुत प्रभावोत्पादक होता है अतः थोड़े ही समय में आप लोकप्रिय हो गये। मुनिश्री परम पुरुषार्थी हैं, आप का प्रेम ज्ञान के प्रति अत्यधिक है। कठिन परिश्रम से आपने सैकड़ों पुस्तकें लिखी हैं जिनमें शीघ्रबोध के २५ भाग और 'जैन जाति महोदय' नामक विशाल ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय हैं।

आप के चतुर्मास प्रायः बड़े बड़े नगरों में हुआ करते हैं। समाज सुधारको भी आप आवश्यक और धार्मिक प्रवृति के लिये अनिवार्य समझते हैं। आपके सदोपदेश से कई संस्थाऐं स्थापित हुई हैं जिनसे जैन साहित्य की और मारवाड़ के युवकों की विशेष जागृति हुई है। पाली, लुणावा, सादड़ी, बीलाड़ा, पीपाड़, फलोधी, नागौर, लोहावट, झगडिया, सूरत, जोधपुर,

तिवरी, छोटी सादड़ी, गंगापुर, अजमेर, बीकानेर, कालू और सोजत में चातुर्मास करके मुनि महाराजने जनता का असीम उपकार किया है।

मुनिश्री रातदिन साहित्यप्रचार, धर्मप्रचार और समाजसुधार का प्रयत्न करते रहते हैं। आपकी ऐतिहासिक विषय में कितनी रुचि है यह आपको इस पुस्तक के पढ़ने से ही पता चल जावेगा। मुझे पिछले दो वर्षों से मुनिश्री से काफी सम्पर्क रहा है इस अर्से में मैंने ऐसे ऐसे अनुपम गुण आपश्री में देखे हैं जिनका विस्तृत वर्णन इस संक्षिप्त परिचय में मैं नहीं कर सकता।

मैं इस बात का विशेष गौरव है कि ऐसे महापुरुष का जन्म हमारे मरुधर प्रान्त में हुआ है। हमारी यह हार्दिक अभ्यर्थना है कि सदा इसी प्रकार आपश्री द्वारा हमारी समाज का निरन्तर उपकार होता रहे। आपके दिव्य सन्देश से मरुस्थल पूर्णतया आभारी है। हम भूले भटके अशिक्षित ज्ञान में पिछड़े हुए मरुधरवासियों के लिय आप पथप्रदर्शक एवं सर्वस्व प्रदीप गृह हैं।

[हरिगीतिका छंद]

मुनि ज्ञान के उपकार का, आभार हम पर है महा।
अनुभव रही कर आत्मा, पूरा नहीं जाता कहा।
साहित्य के परचार से, है लाभ अनुपम हो रहा।
इस देश मरुधर में 'विनोदी' ज्ञान का दरिया बहा॥

ता. १४-५-३१
टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल,
जोधपुर।

भवदीय—चरणकिंकर
श्रीनाथ मोदी "विशारद"
निरीक्षक.



मुनि श्री गुणसुन्दरजी महाराज.

प्रस्तावना

यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि साहित्य ही समाज का चक्षु है। साहित्य में भी ऐतिहासिक विषय का विशेष स्थान है। अतीत द्वारा भविष्य दिखाना ही इसका मुख्य काम है। संसार का प्रत्येक समाज अपने भविष्य को उज्ज्वल और उच्च बनाने के लिये चिंतातुर ही नहीं वरन् उत्साहपूर्वक तत्सम्बन्धी उद्योग करने में भी संलग्न है।

साहित्य वृद्धि के उद्देश्य से ही मैं यह छोटा सा ग्रंथ आप सज्जनों के समक्ष उपस्थित करने का साहस करता हूँ। जब से शत्रुंजय गिरि का कर सम्बन्धी पिछला आन्दोलन शुरु हुआ सारे संसार का ध्यान इस पवित्र तीर्थाधिराज की ओर सहज ही में आकर्षित हो गया है। भारत से बहुत दूर बैठे जैनेतर विदेशी विद्वानों को भी इस गिरिराज की महत्ता जानने के विषय में अभिरुचि उत्पन्न हुई है। वैसे तो प्रत्येक जैनी और अधिकांश भारतीय विद्वान इस तीर्थाधिराज की महत्ता से परिचित है ही परंतु हिन्दी भाषा-भाषी संसार में भी इस विषय पर दो वर्ष के अर्से तक खासी हलचल मचती रही। सामयिक पत्र पत्रिकाओं में भी तीर्थाधिराज के सम्बन्ध में कई लेख आदि प्रकाशित हुए।

हिंदी संसार की इस ओर रुचि देखकर ही मैंने शत्रुंजय तीर्थ के पंद्रहवें उद्धारक स्वनाम–धन्य साहसी समरसिंह का अनुकरणीय जीवन वृतान्त पाठकों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। समरसिंह को हुए लगभग ६०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं परन्तु आधुनिक पाठशालाओं आदि में पढ़ाई जानेवाली पुस्तकों में जो ऐतिहासिक कही जाती हैं ऐसे भारत–भूषण नररत्नों का नाम तक नहीं है। इस तरह के भारत हितैषी न मालूम और कितने व्यक्ति इस पिछले ऐतिहासिक युग में हो चुके हैं जिनसे आज अधिकाँश भारतीय विद्वान अपरिचित ही हैं।

पुस्तक पढ़ने से आप को भली भांति मालूम होगा कि धर्मवीर श्रीमान् समरसिंहने श्रीशत्रुंजय महातीर्थ के उद्धार करवाने में किस प्रकार की दिलचस्पी ऐसे विषम काल में ली थी। क्यों कि यों तो जगद्विख्यात शत्रुंजय तीर्थाधिराज के उद्धार करानेवाले तो इन के पहले भी चक्रवर्ती महाराज भरत तथा सगर और पांडवों जैसे वीर पराक्रमी आदि कई महापुरुष हो चुके थे परन्तु जिस समय धर्मद्रोही यवन सैकड़ो तीर्थ, हज़ारों मन्दिर और लाखों मूर्त्तियों को दुष्टतापूर्वक नष्ट भ्रष्ट कर रहे थे उस दुःखद समय में चारों ओर प्रतिकूल वातावरण के होते हुए भी अपने बौद्धिक बल और कार्य कौशल से इस महान् तीर्थ के कार्य को आदि से अन्त तक सफलतापूर्वक सम्पादन करने का श्रेय तो हमारे चरित्रनायक को ही है।

यह महान् प्रतिष्ठा गुरु–चक्रवर्ती उपकेशगच्छाचार्य श्री सिद्धसूरि की अध्यक्षता में हुई थी और इसका सब वर्णन इनके सुयोग्य लब्धप्रतिष्ठ शिष्यरत्न कक्कसूरिने अपनी नजरों से देखा हुआ ' नाभिनंदनोद्धार प्रबंध ' नामक ग्रंथ में लिखा है जो प्रतिष्ठा के निकट समय में अर्थात् वि. सं. १३८३ में ग्रथित हुआ था। अतः साहसी समरसिंह की जीवनी पूर्णरूप से ऐतिहासिक होने में किसी तरह के संदेह को स्थान नहीं मिल सकता।

इसके अतिरिक्त निवृति गच्छाचार्य श्री आम्रदेवसूरि भी इस प्रतिष्ठा के समय साधु समुदाय में सम्मिलित थे। इन्होंने प्रतिष्ठा के पश्चात् तुरन्त ही अर्थात् वि. सं. १३७१ में प्रस्तुत प्रतिष्ठा का संक्षिप्त विवरण ' समरा रास ' नामक गुर्जर भाषा में लिखा जो साधु समरसिंह की जीवनी पर और भी विशेष प्रकाश डालता है।

उपर्युक्त दोनों ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा उपकेशगच्छ चरित्र जो वि. सं. १३८३ में प्रस्तुत उपकेशगच्छाचार्य कक्कसूरि का बनाया हुआ है, एवं उपकेशगच्छ पट्टावली और कई शिलालेखों की सहायता से यह ' समरसिंह ' नामक ग्रंथ हिन्दी भाषा में संकलित किया गया है। चूंकि समरसिंह का घराना शुरु से ही उपकेश गच्छोपासक है इस कारण से समरसिंह की जीवनी के साथ उपकेशगच्छ का परिचय भी संक्षिप्ततया संकलित कर दिया गया है। उपकेशगच्छाचार्यों के अतिरिक्त जो अन्यान्य गच्छों

के आचार्य भी प्रतिष्ठा के समय उपस्थित थे उनके नाम तथा ऐतिहासिक काल का भी उल्लेख कर दिया गया है और अंत में समरसिंह के वंशजों का भी प्राप्य वर्णन इस ग्रंथ में जोड़ा गया है। इस ऐतिहासिक ग्रंथ को लिखने का हेतु प्रकट कर मैं इस भूमिका को समाप्त करता हूँ।

जैनश्वेताम्बर कान्फ्रन्स बंबई के मुखपत्र 'जैन युग' के प्रथम वर्ष के अंक संख्या ३, ५, ७ और ८ में साक्षर श्रीयुत् लालचंद भगवानदास गांधी बड़ौदानिवासी का 'तिलंग देश का स्वामी समरसिंह' शीर्षक धाराप्रवाह लेख प्रकाशित हुआ था जिस को पढ़ने से मेरी रुचि इस ओर बढ़ी और मेरी इच्छा हुई कि यह लेख ज्यों का त्यों गुजराती से हिन्दीभाषा में अनुवादित कर हिन्दीभाषा–भाषियों के समक्ष उपस्थित किया जाय जिससे हिन्दी संसार को सुविधा हो तथा मारवाड़ के ऐतिहासिक पुरुषों का चरित्र प्रकाश में आवे। मुझे इतने पर ही संतोष नहीं था, मैं इस खोज में था कि यदि समरसिंह की जीवनी पर प्रकाश डालने वाले मूल ग्रंथ प्राप्त हो जावें तो उत्तम हो। इधर संयोग भी शुभ मिल गया। पाटण के भंडार से 'नाभिनंदनोद्धार प्रबंध' नामक ग्रंथ प्राप्त हुआ जिसे साक्षर हर्षचन्द भगवानदास अहमदाबाद-वालोंने मूल गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित कराया है। साथ में ऊपर लिखी हुई सामग्री भी मिल गई जिस से प्रस्तुत ग्रंथ को लिखने में मुझे विशेष सुविधा हुई। अतः मैं बड़ौदानिवासी गांधीजी का आभार मानता हूँ इतना ही

नहीं वरन् यदि इस ग्रंथ को लालचंद भगवानदास के लेख का स्वतंत्र अनुवाद कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

विहार में प्रूफ समयानुकूल न मिलने के कारण तथा दृष्टिदोष के कारण कई अशुद्धियें प्रयत्न करते हुए भी रहजाना बहुत कुछ सम्भव है अतएव सुज्ञ समालोचकों से प्रार्थना है कि मुझे सूचित करें ताकि आगे की आवृत्ति में सब भूलें सुधारली जाँय।

यदि कोई और विद्वान् इस सम्बन्ध में लेखनी उठाता तो इससे भी अच्छा लिख सकता परन्तु दूसरों की इस ओर लेखनी उठती हुई न देख कर ही मैंने इस ओर यह प्रयास करने का साहस किया है। किसी कविने ठीक ही कहा है—

"मति अति ओछि ऊँचि रुचि आछी
चहिय अमी जग जुरै न छाछी"

जोधपुर
१४ मई १९३१

लेखकः—
मुनि ज्ञानसुन्दर

नोट—इस ग्रन्थ के समाप्त होते होते मुझे समरसिंह की जीवनी के संम्बध में और भी अधिक सामग्री प्राप्त हुई है जिस का मैं दूसरी आवृत्ति में ही उपयोग कर सकूँगा। —लेखक.

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
लेखकका परिचय	...
प्रस्तावना	...१
विषयानुक्रमणिका	....
चित्र सूची	...
कापरड़ा तीर्थ के लिये अपील	...
पहला अध्याय.	
शत्रुंजय तीर्थ	१
मंगलाचरण	१
शत्रुंजय महात्म्य	२
शत्रुंजय तीर्थ की प्राचीनता	३
शत्रुंजय तीर्थ के उद्धारक	५
जावड़शाह का उद्धार	७
शिलादित्य राजा का उद्धार	९
सिद्धराज जयसिंह का उद्धार	१०
महाराजा कुमारपाल की यात्रा	१२
वाहड़देव मंत्री का उद्धार	१३
भैंशा शाह का संघ	१३
वस्तुपाल और तेजपाल का संघ	१४
पूनड़शाह का संघ	१८
पेथड़शाह का संघ	१९
नेतसी का संघ	२०
गुजरात प्रान्त में यवनों के अत्याचार	२३
वि. सं. १३६९ का शत्रुंजय पर हमला	२४
उद्धार का प्रयत्न	२४
दूसरा अध्याय.	
श्रेष्टि गोत्र और समरसिंह	२८
भारत की दशा	२८
महावीर भगवान् का शासन	३०
साम्यता का प्रचार	३१
आचार्य स्वयंप्रभसूरि	३२
आचार्य रत्नप्रभसूरि और मरुभूमि	३३
उपकेशनगर में आगमन	३३
महाजन वंश बनाम उपकेश वंश	३४
महाजन वंश के मुख्य १८ गोत्र	३५
शुद्धि का प्रचार	३७
उपकेशपुर और महावीर जिनालय	३८
अष्टादश गोत्रों में श्रेष्टि गोत्र	४१
वैद्य मुहत्ता गोत्र	४२
वेसट श्रेष्टि	४३
किराटकूप नगर	४३
परमार जैत्रसिंह को वेसट का उपदेश	४५
वरदेव	५०
जिनदेव और आचार्य ककसूरि	५२

विषय	पृष्ट
नागेन्द्र और सञ्चक्षण	५३
पल्हनपुर	५५
आजड़शाह और गोसल	५८
आशाधर और देवगुप्तसूरि	६२
संघपति देशलशाह	६७
सहजपाल और देवगिरिपति रामदेव	६९
समरसिंह और पाटण	७२
चरितनायक का वंश वृत्त	७३

तृतीय अध्याय.

उपकेशगच्छ का संक्षिप्त परिचय	७४
पार्श्वनाथ भगवान्	७४
शुभदत्त गणधर तथा अन्य पट्टधर	७५
आचार्य स्वयंप्रभसूरि	७६
आचार्य रत्नप्रभसूरि	७७
आचार्य यक्षदेवसूरि	७७
आचार्य कक्कसूरि	७८
आचार्य देवगुप्तसूरि	७८
आचार्य सिद्धसूरि	७८
आचार्य कक्कसूरि	८०
आचार्य सिद्धसूरि और शिलादित्य	८०
आचार्य यक्षदेवसूरि	८१
आचार्य देवगुप्तसूरि	८३
आचार्य यक्षदेवसूरि	८४
कृष्णर्षि और उनका प्रभाव	८६
आचार्य कक्कसूरि	८९
आचार्य देवगुप्तसूरि	९१
देवऋद्धि श्रमण	९२
सोमाशाह	९२
उपकेशगच्छके मुनिगण	९४
आचार्य कक्कसूरि	९५
आचार्य सिद्धसूरि	९७
जम्बू नाग मुनि	९९
पद्मप्रभ और आचार्य हेमचन्द्रसूरि	१०१
आचार्य कक्कसूरि–डीडवाना	१०४
आचार्य हेमचन्द्रसूरि	१०६
योगशास्त्र और उसकी आलोचना	१०७
आचार्य कक्कसूरि और हेमचन्द्रसूरि	११०
आचार्य देवगुप्तसूरि	११३
आचार्य सिद्धसूरि	११४
उपकेशपुर पर यवनों द्वारा आक्रमण	११४
वीरभद्र की विजय	११५
देवचन्द्र और चन्द्रप्रभ काव्य	११६
आचार्य कक्कसूरि एवं देवगुप्तसूरि	११८
शत्रुंजयतीर्थ के पंद्रहवें उद्धारक के गुरुवर्य आचार्य श्री सिद्धसूरि	११८
अवशिष्ट संख्या १	
उपकेशगच्छचरित्रान्तर्गत आचार्यों की शुभ नामावली	१२०
अवशिष्ट संख्या २	
उपकेशगच्छाचार्यों द्वारा स्थापित महाजन संघ	१२५

विषय	पृष्ट
अवशिष्ट संख्या ३	
उपकेशगच्छाचार्यों के निर्माण किये हुए ग्रन्थ	१३३
अवशिष्ट संख्या ४	
उपकेशगच्छाचार्यों द्वारा कराई हुई जिनालयों और जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा	१३६
प्रतिष्ठा के प्रमाण शिलालेख	१३८
चतुर्थ अध्याय.	
शत्रुंजय तीर्थ के उद्धार का फरमान	१४९
पाटण	१४५
गुजरात में यवन साम्राज्य	१४६
अलपखान और समरसिंह	१४७
वि. सं. १३६९ का शत्रुंजय भंग	१४८
आचार्य सिद्धसूरि के समक्ष समरसिंह की भीष्म प्रतिज्ञा	१५१
अलफ्खान का फरमान	१५२
संघ सभा और मूर्त्ति के लिये विचार	१५६
संघ आज्ञा सिरोधार्य	१६१
पंचम अध्याय.	
फलही और मूर्त्ती	१६३
राणा महीपालदेव की उदारता	१६३
मंत्री पाताशाह और फलही	१६५
अष्टमतप और शासनदेवी	१६६
फलही की पूजा	१६९
शत्रुंजयपर मूर्त्ति का निर्माण	१७२
छट्ठा अध्याय.	
प्रतिष्ठाः—	१७५
आचार्य और संघपति	१७५
शुभ मुहूर्त का निर्णय	१७६
शत्रुंजय का संघ	१७७
जैनाचार्यों का संघ के साथ	१७८
संघपतियों के साथ यात्रा	१८०
खंभात और देवगिरि का संघ	१८४
तीर्थपति की यात्रा	१८५
प्रतिष्ठा की विधि	१८७
दस दिनों का महोत्सव	१९५
याचकों को दान	१९५
प्रार्थना	१९७
सातवाँ अध्याय.	
प्रतिष्ठा के पश्चात्	१९८
दान और इनाम	१९८
श्री गिरनार तीर्थ की यात्रा	२००
देशलशाह को पौत्र की वधाई	२०१
मुग्धराज और समरसिंह	२०१
देवपत्तन में प्रवेश	२०३
अम्बादेवी का चमत्कार	२०५

विषय	पृष्ट
दीव बंदर और मूलराजा	२०५
आचार्यश्री का भविष्य	२०६
मेरुगिरि को आचार्य पद	२०६
संखेश्वर पार्श्वनाथ	२०७
संघ का पुनः पाटण में प्रवेश	२०८
स्वागत की धूमधाम	

आठवाँ अध्याय.

आ० सिद्धसूरि का शेष जीवन

देशलशाह का शत्रुंजय संघ	२११
उपकेशपुर की यात्रा	२१२
देशलशाह का स्वर्गवास	२१२
आचार्य सिद्धसूरि का स्वर्गवास	२१३

नववाँ अध्याय.

समरसिंह का शेष जीवन २१५

आचार्य कक्कसूरि	२१५
समरसिंह और बादशाह	२१५
समरसिंह की उदारता	२१५
मथुरा और हस्तिनापुर की यात्रा	२१६
समरसिंह तीलंगदेश का सुबेदार	२१६
परोपकारिता	२१६
जैनधर्म का प्रचार	२१७
समरसिंह का स्वर्गवास	२१८

परिशिष्ट संख्या १

ऐतिहासिक प्रमाण	२१९

परिशिष्ट संख्या २

समरारास (मूल) आम्रदेवसूरिकृत	२३३

ज्ञान भंडारका सूचीपत्र. २५०

चित्र सूची.

१ शत्रुंजय तीर्थ
२ कापरड़े का मन्दिर
३ कापरड़े की मूर्त्ति
४ योगीराज रत्नविजयजी
५ मुनि ज्ञानसुन्दरजी
६ मुनि गुणसुन्दरजी
७ रत्नप्रभ सूरिजी
८ उपकेशपुर में जैनी बनाना
९ गिरनार गिरि



प्राचीन तीर्थ श्री कापरड़ाजी

इस मरसिंह की जीवनी को पढ़ने से आप को विदित होगा कि इन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन को किस पवित्र ध्येय पर चलाया था। तीर्थयात्रा का महत्व भी पाठकों को सम्यक् प्रकार से ज्ञात होगा। इसी विषय से सम्बन्ध रखती हुई एक अपील मुझ पाठकों के समक्ष रखूँ तो असंगत नहीं होगा।

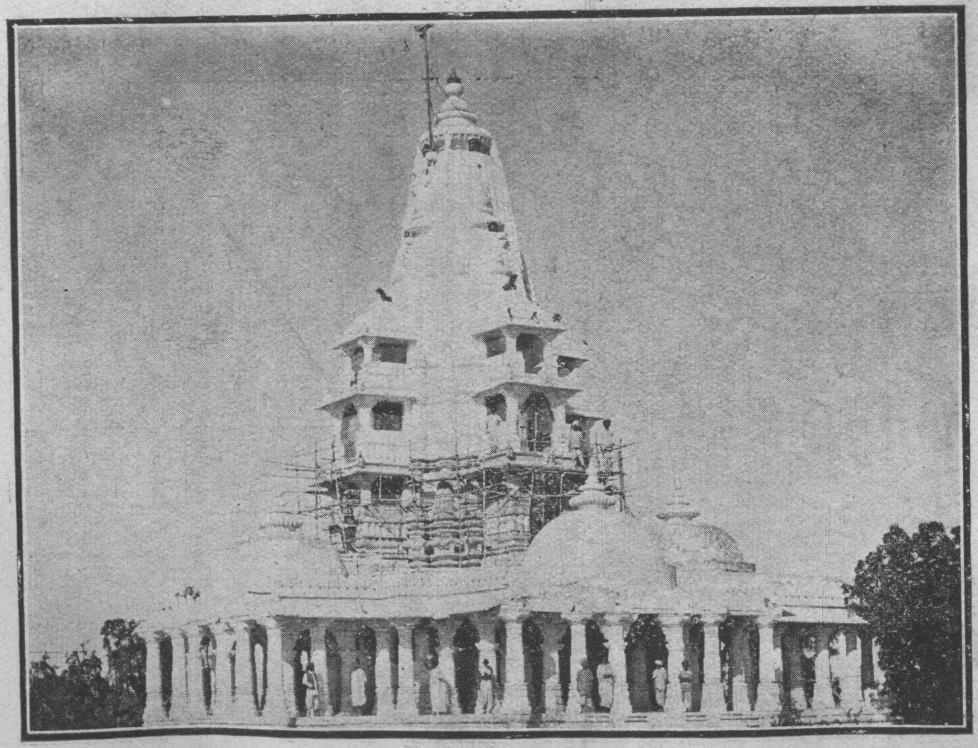
भारतवर्ष के वक्षस्थल में आई हुई मारवाड़ स्टेट की राजधानी जोधपुर नगर से २८ मील की दूरीपर श्री कापरड़ाजी नामक प्राचीन एवं चमत्कारिक तीर्थ अवश्य दर्शनीय है। यह रमणिक स्थान जोधपुर से बिलाड़े जानेवाली रेलपर आए हुए पीपाड़ सीटी स्टेशन से ८ मील तथा सेलारो स्टेशन से सिर्फ ५ मील की दूरी पर ही है। जहाँपर श्री स्वयंभू पार्श्वनाथ भगवान्, का गगनचुम्बी चौमुखी एवं चौमंजिला (राणकपुर ही की तरह का) सुन्दर और मनोहर मन्दिर है। इसकी कमनीय कांति की कलित कथा इस प्रान्त में सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसका सम्पूर्ण वर्णन आपको एक स्तवन से विदित होगा जो एक महात्मा का बनाया हुआ है और उपयोगी समझकर नीचे उद्धृत किया गया है। इसके पठन से आपको इस तीर्थ का सब हाल मालूम हो जायगा।

विशेष लिखने का प्रयोजन यह है कि इस भीमकाय विशाल मन्दिर का बहुतसा काम अधूरा है जिसको पूरा कराने के लिये बीस से पच्चीस लाख रुपये व्यय करने की आवश्यक्ता है। परन्तु वर्तमान समय को देखकर मैं यह अपील करता हूं कि धर्मप्रेमी पुरुषों को इसके जरूरी २ जीर्णोद्धार के कार्य में यथाशक्ति सहायता देकर अवश्य लाभ लेना चाहिये। प्रतिवर्ष माघ शुक्ला ५ का यहाँ मेला भी भरता है और स्वामीवात्सल्य भी हुआ करता है। आशा है कम से कम यहाँ की यात्रा का लाभ तो एकबार आप अवश्य लेंगे।

निवेदक—**मुनि ज्ञानसुन्दर।**

नोट—जोधपुरसे हमेशा मोटर सीधी कापरड़ाजी जाती है।

कापरड़ाजी तीर्थ



प्राचीन मन्दिर

श्री स्वयंभू पार्श्वनाथ भगवान् का गगनचुम्बी चौमुखा मन्दिर.



श्री स्वयंभू पार्श्वनाथ भगवान् की मनोहर मूर्त्ति.

[कापरड़ा तीर्थ]

"श्री कापरड़ा मन्डन श्री स्वयंभूपार्श्वनाथ स्तवन"

(चाल–चोकडी)

स्वयंभू पार्श्वनाथ, कापरड़े शुद्ध मनसे कोई ध्यावेगा। ज्ञानी फरमावे, वह भवभवमें सुख पावेगा ॥ टेर ॥ (मिलत) तेवीसवाँ जिनराज, जिन्होंका उज्ज्वल यशः जग छाया है। ऐसा नहीं जगमें, जिन्होंने पार्श्व गुण नहीं गाया है। नगर जैतारण ओसवंस में भण्डारी बड़भागी है। श्री भानुमल्लजी नाम आपका जैनधर्म्म के रागी हैं। सदाचार षट्कर्म्म को पाले, इष्टबली अति भारी हैं। हकूमतका पैसा, राजकी सेवा सदा हितकारी है। (छूट) एक दिन किसी दुष्टने, चुगली खाई दरबारमें। भण्डारीको पकड़ बुलावो, क्या कहेगा जवाबमें। जैतारणसे चालिया, असवार हुआ सब साथमें। देवदर्शन किया बिना, भोजन नहीं लेऊँ हाथमें। (शेर) आय कापरड़े गुरुसे आर्जि कीनी। भलों० ॥ फते होगी तुम जावो आशिष ज दीनी। वात सुनी नरनाथ कुर्व फिर दीनो ॥ भलो० ॥ आय कापरड़े गुरुको सरणो लीनो ॥ (दौड़) गुरु कृपा शिरधार। देव सहायता ले लार। निलनी गुल्म[1] आधार। बनाया मन्दिर श्रीकार २। माल चौमुखजी चार। सात खण्ड सुखकार। गगनसे करते हैं विचार। स्वर्ग मोक्ष के दातार ॥ (मिलत) चार मण्डप और रासपुतलियों, थंभा गिना न जावेगा।

---

१ पांचवाँ देवलोक में एक विमान का नाम है।

ज्ञानी० ॥ १ ॥ (मिलत) भवितव्यताका जोर जिसीसे देववचन विसराया है । रह्या काम अधूरा, फिर भी लक्ष्मी किनारा पाया है । देव कृपाकर भूगर्भसे बिम्ब चार प्रगटाया है । सुकुसुमकी वरसा, देखके संघ सकल हरषाया है । एक बिंब तो गुप्त हुवा. तीनोंको मन्दिरमें लाये हैं । सोजत कापरडे, अरु पीपाड़ नगरमें ठाये हैं । (छूट) संवत् सोलह इठान्तरे, वैशाख पूर्ण मासजी । मरुधर धीश 'गजसिंह' का जोधाणा में वासजी । जिसके विजयराज में, प्रतिष्टा हुई सुखकारजी । संघ चतुर्विध महोत्सव कीनो, वरत्या जय जयकारजी । (शेर) चौमुख प्रतिमा चार चतुर गति चूरे । भलो० । मूल नायक श्री पार्श्वनाथ सुखपुरे । संघमें हुवा आनंद मंगल गुणगावे । भलो० । मिल नर नारी का वृन्द पार्श्व मन ध्यावे ॥ (दौड़) बढ़ा पाप का प्रचार । छोड़ि सेव भक्ति सार । जिससे पुन्य गये परवार । हुवा संघ बैकार २ । छोड़ी मन्दिर की छाप । लगा अधिष्टायक का शाप । अन्न नहीं मिलता है धाप । देखो आशातना का पाप २ । (मिलत) आशातना का पाप जबर है परभव में दुःख पावेगा । ज्ञानी० ॥ २ ॥ (मिलत) प्रबन्ध नहीं सेवा पूजा का, तूट फूट होने लागी । जो सेठ लल्लुभाई के हृदय में भक्ति जागी । फिर विजय नेमिसूरीश्वर आये मारवाड़ में बड़ भागी । घांणेराव पीपाड़ जोधांणे, बीलाड़े भक्ति जागी । अहमदाबाद, पालडी, पाली, संघ एकठा हो सागी । जीर्णोद्धार कराया जिनका गुण गावे शासन रागी ॥ (छूट) उगणीसे पीचंतरे वसंत पंचमी बुधवारजी । हुई प्रतिष्टा आनंद में

संघ सदा जयकारजी। मूल नायक उत्तर दिशे पार्श्व स्वयंभू हितकारजी। शान्तिनाथ पूर्व दिशा दक्षिण अभिनंदन धारजी ॥ (शेर) मुनिसुव्रत महाराज पश्चिममें सोहे। भलो०। अब दूजे खण्ड कैं बीच ऋषभं मन मोहे। अरनाथं प्रभुवीरं नमिं जिन देवा। भलो०। पूजे इन्द्र नरेन्द्र करे प्रभु सेवा ॥ (दौड़) तीजे खण्ड के मझार। नौमि अनंतं हितकार नेमिं मुनिसुव्रतं आधार। पूजा करे नरनार २। चौथे खण्ड पार्श्वसारं। सुपार्श्वनाथं सुखकार। मुनिसुव्रतं करपार। शीतलनाथं का आधार २। (मिलत) चार खण्ड में सोलह प्रतिमा-दोय पासमें ध्यावेगा। ज्ञानी० ॥ ३ ॥ (मिलत) विजयवल्लभसूरि अरु मुनिवर यात्रा करने को आवे। धर्म्मशाल का उपदेश दिया, जहां संघ ठहर आनंद पावे। जैवंतराज मुनीम पूरा पार्श्वनाथ पूजे ध्यावे। भैम्बर यहाँ का पन्नालाल प्रभु गुण गावे। काम काज की अच्छी सफाई सराफि दिलमें लावे। फिर रामसिंह है पूनमचंद प्रभु पूजे भावे ॥ (छूट) पार्श्व शुभदत्त हरिदत्त सोहे आर्य्य समुद्र कैशीकुमारजी। श्रीमाल पोरवाल कीना स्वयंप्रभसूरि लो धारजी। रत्नप्रभसूरि थापिया, ओसवंस गोत्र अठारजी। यक्षं कर्कं देवं सिद्धसूरि उपकेश गच्छ आधारजी ॥ (शेर) कोरंट कमला द्विवन्दनिक गच्छ वाजे। कहतां न आवे पार गगन गुण गाजे। अविछिन्न चाले आज परम्परा सारी। जिनके उपकार की

---

१ तातेड़, बाफणा, करणावट, रांका, पोकरणा, सुरवा, भुरंट, श्रीश्रीमाल, वैदमुहता, संचेती, चोराड़िया, भटेवरा, समदड़िया देसरड़ा, कुंभट, कोचर, कनौजिया, लघुश्रेष्टि.

जैन कौम आभारी॥ (दौड़) मुनि ज्ञानसुन्दर मन भाया। जिसके गुणका पार न पाया। नगर पीपाड़ से आया। यात्रा कर ताँ सुख सवाया २। संवत् गुणीसे है सार। साल तैयासी मझार। वसंत-पंचमी सुखकार। पूजा से पावोगें भवपार २॥ (मिलत) खजवाना का वासी 'छोगमल' महात्मा पद को ध्यावेगा। ज्ञानी० ॥४॥

पुस्तक महात्म्य।

ज्ञान प्राप्ति का खास साधन पुस्तक है। स्कूलों से तो सिर्फ विद्यार्थी वह भी टाइम सर ही लाभ उठा सकते हैं परन्तु पुस्तकों द्वारा आप हमेशा ज्ञान सीख सकते हैं चाहें आप व्यापारी, अहलकार या कारीगर हों, चाहें आप जवान या बूढे हों। पुस्तकें हमारी गुरु हैं जो हमें विना मारे पीटे ज्ञान देती हैं। पुस्तकें कटु वाक्य नहीं कहतीं और न क्रोध करती हैं। ये माहवारी तनख्वाह भी नहीं मांगती। आप इनसे रात दिन घर बहार जहाँ और जब इच्छा हो काम लो ये कभी नहीं सोतीं। ज्ञान देने से इन्कार करना तो ये जानती ही नहीं। इनसे कुछ पूछो तो ये कुछ भी छिपाती नहीं। वार वार पूछो तो ये उकताती या झुझलाती नहीं। अगर आप इनकी बात एक वार ही में नहीं समझ सकते तो ये हंसती नहीं। ज्ञान की भण्डार पुस्तकें सब धनों में बहुमूल्य है। अगर आप सत्य, ज्ञान, विज्ञान, धर्म, इतिहास और आनन्द के सच्चे जिज्ञासु होना चाहते हैं तो पुस्तकों के प्रेमी बन प्रत्येक महीने में कुछ बचा कर पुस्तकें मंगाकर संग्रह करें।

उत्तम पुस्तकें मंगाने का पता—

जैन ऐतिहासिक ज्ञानभंडार, जोधपुर।

श्री जैन ऐतिहासिक ज्ञान सरोज नं. १.

॥ श्री रत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

श्रीमदुपकेशगच्छाचार्य श्री सिद्धसूरि के उपदेश से शत्रुंजय तीर्थ के पंद्रहवे उपकेशवंशीय उद्धारक श्रेष्टिगोत्रीय दानवीर नररत्न स्वनामधन्य

समरसिंह ।

पहला अध्याय।

[शत्रुंजय तीर्थ]

मयूरसर्पसिंहाद्या हिंस्रा अप्यत्र पर्वते ।
सिद्धा सिध्यन्ति सेत्स्यन्ति प्राणिनो जिनदर्शनात् ॥
बाल्येपि यौवने वार्ध्ये तिर्यग्जातौ च यत्कृतम् ।
तत्पापं विलयं याति सिद्धाद्रेः स्पर्शनादपि ॥

अर्थात्—मयूर, सर्प और सिंह आदि जैसे क्रूर और हिंसक प्राणी भी, जो इस पर्वतपर रहते हैं, जिनदेव के दर्शन से क्रमशः सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। तथा बाल, यौवन और वृद्धावस्था में या तिर्यंच जाति में जो पाप किये हों वे इस पुनीत पर्वत के स्पर्श मात्र से ही नष्ट हो जाते हैं।



संसारमें परम पुनीत तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय नामक महातीर्थ खूब ही विख्यात है। इस भवतारक तीर्थ की महिमा बड़े बड़े ऋषि महात्माओंने मुक्तकण्ठ से की है इतना ही नहीं वरन् खुद शासन नायक तीर्थंकर भगवानने भी अपने श्रीमुख से इस लोकोत्तम तीर्थ का सुन्दर और सारगर्भित विवेचन कर इस के विषय में जनता पर अच्छा प्रभाव डाला है और इसी कारण से अनेक ऋषि मुनियोंने इस पवित्र तीर्थ की शीतल छाया में चातुर्मास में या शेषकाल में रहकर दुस्तर तपश्चर्या और ज्ञान ध्यान कर मोक्ष पद को प्राप्त किया है। इस शरणागत पालक तीर्थ के परमाणु तो इतने स्वच्छ और पवित्र हैं कि श्रद्धासहित व भक्तिपूर्वक दर्शन और स्पर्शन करनेसे ही भव-भवान्तरों के दुष्ट पापपुञ्ज सहज ही में नष्ट हो जाते हैं। यही कारण था कि पूर्वजमाने में असंख्य श्रावकवर्ग लाखों और क्रोड़ों का द्रव्य व्यय कर बड़े बड़े प्रभावशाली संघ सहित इस दीनोद्धारक तीर्थ की यात्रा कर स्व और परात्माओं का सहज ही में कल्याण किया करते थे तथा आज भी अनेक भाग्यशाली जन अपना कल्याण कर रहे हैं। इन्द्र नरेन्द्र चक्रवर्ती और अनेक दानी मानी नररत्न दानवीरोंने विपुल द्रव्य खर्च कर इस अलौकिक तीर्थ के उद्धार करवा के अपनी आत्मा को उज्ज्वलतर किया। इन सब बातों से प्रत्यक्ष सिद्ध है कि इस तीर्थ की महिमा

अपरंपार है। यही कारण है कि जैन समाज चिरकाल से इस तीर्थ पर दृढ़ श्रद्धा और अपूर्वभक्ति स्थिर रखे हुए है। केवल श्वेताम्बर[1] ही नहीं अपितु दिगम्बर[2] भी इस परम पुनीत तीर्थक्षेत्र की पूज्यदृष्टि से सेवा, भक्ति और उपासना करते हैं तथा इस के हित के लिये तन मन धन और सर्वस्व तक अर्पण कर निज आत्महित साधन में तत्पर रहते हैं।

शत्रुंजय तीर्थ की प्राचीनता—

यों तो इस पवित्र तीर्थ को शाश्वता माना गया है और वर्तमान अंगोपांग सूत्रों में भी इसकी प्राचीनता के कई उल्लेख मिल सकते हैं। श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के पाँचवे अध्ययन में इस तीर्थ को 'पुंडरिक गिरि[3]' के नाम से पुकारा गया है। यह नाम आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के प्रथम शिष्य 'पुंडरिक गणधर' के नामकी स्मृति का द्योतक है। इस उल्लेख से यह विदित होता है कि भगवान श्री ऋषभदेव के शासन काल में भी यह तीर्थ परम पूजनीय था। यह तीर्थ उस समय से भी पहले का है कारण कि भरतचक्रवर्तीने स्वयं इसका उद्धार कराया था। बादमें बड़े २ देवेन्द्रों तथा नरेन्द्रोंने स्वात्मोद्धार के हेतु इस तीर्थ के उद्धार करवाये और शान्तिनाथ

---

१ शत्रुंजय महात्म्य और शत्रुंजय कल्पादि ग्रन्थों को देखिये।

२ निर्वाण काण्ड नामक ग्रन्थ देखिये।

३ पुडरीए पंच कोडीओ से तुज्ज सिहरे समागओ।
अट्ठ कम्म रय मुक्का तेण हुतिआ पुडरीए(आ० भि०)

भगवानादि असंख्य मुनियोंने इस पर चातुर्मास कर मोक्ष पद प्राप्त किया तथा बावीसवें[1] तीर्थंकर श्री नेमीनाथ के शासन काल में थावच्चा पुत्राचार्य १००० मुनियों सहित[2] और शुक्राचार्य भी १००० मुनियों सहित[3] तथा सेलगाचार्य भी ५०० मुनियों सहित[4] इस पवित्र तीर्थ पर सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर गये । पाँचो[5] पाँडव और गौतमस्वामादि अनेक मुनिवरोंने इस तीर्थपर पधार कर मुक्ति प्राप्त की । इत्यादि प्रमाण इस तीर्थ की प्राचीनता को सिद्ध

---

१ तराणं से थावच्चापुत्ते अणगार सहस्सस्सं सद्धि सं. परिवुडे जेणेव पुडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छइ २ पुंडरीयं पव्वयं सणियं २ दुरू इति २ मेघ घण सन्निवासं देव सन्निवासं पुढवि सिला पट्टयं जाव पाओवगमणंणुवन्ने+++सिद्धे बुद्धे जाव पहिणे—

(श्रीज्ञातासूत्र अध्ययन ५ वाँ ।)

२ तराणं से सुए अणगारे अन्नया कयाइं तेण अणगार सहस्सेणं सद्धिं सं परिवुडे पुव्वाणु पुर्त्वि चरमाणे गामाणुगामं विहार माणे । जेणेव पुंडरीए पव्वए-जाव सिद्धा बुद्धा मुत्ता अंतगड़ा— (श्री ज्ञातासूत्र अध्ययन ५ वाँ ।)

३ तएणं ते सेलम पामोक्खा पंच अणगार सया बहुणि वासाणि सामन परियागं पाउणित्ता जेणेव पुंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जहेव थावच्चा पुत्ते तहेव सिद्धा । (श्री ज्ञातासूत्र अध्ययन ५ वाँ ।)

४ जेणेव सेतुज्जे पव्वए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सेतुज्जे पव्वयं सणियं २ दुरुहइ २ त्ता जाव कालं अणवकं खमाणा विहरंति तएणं ते जुहिट्ठिल पामोक्खा पंच अणगारा × × × (श्री ज्ञातासूत्र अध्ययन १६ वां).

५ तएणं से गोयम अणगार थेराणं । सद्धि सेतुज्जे पव्वए × × × जाव सिद्धा × × इसी प्रकार आठरहवें अध्ययन का पाठ है ।

(श्री अंतगडदशांग सूत्र १ ला अध्ययन)

करने में काफी हैं। भद्रबाहुस्वामी कृत आचारांगसूत्र की नियुक्ति[1] में यह उल्लेख है कि इस तीर्थ की यात्रा करने से दर्शन की शुद्धि होती है। इसके अतिरिक्त शत्रुंजय महात्म्य[2] और शत्रुंजयकल्प[3] आदि ग्रंथो में इस तीर्थ की प्राचीनता के प्रचुर प्रमाण प्राप्त हो सकते हैं। अतः इस तीर्थ की प्राचीनता में किसी भी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं मिल सकता। सर्वदा से जैनी इस तीर्थ की सेवा और उपासना करते आए हैं और अब भी वर्तमान में करते हैं।

शत्रुंजय तीर्थ के उद्धारक और उपासक—

उपर्युक्त प्रमाणों से जब यह सर्वथा सिद्ध है कि यह तीर्थ बहुत ही प्राचीन है तब यह भी स्वयंसिद्ध है कि इतने लम्बे अरसे तक इस तीर्थ की एक ही प्रकार की नवीनता नहीं रह सकती। समय समय पर इस तीर्थ के उद्धार भी होते रहे हैं। इस अवसर्पिणी काल की अपेक्षा प्रस्तुत महान् तीर्थ के उद्धार करनेवाले बड़े बड़े कई भाग्यशाली महापुरुष हो गये हैं जिन्होंने यह कार्य करके अपने नाम को आज पर्यंत विश्वविख्यात कर लिया। भरत और सागर[4] सदृश चक्रवर्ती तथा रामचन्द्र और पाण्डव

---

१ आचारांगसूत्र द्वितीय स्कन्ध पंद्रहवां अध्ययन की निर्युक्ति देखिये.

२ वि. सं. ४७७ में धनेश्वरसूरि द्वारा रचित शत्रुंजय महात्म्य देखिये.

३ भद्रबाहुसूरि वज्रस्वामी और पादलिप्तसूरि रचित संक्षिप्त शत्रुंजयकल्प देखिये।

४ 'भूमीन्दुः सगरः प्रफुल्लगरखदामरामप्रथः—श्री रामोऽपि युधिष्ठिरोऽपि च

जैसे प्रबल पराक्रमी इस तीर्थ के उद्धारक हो चुके हैं जिसके प्रमाण जैनशास्त्रों में स्पष्टतया मिल सकते हैं। आधुनिक समय में यद्यपि ये महापुरुष अनैतिहासिक समझे जाते हैं पर जैसे जैसे इतिहास की सोध और अनुसंधान होते जावेंगे वैसे वैसे इस विषय पर भी प्रकाश पड़ता जायगा। जिन महापुरुषों[1] के नाम निशान तक हम नहीं जानते थे, इतिहास की आधुनिक खोज से, उन महापुरुषों के नाम आज विश्वविख्यात हो रहे हैं। जैनशास्त्रों में प्रमाणिक पुरुषों द्वारा लिखे हुए व्यक्ति यदि इतिहास सिद्ध हो सर्वोच्च स्थान प्राप्त करें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती यदि आगे चलकर हम ऐतिहासिक युग की ओर दृष्टिपात करते हैं तो इस पवित्र तीर्थ के उपासकों और उद्धारकों की महता और प्रभुता के इतने प्रमाण मिलते हैं कि यदि उन सब प्रमाणों को संग्रहित कर इस जगह लिखा जाय तो वे प्रमाण ही एक स्वतंत्र ग्रंथ की सामग्री के बराबर हो जांय और यह बात वास्तव में है भी ठीक। क्योंकि मरूभूमि के नरेश उपलदेव[2], सिन्ध सम्राट महाराजा रुद्राट[3], भारत सम्राट श्री चन्द्रगुप्त मौर्य, त्रिखण्ड

शिलादित्य स्तथा जावडिः। मन्त्रीवाग्भटदेव इत्यभिहिताः शत्रुंजयोद्धारिण-स्तेषामचलतामियेष सुकृतीयः सद्गुणालङ्कृतः॥'

बालचन्द्रसूरिकृत वसंतविलास (गा. ओ. सीरीज से प्रकाशित) के सर्ग १४, श्लो० २३।

१ महामेघवाहन खारवेल और कनिष्क वगैरह।

२ उपकेश गच्छ पट्टावली देखिये।

३ जैन जाति महोदय प्रथम खंड के पांचवे प्रकरणको पढ़िये।

भुक्ता सम्राट सम्प्रति[1] महामेघ वाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल, देशोद्धारक शालीवाहन, और न्यायप्रिय महाराजा विक्रम प्रभृति बड़े बड़े नृप तथा बड़े बड़े धनी मानी दानी सेठ साहूकार आदि ४० क्रोड़ जन समुदाय इस पवित्र तीर्थ की शीतल छत्रछाया में रह अपने आत्मकल्याण में निरत रहता था। कइयोंने बड़े बड़े संघ निकाल कर इस तीर्थ की यात्रा की थी। इस के उद्धार आदि कराने में इतना विपुल द्रव्य व्यय किया गया कि जिसकी गिनती लगाना हमारे लिये तो क्या बरन् बृहस्पति आदि देवताओं के लिये भी कठिन है। जैनों का ऐसा कोई वंश, कुल, जाति या गोत्र न होगा जिस के व्यक्तियोंने प्रचुर द्रव्य व्यय कर संघ निकाल कर इस तीर्थ की यात्रा का अपूर्व लाभ न उठाया हो। यात्रा के साथ साथ भक्ति कर के अपने मानव जीवन को सबने सफल किया था।

विक्रम सं० १०८ में भावड़शाह के एक पुत्ररत्न जावड़शाह[2] हुए हैं। भावड़शाह स्वयं भी एक ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं जिन्हों-

---

१ संपइ-विक्कम-बाहड-हाल-पालित दत्तरायाइ ।
जं उद्धरिहिंति तयं सिरिसत्तंजयं महातित्थं ॥-धर्मघोषसूरिकृत शत्रुंजयकल्पसे ।

२ " विक्रमादित्य तस्तीर्थे जावडस्य महात्मनः । अष्टोत्तर शताब्दान्ते भावि न्युद्धृतिरुत्तमा ॥ " धनेश्वर सूरिकृत शत्रुंजय महात्म्य के सर्ग १४ का श्लो० २८० अष्टोत्तरे च किल वर्षशते व्यतीते श्री विक्रमादथ बहु द्रविण व्ययेन । यत्र न्यवीविशत जावडिरादिदेवं श्रीपुण्डरीक युगलं भवभीतिभेदि-वि० सं० १५१७ में भोज-प्रबंध वि० रचनेवाले रत्नमंदिरगणिन्दी कृत उपदेश तरंगिणी (पृ. १३२)

ने विक्रमादित्य को अपनी वीरता और उदारता से प्रसन्न कर मधुमति (महुआ) सहित बारह ग्राम बत्तीस में प्राप्त किये थे। उन्हीं भावड़शाह के पुत्ररत्न जावड़शाहने आचार्य श्रीवज्रस्वामी के सदोपदेश से क्रोडों रुपये व्यय कर इस तीर्थ के उद्धार को कराया और उन्हीं आचार्य श्रीवज्रस्वामी से पुनः प्रतिष्ठा करवाई। यद्यपि यह समय दुष्काल का था तथापि गुरु कृपा से जावड़-शाहने इस कार्य को कुशलता से निर्विघ्नतया सम्पादन कर अनंत पुण्योपार्जन किये। जिनकी धवल कीर्ति इस समय में भी विद्यमान है।

जैनाचार्य श्री पादलिप्तसूरि भी एक ऐतिहासिक पुरुष हैं। ये आचार्य प्रतिष्ठनपुर, भडौंच, मान्नखेड और पाटलीपुत्र आदि नगरों के राजालोगों के धर्माचार्य भी थे। आप द्वारा विरचित "तरंगवती" नामक कथानक ऐतिहासिक साहित्य में आदर की

---

१ एवं च सव्वं कुसलत्तणेण विक्खायकित्ती पालित्तयसूरी वंदिऊ–णुप्पयंत–सत्तुंजया इतित्थाणिगओ मण्णखेडपुरं। भद्रेश्वरसूरिकी प्रा० कथावली से (पाटणकी ताड़पत्र की प्रति का पृष्ठ २९१ वां)।

आगमोदय समिति सूरत से प्रकाशित अनुयोगद्वार सूत्र के पृष्ठ १४९ वें में 'तरंगवइकारे' लिखा हुआ है। इसी प्रकार पंचकल्पचूर्णि नामक ग्रन्थ में भी इस का नाम आया है। वह भी इसी 'तरंगवती' की ओर ही संकेत होगा।

इस के अतिरिक्त सं० ९२५ में रचे गए महापुरिसचरिय नामक ग्रन्थ के रचयिता आचारांग सूत्रकृतांग वृत्तिकार श्रीशीलंगाचार्यने अपने उस ग्रंथमें 'तरंगवती' ग्रंथ की प्रशंसा की है।

दृष्टि से देखा जाता है तथा यह ग्रंथ खूब प्रसिद्धी भी पा चुका है। इस ग्रंथ सम्बन्धी ऐतिहासिक प्रमाण भी प्रचुरता से प्राप्त हुए हैं। आप श्री सिद्धयोगी नागार्जुन के भी गुरु थे और नागार्जुनने अपने गुरु (पादलिप्तसूरि) के स्मारकरूप श्रीशत्रुंजय गिरिराज की तलहटी में 'पालीताना' नामक नगर बसाया। यह नगर आज पर्यंत भी विद्यमान है। भद्रेश्वरसूरि विरचित कथावली में उल्लेख है कि पादलिप्तसूरि आचार्यने श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की।

जावड़शाह के उद्धार के पश्चात् सौराष्ट्र प्रान्त में बौद्धों का आना प्रारम्भ हुआ जिस के परिणाम स्वरूप जहाँ तहाँ बौद्धों की ही प्राबल्यता दृष्टिगोचर होने लगी। बौद्धों का जोर अन्तमें इतना वृद्धिगत हुआ कि श्रीशत्रुंजय तीर्थ भी उनके हस्तगत हो चुका था। यह समय जैनों के लिये सचमुच अति विकट था किन्तु उस गिरी हुई दशामें भी बड़े बड़े दिग्विजयी आचार्य प्रवर अन्यान्य प्रान्तों में विहार कर रहे थे। वह दशा अधिक दिनोंतक नहीं रही। समयने पुनः पलटा खाया। वि. सं. ४७७ की बात है कि चन्द्रगच्छीय आचार्य श्री धनेश्वरसूरिने सौराष्ट्र प्रान्त में पदार्पण कर वल्लभी नगरी के राजा शिलादित्य को उपदेश द्वारा जैन बना के शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करवाया और शिलादित्य

---

१ " सिरिसत्तुंजयतलहट्टियाइ नागज्जुणेण निम्मवियं। सूरिणं नामेणं सिरिपालित्तय पुरं तइया ॥ "

—वि० सं० १४४२ में श्रीसंघतिलकाचार्य विरचित तथा दे० ला० फंड सूरत द्वारा प्रकाशित सम्यकत्वसप्ततिवृत्ति के पृष्ठ १३७ वें से

राजा के आग्रह से " शत्रुंजय महात्म्य " नामक ग्रन्थ बनाया जो आज भी मौजूद है और पं० हीरालाल हंसराज द्वारा मुद्रित भी हो चुका है । तथा उपकेशगच्छ चारित्र से यह भी पता मिलता है कि उपकेशगच्छीय आचार्य सिद्धसूरिने भी वल्लभी नगरी में पधार कर राजा शिलादित्य को प्रतिबोध देकर शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करवाया । इतना ही नहीं बरन् शिलादित्यने प्रत्येक वर्ष के लिये चातुर्मासिक और पर्युषण जैसे पर्व के दिनों में गिरिराज की यात्रा कर अठाई महोत्सव करने की प्रतिज्ञा ली थी, एवं महाराजा गोसल और आमराजा वगैरहने इस पुनीत तीर्थ की यात्रा पूजा कर आत्मकल्याण किया था ।

सुप्रख्यात गुर्जेश्वर सिद्धराज जयसिंहने[२] भी इस तीर्थ की

---

१ तेषां श्री ककसूरीणां शिष्या. श्रीसिद्धसूरयः
वल्लभी नगरे जग्मु र्विहरंतो महीतले
नृपस्तत्र शिलादित्यः सूरिभिः प्रतिबोधितः
श्रीशत्रुंजय तीर्थेश उद्धारान् विदधं बहून्
प्रतिवर्षे पर्युषणे स चतुर्मास त्रये
श्रीशत्रुंजय तीर्थेगत यात्रायै नृपरुत्तमः ।

(वि. सं. १३९३ का लिखा उ० चारित्र के श्लोक ७३–७४–७५

२ किञ्च तीर्थेऽत्र पूजार्थं द्वादशग्राम शासनम् ।
अदापयदयं मन्त्री सिद्धराजमही भुजा ॥

—वि० सं० १२८८ के लगभग श्रीउदयप्रभासूरि रचित धर्माभ्युदय महाकाव्य के शत्रुंजय महात्म्य कीर्तन सर्ग ७ वें का श्लोक नं० ७७

यात्रा भावपूर्वक की। गिरिराज की भक्ति में तल्लीन हो बारह ग्राम देव को बतौर बक्षीस के अर्पण किये इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि उस समय गुजरात प्रान्त के राजा और वहाँ की प्रजा की दृष्टि में इस तीर्थाधिराज के प्रति कितनी श्रद्धा और आदर था।

अन्यदा सिद्ध भूपालो निरपत्य तयाऽर्दितः।
तीर्थयात्रां प्रचक्रामानुपानत्पादचारतः॥
हेमचन्द्र प्रभुस्तत्र सहानीयत तेन च।
विना चन्द्रमसं किं स्यान्नीलोत्पलमतन्द्रितम्॥

× × × ×

सन्मान्य तांस्ततो राजा स्थानं सिंहासना (सिंहपुरा) भिधम्।
दत्त्वा द्विजेभ्य आरूढ श्रीमच्छत्रुंजये गिरौ॥
श्रीयुगादि प्रभुं नत्वा तत्राभ्यर्च्य च भावतः।
मेने स्वजन्म भूपालः कृतार्थमिति हर्षभूः॥
ग्राम द्वादशकं तत्र ददौ तीर्थस्य भूमिपः।
पूजायै यन्महान्तस्तां चा (स्वा) नुमानेन कुर्वते॥ वि० सं० १३३४ में श्रीप्रभाचंद्रसूरि विरचित तथा निर्णयसागर प्रेस, बंबई से प्रकाशित 'प्रभावक चरित्र के पृष्ट ३१५, श्लोक ३१०, ११, २३ और २५

"अथ भूपः सोमेश्वर यात्रायाः प्रत्यावृत्तः श्रीसिद्धाधिपो रैवतोपत्यकायां दत्तावासः। × × × शत्रुंजय महातीर्थ सन्निधौ स्कन्धावारं न्यधात्। × + × गिरिमधिरुह्य गन्धोदकेन श्रीयुगादिदेवं स्नपयनपर्वतसमीपवर्ति ग्रामद्वादशक शासनं श्री देवार्चायै विश्राणयामास॥"

—वि० सं० १३६१ में श्री मेरुतुंगसूरि विरचित तथा रामचंद्र दीनानाथ शास्त्री द्वारा प्रकाशित ग्रंथ 'प्रबंधचिंतामणी के पृष्ट १६० और १६१ से

सिद्धराज जयसिंह के उत्तराधिकारी परमार्हत् महाराजा कुमारपालने बड़े धूमधाम से इस तीर्थ की यात्रा की । इन बातों के उल्लेख उस समय के बने हुए ग्रंथों में पाए जाते हैं । सिद्धराज के महामंत्री उदायन का अन्तिम मनोरथ यह था कि शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार हो । उस की यह इच्छा पूर्ण करनेवाला उस का ही

---

१ " अह जिणमहिमं काउं अवयरिए खेयाओ सयलजणे ।
चलिओ कुमारवालो सत्तुंजयतित्थ नमणत्थं ॥
पत्तो तत्थ कमेणं पालित्ताणंमि कुणइ आवासं ।
अह कुमर नरिंदो हेमसूरिणा जंपिओ एवं ।
पालित्ताणं गामो एसो पालित्तयस्स नामेण ।
नागज्जुणेण ठविओ इमस्स तित्थस्स पुज्जत्थं ।
पुहइपइट्ठाण भरुयच्छ–भन्नखेडाइ निवइणो जं च ।
धम्मे ठविया पालित्तएण तं कित्तियं कहिमो ? "

—वि० सं० १२४१ में सोमप्रभाचार्य द्वारा पाटण में रचित तथा गा. ओ. सीरीज बड़ौदे से प्रकाशित कुमारपाल प्रतिबोध नामक ग्रंथ के पृष्ठ १७९ से ।

कृतज्ञेन तत्स्तेन विमलाद्रिरुपत्यकाम् ।
गत्वा समृद्धि भाक् चक्रे पादलिप्ताभिधं पुरम् ।
अधित्यकायां श्रीवीर प्रतिमाधिष्ठितं पुरा ।
चैत्यं विधापयामास स सिद्धः साहसीश्वरः ॥
गुरुमूर्तिं च तत्रैवास्थापयत् तत्र च प्रभुम् ।
प्रत्यष्ठापयदाहुयार्हद्बिम्बान्य परान्यपि ॥ "

—वि० सं० १३३४ में श्रीप्रभाचन्द्रसूरि रचित तथा निर्णयसागर प्रेस, बंबई से प्रकाशित ' प्रभावक चरित ' ग्रंथ के पृष्ठ ६५ और ६६ के श्लोक २९९ वां से ३०१ वाँ ।

सुपुत्र हुआ जिस का नाम बाहड़[1]देव (बाग्भट) हुआ जो कुमारपाल का महामत्य था। उसने श्रीशत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करा अपने पिता के मनोरथ को पूरा किया। इस उद्धार में मंत्रीश्वरने एक क्रोड़ और साठ लाख मुद्राऐं व्यय कीं। पं. सोमधर्म गणि विरचित उपदेश सप्ततिका में ऐसा उल्लेख है कि इस उद्धारमें दो क्रोड़ सतानवे लक्ष मुद्राएँ व्यय हुईं। यदि इतना द्रव्य उन्होंने ऐसे शुभ कार्यों में व्यय किया तो कोई विस्मय की बात नहीं कारण लाख या क्रोड़ की तो क्या बिसात उन्होंने तो अपना सर्वस्व तक ऐसे पुनीत कार्यों के लिये अर्पित कर दिया था।

मरुभूमि के नररत्न वीर भैंसाशाह का वर्णन सब इतिहासकारों को विदित है। इनकी मातुश्रीने श्री शत्रुंजय की यात्रार्थ एक वृहद् संघ निकाला था। यह घटना वि. संवत् ११०८ की है। उस श्राविकाने श्री तीर्थाधिराज की यात्राके निमित्त इतना

---

१ श्रीमद् वाग्भट देवोऽपी जीर्णोद्धारमकारयत्।
सदेवकुलिकस्यास्य प्रासादस्याति भक्तितः॥
शिखीन्दुःरविवर्षे १२१३ च ध्वजारोपे व्यधापयत्।
प्रतिमां सप्रतिष्ठां स श्रीहेमचन्द्र सूरिभिः।

—वि० सं० १३३४ में रचित ग्रंथ 'प्रभावक चरित्र' के पृष्ठ ३३६ के श्लोक नं. ६७० और ६७२.

षष्टिलक्षयुत्ता कोटी व्ययिता यत्र मन्दिरे।
स श्री वाग्भटदेवोऽत्र वर्णयते विबुधैः कथम्?॥

—प्रबंध चिंतामणी के सर्ग चतुर्थ के पृष्ठ २२० से

द्रव्य व्यय किया कि जिसकी गिनती भी नहीं लगाई जा सकती। वह नर वीर वही भैंसाशाह है जिन्होंने घृत और तेल के स्रोत प्रवाहित कर सौदे में गुर्जर वासियों को नतमस्तक कर दिया था।

वि. सं. १२९६ में स्वर्गस्थ स्वनाम धन्य विश्व विख्यात वीर मंत्री वस्तुपाल ने संघपति होकर इस तीर्थकी साढे बारह वार यात्रा की। वस्तुपाल जिस प्रकार धर्मनिष्ट व्यक्ति थे उसी प्रकार अपार लक्ष्मी के स्वामी थे। उन्होनें इस परम पुनीत तीर्थ पर १८ क्रोड़ और ९६ लाख रुपये निम्न लिखित कार्यों में खर्च किये। धन्य है उनकी माता को जिन्होंने भारतभूमि पर ऐसे ऐसे दानवीर नररत्नों को पैदा किया।

वस्तुपालने इस तीर्थ पर रंगमण्डप और श्रीपार्श्वनेमीजिन मन्दिर बनवाया। शांब, प्रद्युमन और अंबा आदि शिखर,

---

क्रमेण पूर्णतां प्राप्तः प्रासादोऽपि स मन्त्रिणः।
तत्र द्रव्य प्रमाणं तु वृद्धाः पाहुरिदं पुनः॥
लक्षत्रयी विरहिता द्रविणस्य कोटीस्तिस्रो।
विविच्प किल वाग्भट मन्त्रिराजः॥
यस्मिन युगादि जिनमन्दिर मुद्धार।
श्रीमानसौ विजयतां गिरिपुण्डरीकः॥

—वि० सं० १५०३ में पं. सोमधर्म गणि विरचित 'उपदेश सप्तति' ग्रंथके पत्र नं. ३१ से, जो आत्मानंद सभा, भावनगरसे प्रकाशित हुआ है।

२ उपकेशगच्छ पट्टावली जो जैन साहित्य संशोधन कार्यालय में मुद्रित हो चुकी है देखिये।

जिन्हें अब टूँक कहते हैं, वस्तुपालही ने बनवाए हैं। इसी तीर्थ पर वस्तुपालने अपने गुरु, पूर्वज, नातेदार, मित्र, स्वयं अपनी (घोड़े पर बैठे हुए) तथा अपने अनुज तेजपाल की मूर्त्तियों भी बनवाकर स्थापित करवाई। इसके अतिरिक्त वस्तुपालने सुवर्णमय पञ्च कलशों की स्थापना की तथा उपर्युक्त दोनों मन्दिरों में दो सुवर्णदंड और उज्ज्वल पाषाण के मनोहर दो तोरण भी इस तीर्थ पर बनवाए। इन बातों का वर्णन तात्कालीन विद्वान लेखक और कवियोंने स्वयं अपनी आँखोंसे अवलोकन कर तथा सुनकर अपने ग्रंथों में किया है। इस बात का प्रमाण श्री उदयप्रभसूरि

---

१ अथ प्रासादाद भूमर्तुः प्राप्य वैभवमद्भुतम्। मन्त्रीशः सफली चक्रे स्वमनोरथ पादयम् ॥ भक्त्याऽऽखण्डलमण्डपं नवनव श्री केलिपर्यङ्किकावर्य कारयति स्म विस्मयमयं मन्त्री स शत्रुंजये। यत्र स्तम्भन–रैवत प्रभुजिनौ शाम्बाम्बिकाऽलोकन प्रद्युम्नप्रभृतीनिकिव्य शिखराग्रया रोपयामासिवान् ॥

गुरु–पूर्वज–सम्बन्धि–मित्रमूर्तिकदम्बकम् ।
तुरङ्गसङ्गते मूर्तिद्वयं स्वस्यानुजस्य च ॥
शात कुम्भमयान् कुम्भान् पञ्च तत्र न्यवेशयत् ।
पञ्चधा भोगसौख्य श्रीनिधान कलशानिव ॥
सौवर्ण दण्डयुग्मं च प्रासादद्वितये न्यधात् ।
श्री कीर्तिकन्दयोरुद्यन्नूतनाङ्कुर सोदरम् ॥
कुन्देन्दुसुन्दरग्रावपापनं तोरणद्वयम् ।
इहैव श्रीसरस्वत्योः प्रवेशायैव निर्ममे ॥
अर्कपालीतकं ग्राममिह पूजाकृते कृती ।
श्री वीरधवलक्ष्मापाद दापयामास शासने ॥

विरचित धर्माभ्युदय काव्य, श्रीबालचंद्रसूरि रचित वसंतविलास, अरिसिंह कविकृत सुकृत संकीर्तन, सोमेश्वर पुरोहित रचित कीर्ति-कौमुदि, जयसिंहसूरि विरचित प्रशस्ति काव्य, उदयप्रभसूरि रचित सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी, राजशेखरसूरि कृत वस्तुपाल प्रबंध और जिनहर्ष कृत वस्तुपाल चरित्र आदि अनेक ग्रंथों में मिलता है।

श्री पालिताख्ये नगरे गरीयस्तरङ्गलीलादलिताकंतापम् ।
तडागमागः क्षयहेतुरेतच्चकार मन्त्री ललिताभिधानम् ॥

हर्षोत्कर्ष न केषां मधुरयति सुधासाधुमाधुर्य गर्जत्तोयः सोऽयं तडागः पथि मथित मिलत्पान्थ सन्तापपापः । साक्षादम्भोजदम्भोदित मुदितसुखं लोलरोलम्ब शब्दै रुदेव्यो दुग्ध मुग्धां त्रिजगति जगदुर्यत्रमन्त्रीशकीर्तिम् ॥

पृष्ठपत्रां च सौवर्णं श्री युगादि जिनेशितुः ।
स्वकीयतेजः मर्वस्वकोशन्यासमिवार्पयत् ॥
प्रासादे निदधे काम्यकाञ्चनं कलशत्रयम् ।
ज्ञानदर्शन चारित्र महारत्न निधानवत् ॥
किञ्चैतन्मन्दिर द्वारि तोरणं तत्र पोरणम् ।
शिलाभिर्विदधे ज्योत्स्नागर्वं सर्वं स्वदस्युभिः ॥
लौकैः पाञ्चालिका नृत्त संरम्भस्तम्भितेक्षणैः ।
इहाभिनीयते दिव्यनाट्यपेक्षाक्षणः क्षणम् ॥
प्रासादः स्फुटमच्युतैकमहिमा श्री नाभि सूनु प्रभो
तस्याग्र स्थितिरेक कुण्डल कुलां धत्ते तरां तोरणः ॥
श्री मन्त्रीश्वर वस्तुपाल ! कलयन्नीलाम्बरालम्बिता-
मत्युच्चैर्जगतोऽपि कौतुकमसौनन्दी तवाऽस्तु श्रिये ॥
अत्र यात्रिक लोकानां विशतां व्रजतामपि ।
सर्वथा सम्मुखैवास्ति लक्ष्मीरूपरिवर्तिनी ॥

इस मंत्रीश्वरने वीरधवल राजा की ओरसे इस तीर्थ की पूजा के लिये अर्कपालित (अंकेवालिय) नामक गाँव दिलाया था। मंत्रीश्वरने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती ललितादेवी के नाम पर ललित सरोवर नामक एक रमणीय स्वच्छ जल से भरा तड़ाग (तालाब) भी बनवाया था। तथा इन्होंने श्री मूलनायकजी आदीश्वर भगवान की प्रतिमा के लिये सोनेका उज्ज्वल प्रकाशमय पृष्ठपत्र (भामंडल) बनवा कर अर्पण किया था। आपने निज-मन्दिर पर तीन सुवर्ण के कलश बनवाकर स्थापित करवाए थे। और इन्होंने इस मन्दिर के द्वारपर कोरणीवाले लक्ष्म्यंकित तोरण करवाए थे जो अति आकर्षक पाषाण से निर्मित किये गये थे।

मंत्री वस्तुपाल के भाई मंत्रीश्वर तेजपालने भी इस तीर्थ पर श्री नंदीश्वर तीर्थ की रचना करवाई थी। तथा इसके अतिरिक्त अपनी धर्मपत्नी अनुपमा देवी के स्मारक में एक मनोहर

श्री विजयसेन सूरि के शिष्यरत्न श्री उदयप्रभसूरि रचित धर्माभ्युदय काव्य सर्ग १५ वाँ के श्लोक २४ से ३८।

शेत्रुजे द्रव्य सफलो कियोये अढ़ार कोडि छन्नु लाख; कडी १० वीं
तोरण त्रिण्य चढ़ावियाये एहज शेत्रुजे गिरिनारी;
सोनैया त्रिहुं लाखनोए एकेको श्रीकार, कडी १७ वीं
शेत्रुंजना संघवी थया ए साडी चा (बा)रेह यात्र; ध.
वस्तपाल तेजपाल करीए निर्मल कीधों गात्र; ध. कडी २५ वीं
एहवी साडी बारह यात्रा कीधी शेत्रुंज संघवी पद(वी) लीधी; कडी ३४ वीं

' अनुपमा ' नामक तड़ाग शिलाबद्ध बंधवाया जिसकी अनुपम शोभा देखने से ही बन आती थी। यह तड़ाग इसी तीर्थ के परिसर प्रदेशमें था। जो स्वच्छ और मधुर जल से भरा हुआ कमलों सहित शोभित दर्शकों के मनको सहज ही में अपनी ओर आकर्षित करता था। इस प्रकार के और उल्लेख भी ऐतिहासिक अनुसंधानसे मिल सकते हैं।

इतिहास प्रसिद्ध नागपुर (नागौर) के महामंत्रीश्वर ओसवाल-कुल-भूषण पूनड़शाहने[1], जो दिल्लीश्वर मौजदीन बादशाह का माननीय कृपापात्र था, इस तीर्थ की यात्रा करने के लिये बृहद् संघ निकाला था जिसमें २००० संख्या में तो केवल गाडियों ही थीं। जब यह संघ धोलका ग्राम के निकट पहुँचा तो गुर्जेश्वर के मंत्रीद्वय वस्तुपाल और तेजपालने बड़ा स्वागत किया। संघपति पूनड़शाहने युगल मंत्रीश्वरों को भी यात्रार्थ संघ में साथ लिया। इनके योगसे संघ का ठाठ कुछ और भी बढ़गया। इन भाग्यशालियोंने असंख्य द्रव्य व्यय कर तीर्थ की यात्रा, सेवा और पूजा की। वि. संवत् १३१३ से १३१५ तक क्रमशः तीन वर्ष का दुष्काल भी ऐसा भयंकर दृश्य उपस्थित कर रहा था कि चहुँ ओर हाय हाय और चीत्कार सुनाई देती थी। अन्नके अभाव से जनता को प्राणों के लाले पड़ रहे थे। भूखके मारे कमर दूहर हो गई थी। कई लोग मृत्यु की गोदमें जा रहेथे। उस समय

---

१ जैन शिलालेख भाग दूसरा (जिनविजयजी द्वारा सम्पादित)

की स्थिति वास्तव में दयनीय थी। उस विकट समय में जनता को सहायता पहुँचानेवाले श्रीमालवंश–भूषण दानी स्वनामधन्य परोपकारी झगडूशाह[1] की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। राजा, महाराजा, राणा, महाराणा, बादशाह और साधारण जनता तथा दीन दुःखी तकने झगडूसे परम सहायता पाई। वास्तवमें झगडूशाहने अभयदान दिया। इतना ही नहीं वरन् आपने प्राचीन तीर्थ भद्रेश्वर का उद्धार कराया तथा बृहद् संघ निकालकर श्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा कर वहाँ सात देवकुलिकाएँ स्थापित कराकर अनन्त पुन्योपार्जन किया।

प्राचीन तीर्थ मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़शाह[2] का नाम भी

---

१ स्थाने स्थाने ध्वजारोपं चकार जिन वेश्मसु।
जहार जनतादौस्थ्यं जगद्भर्जगती तले॥
असङ्ख्य सङ्घलोकेन समं यात्रां विधाय सः।
शत्रुंजये रैवतके प्राप चात्मपुरं वरम्॥
विमलाचल शृङ्गे स श्रीनाभेयपवित्रिते।
सप्तैव देवकुलिका रचयामासिवान् शुभाः॥

—श्रीसर्वानंदसूरि विरचित 'झगडू चरित्र' महाकाव्य के सर्ग ६ ठा श्लो० ४०, ४१ और ४५ वां (जो श्रीयुत मगनलाल दलपतराम खख्खर की ओर से प्रकाशित हुआ है।)

२ कोटाकोटि जिनेन्द्रमण्डप युतः शान्तिश्च शत्रुंजये।

—वि० सं. १३८७ में सत्तरिसयठाणं के रचयिता श्री सोमतिलकसूरि विरचित पृथ्वीधर साधु (पेथड़शाह) कारित चैत्य स्तोत्र (मुनि सुन्दरसूरि कृत गुर्वावली जो य. वि. ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित हुई है उस के पृष्ठ २० वें के श्लोक नं १९९ से)

इतिहास प्रसिद्ध है । इन्होंने अपने जीवन को धार्मिक कार्य करते हुए बिताया । आपने भिन्न भिन्न जगहोंपर कई मन्दिर बनवाए जिनकी संख्या ८४ है । पेथड़शाहने भी इस तीर्थ की यात्रा करने के निमित्त एक बड़ा संघ निकाला जिसमें यात्री बहुत बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए थे । संघ निकालकर पेथड़शाहने विपुल द्रव्य व्यय किया तथा इसके अतिरिक्त शत्रुंजय तीर्थ पर स्मारकरूप 'कोटाकोटि' नामक जिनेन्द्र मण्डप बनवाया जिसमें वि. सं. १३२० में श्री शांतिनाथ भगवान की मूर्त्ति स्थापित करवाई । पेथड़शाहने इस स्तुत्य और अनुकरणीय कार्य को कर अक्षय पुण्य उपार्जन किया ।

वि. सं. १३४२ में गढ़ सिवाना के महामंत्री ओसवाल कुलभूषण तथा श्रेष्ठिगोत्र-शिरोमणि नेतसीने भी इस तीर्थ की यात्रा के निमित्त संघ निकलवाया । आप बड़े वीर और दानी थे । आप का नाम अबतक ऐतिहासिक साहित्य में अप्रकट था । जिस प्रकार आप धनी थे उसी कोटिके आप धर्मनिष्ठ भी थे । आपने जो संघ निकाला उसमें यात्री बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि उस संघ में ३००० पोठ (बैल) तथा २९०० गाडियाँ थीं । नेतसीने श्री युगादीश्वर भगवान की पूजा हीरे, पन्ने और मुक्ताफलों के श्रेष्ट हार पहनाकर की । धन्य है ऐसे नरवीरों को जो हमारी मरुभूमि में जन्म

१ उपकेश गच्छ पट्टावली तथा वंशावली देखिये-

लेकर स्व तथा परआत्मा का उद्धार कर अपनी अचल कीर्ति अमर कर गये ऐसे ऐसे उदार हृदय भद्र महापुरुषों के जन्म लेनेसे ही इस मरुभूमि का विशेष महात्मय बढ़ा है क्योंकि उन्होंने अपने नाम के साथ ही साथ अपनी जन्मभूमि को भी यशस्वी बनाया।

इतना ही नहीं इसके अतिरिक्त भी अनेक राज्य तथा लोक मान्य मंत्री, महामंत्री, प्रतिष्ठित उच्च राज्यपदाधिकारी तथा धनी दानी और महत्वाकांक्षी धर्मिष्ठ सेठ साहूकारोंने भी लाखों, क्रोड़ों और अर्बोरुपये खर्च करके दूर दूर देशों से संघ सहित इस तीर्थाधिराज की यात्रा कर जिनशासन की बहुत अच्छी और अनुकरणीय सेवा की है। उन्होनें संघ निकालकर केवल जैनियों को ही नहीं वरन् जैनेतरों के साधुओं और गृहस्थों को भी साथ लेकर इस तीर्थ की यात्रा का अनुपम लाभ पहुँचाया। इस असीम उपकार का पूरा वर्णन लिखना इस लोहे की लेखनी की तुच्छ शक्ति के बाहर की बात है। पाठकगण सहज ही में अनुमान लगा सकते हैं कि लोगों की श्रद्धा इस तीर्थपर कितने उत्कृष्ट दर्जे की थी और जो निरंतर अबतक चली आ रही है। यद्यपि वर्तमान समय में जैनियों के पास प्रायः राज्याधिकार नहीं हैं तथापि तीर्थ की भक्ति सेवा और पूजा उतने ही उत्साह से की जाती है। इस तीर्थ को सर्व जैनी बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखते हैं।

इस तीर्थाधिराज के अभ्युदय के अर्थ जिन जिन भावुक

जनों ने भावभक्ति और श्रद्धा संयुक्त प्रयत्नकर अपने तन, मन, धन तथा सर्वस्व तक को अर्पण किया है उन बातों की साक्षी आज अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ, शिलालेख और अन्य प्रमाण दे रहे हैं। इस खोज और शोधके युग में इस तीर्थ की प्राचीनता और महता के इतने प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि यदि उनका दिग्दर्शन इस जगह कराया जाय तो यह अध्याय भी एक स्वतंत्र ग्रंथ जितने आकार का हो जाय अतः प्रसंगानुसार केवल संक्षेप में ही इस अध्याय द्वारा इस परम पुनीत तीर्थाधिराज की विशालता और महता पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

यह एक प्राकृतिक नियम है कि किसी भी व्यक्ति, स्थान या पदार्थ की सर्वदा एक ही सी दशा या अवस्था नहीं रहती। नूतनता का और जीर्णता का ओतप्रोत सम्बन्ध सदासे चला आ रहा है। उत्थान और अभ्युदय के पश्चात् जिस प्रकार पतन और हीन दशा का होना स्वाभाविक है उसी प्रकार शिथिलता के पश्चात् जाहोजलाली का होना भी प्राकृतिक है। इसमें कोई आश्चर्य करने लायक बात नहीं है क्योंकि इतिहास का अध्ययन यह परिवर्तन की परिपाटी स्पष्टता से सिद्ध कर रहा है। इसी नियमानुकूल जबसे गुजरात प्रान्तकी बागडोर यवनों के हाथ में आई इस तीर्थाधिराजपर भी आक्रमण के बादल मंडराने लगे। एकदिन जो सौराष्ट्र प्रान्त हरा भरा चमन सुख, शांति और समृद्धि के वातावरण में था वही बाद में ऊसर और उजड़ा हुआ दिखने लगा।

यवनशाही की सत्ताने कुछ का कुछ कर दिया। आक्रमणकारियों की क्रूर दृष्टि हिन्दू और जैनियों के शास्त्रभण्डारों और तीर्थों पर विशेषरूपसे वज्रपात कर रही थी। ऐसी दशा में शास्त्रों और तीर्थों को सुरक्षित रखना सचमुच टेढ़ी खीर थी। अत्याचारियों के कुतूहत में हमारी गाढ़े पसीने की तैयार की हुई साहित्य सामग्री नष्ट हो रही थी। तीर्थों और ग्रन्थ भण्डारों पर आफत की बिजली चमक रही थी। इस अत्याचार और अनाचार के परिणाम स्वरूप सारे गुजरात प्रान्त में ठौर ठौर त्राहि त्राहि की आवाज सुनाई देती थी।

जब गुजरात के कौने कौने में यवनों के उपद्रव हो रहे थे तो यह कब सम्भव था कि यवनों की दृष्टि श्री शत्रुंजय जैसे महत्वशाली धार्मिक पुनीत गिरिपर नहीं पड़ती। शत्रुंजयगिरि-पर धावा बोलने के लिये यवनों ने विशेषरूपसे तैयारी की। तीर्थ की महता सुनकर उनके हृदय में कुछ आशंका भी उत्पन्न हो गई थी। अल्लाउद्दीन खिलजी की फौज चढ़ कर आई और लगी तीर्थाधिराज पर आक्रमण करने। यवनों ने भी ध्वंस करने में कुछ कमी नहीं रखी। दुष्ट लोग जिस घात में बहुत दिनों से टकटकी लगाये बैठे थे इस अवसर को पाकर अपनी मनोच्छित बातों को पूर्ण करने लगे। आक्रमणकारियोंने मूलनायकजी की प्रतिमा पर धावा बोल दिया। निज मन्दिर को गिराया तथा उसके अतिरिक्त आसपास के मन्दिरों को भी नष्ट करने के

भरसक प्रयत्न करने में किसी भी प्रकार की कमी उन्होंने नहीं रखी। यह हमला वि. संवत् १३६९ में हुआ। जब इस की खबर चारों ओर फैली तो जैनियों को हार्दिक परिताप हुआ; पर वे करते क्या ? विवश थे। वीर मन मसोस कर बैठ रहे। जैन संसार में हाहाकार मच गया। यह खबर बिजली की तरह सारे प्रान्तों में फैल गई। यही बात जब पाटण स्थित श्री उपकेशगच्छाचार्य गुरु चक्रवर्ती सिद्धसूरि ने सुनी तो आप ने प्रस्तुत समस्या पर विचार किया और यही सोचा कि तीर्थाधिराज का उद्धार शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिये। आपने विचार किया तो इस कार्य को करने के लिये दो व्यक्ति उपयुक्त दृष्टिगोचर हुए। ये दोनों व्यक्ति पाटण नगर के धर्मनिष्ठ, धनाढ्य, राज्यमान्य, उपकेश वंशीय श्रेष्टिगोत्रज (वैद्यमुहत्ता) श्रावक शिरोमणि देशलशाह और उन के पुत्ररत्न समरसिंह थे। ये दोनों व्यक्ति ओजस्वी प्रभाविक और कार्यकुशल थे। आचार्यश्रीने उचित समझ कर श्रीसंघकी सम्मतिपूर्वक पुनीत तीर्थोद्धार करने का भार उपर्युक्त दोनों महापुरुषों को सोंपा।

परम सौभाग्य की बात है कि जैनाचार्य उस समय की घटनाओं को लेखबद्ध कर गये जिस से अब हमें सरलता से उस समय की उन्नति और अवनति की सर्व बातें मालूम हो सकती हैं। इस के लिये हम उन के विशेष कृतज्ञ हैं।

शत्रुंजयगिरि के इस पंद्रहवें उद्धार के करानेवाले समरसिंह के जीवनचरित को जानने के लिये अनेक साधन उपलब्ध

हैं । यह उद्धार यवनकाल में हुआ है जिस का सारा हाल विस्तृत रूप से उस उद्धार को अपनी आंखों से देखनेवाले तथा उद्धार के समय निकट उपस्थित रहनेवाले निवृत्ति गच्छीय श्रीपासड़सूरि के शिष्यरत्न श्री अंब (आम्र) देवसूरि[1] ने उसी वर्ष (वि. सं. १३७१) में स्वरचित समरारास में उल्लेखित कर दिया है। यद्यपि यह रास संक्षिप्त में है तथापि जो वर्णन उस में दिया गया है वह सुललित और मनोहर भाषा एवं पद्धत्ति से लिखा हुआ है । इस रास की भाषा प्राचीन गुजराती है । रास को अत्यंत ऐतिहासिक महत्व का समझ कर ही स्वर्गस्थ श्रीयुत चिमनलाल दलालने अपनी वृद्ध अवस्था में 'प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह' नामक ग्रंथ में योग्यतापूर्वक इसे सम्यक् प्रकार से सम्पादित कर संकलित किया है और जो गा० ओ० सीरीज बड़ौदा द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है ।

चूँ कि यह उद्धार आधुनिक इतिहास से भी प्रमाणिक साबित हो चुका है अतः इस का महत्व इस जमाने में और भी विशेष है । श्रीतीर्थेश्वर भगवान आदीश्वर की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा

---

१ संवच्छरी इक्कहतर ए थापि उ रिसहजिणंदो ।
चैत्तवदि सातमि पहुतघरे, नंदउ ए नंदउ जां रविचंदो ॥ ९
पासडसूरिहिं गणहरह नेउअगच्छ निवासो,
तसु सीसिहिं अंबदेवसूरिहिं रचियउ ए रचियउ एर चियउ समरारासे;
एहु रासु जो पढइ गुणई नाचिउ जिणहरि देइ, श्रवणि सुणई सो बयठउ
ए तीरथ तीरथ ए तीरथ जात्र फलु लेइ । १०

श्रीउपकेश गच्छाचार्य श्री सिद्धसूरिजीने वि. सं. १३७१ में माघ शुक्ल १३ को अपने कर कमलों से करवाई थी। इस के साथ यह भी ज्ञात हुआ है कि आचार्यश्री के शिष्यरत्न श्रीमेरुगिरि मुनिने भी इस उद्धार के कार्य को सम्पादन करने में आचार्यश्री का विशेष हाथ बँटाया था। मेरुगिरि मुनिने यह काम बहुत योग्यता पूर्वक सम्पादन किया अतः आचार्यश्रीने उन्हें सुयोग्य समझ कर इस प्रतिष्ठा के २१ दिन पश्चात् अर्थात् वि. सं. १३७१ के फाल्गुन शुक्ल ५ को आचार्य पद से विभूषित कर उन का नाम कक्कसूरि रखा।

आचार्य कक्कसूरिने उद्धार की सर्व क्रिआऐं अपने सामने होती हुई देखी थीं। उन्हें स्थाई स्मरण रूप में रखने के परम पुनीत उद्देश से आपने उस उद्धार के सर्व वृतान्त को एक बृहद् ग्रंथ का रूप देदिया। यह ग्रंथ जिस का नाम आपने 'नाभिनंदनोद्धार' रखा था वि. सं. १३९३ में कंजरोट नगर में रह कर लिखा था। इस में सारी घटनाऐं यथार्थ रूप में विद्यमान हैं।

उपर्युक्त ग्रंथ हाल ही में अहमदाबाद निवासी साक्षर

---

१ श्रीपुण्डरीकगिरिशेखर तीर्थनाथ-संस्थापना विधिसुसूत्रण सूत्रधारः।
श्रीसिद्धसूरिरभवद् गुरुचक्रवर्ती तच्छिष्य एतदतनोद गुरुकक्कसूरिः॥

२ कंजरोट पुरस्थेन श्रीमता कक्कसूरिणा।
विनवति सद्वृत्ये वर्षे प्रबन्धोऽय विनिर्मितः॥
—विमल गिरिमंडन-नाभिनंदनोद्धार प्रबंध (प्रांत श्लो० १०२७ अ)

श्रीयुत भगवानदास हर्षचंद्र की ओर से मुद्रित हुआ है। आपने परिश्रम कर के संस्कृत के मूल ग्रंथ के साथ साथ गुजराती भाषा में अनुवाद भी किया है जिस के लिये हम और विशेषतया गुजराती भाषा भाषी भगवानदासभाई के विशेष आभारी हैं जिन के कारण कि उन्हें इस अमूल्य उपयोगी संस्कृत ग्रंथ के रसास्वादन करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है वास्तव में यह कार्य स्तुत्य और अभिनंदनीय है।

अभीतक हमारे हिन्दी भाषा भाषी इस लाभ से वंचित थे। इस कमी को दूर करने के उद्देश से मैंने उस मूल ग्रंथ के आधार पर तथा कई अन्य ग्रन्थों की सहायता लेकर समरसिंह का जीवन हिन्दी में पाठकों के सम्मुख रखने का साहस किया है। आशा है मेरा यह प्रयास हिन्दी संसार के लिये बहुत कुछ उपयोगी सिद्ध होगा। यदि पाठकोंने इसे अपनाया तो इसी तरह के और अनेक नररत्नों की जीवनी हिन्दी संसार के सम्मुख रखने का प्रयत्न जारी रख सकूंगा। आगे के अध्यायों में समरसिंह के जीवन पर क्रम से प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा? पाठक आद्योपान्त पढ़ कर इस चरित से आत्मसुधार करने में कुछ प्रवृति करेंगे तो मैं अपने श्रम को सफलीभूत समझूंगा।



दूसरा अध्याय।



श्रेष्ठिगोत्र और समरसिंह।

हमारे चरितनायक श्रेष्ठिकुल भूषण समरसिंह के वंश के परिचय को लिखने के पूर्व यह बताना अति-उपयोगी होगा कि इस वंश की उत्पत्ति किस समय तथा किस परिस्थिति में हुई। साथ में यह भी बताना ज़रूरी है कि इस वंश के बनने में किस किस प्रकार के संयोग उपस्थित हुए थे।

वर्तमान ऐतिहासिक युग के पूर्वीय व पाश्चात्य धुरंधर और परिश्रमी विद्वानों की खोज एवं शोधने यह सिद्ध कर दिया है कि आज से लगभग ढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व भारतवर्ष की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था डांवाडोल अर्थात् विशृङ्खल होकर भारत वर्ष को अवनति के पथ की ओर अग्रसर कर चुकी थी। भारत के कोने कोने से चीत्कार सुनाई देती थी। सिवाय त्राहि त्राहि के और कुछ भी कर्णगोचर नहीं होता था। वर्ण, जाति और उपजातियाँ की शृङ्खला में बंधी हुई जनता सर्वत्र अपनी सर्वशक्तियों का निरंतर दुरुपयोग कर रही थी। साम्यवाद की सुगंधमात्र भी अवशेष नहीं रही थी। ऊँच और नीच के भेद का विनाशकारी गरल सब ओर उगला जा रहा था। विषमता

की उत्ताल तरंगों में भारत के सौभाग्य की नौका टूटनेवाली थी। जिस पवित्र भारतभूमि को एहलौकिक स्वर्ग की उपमा प्राप्त हुई थी उसी पर स्वार्थी और पेटू निर्दयी लोगोनें यज्ञ आदि के बहाने वेदियाँ पर असंख्य मूक और निरपराधी प्राणियों की गर्दनपर क्रूरतापूर्वक छुरी चलवा कर रक्त की सरिता प्रवाहित कर दी थी। उस समय के जाति और राष्ट्र के मुखिया इन पाखण्डियाँ के हाथ की कठपुतली बन चुके थे। इस तरह फरेब द्वारा हिंसा फैलाने में दुष्टोंने कुछ भी कसर नहीं रखी थी। नीति, सदाचार और प्रेम तो केवल नाम लेने मात्र को रह गये थे। अर्थात् शास्त्रों के पृष्टोंपर ही अंकित थे। अधिकाँश जनता उन वाममार्गियों के छलरूपी पिंजरे में तोते की तरह परतंत्र थी। वाममार्गियों का साम्राज्य अखण्डरूप में ग्राम ग्राम में फैला हुआ था। इन दुष्टोंने बुराई पर इतनी कमर कसी की दुराचार, व्यभिचार आदि आदि अनाचारों द्वारा ही स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है ऐसा भ्रमित विश्वास फैला दिया। विकारों के प्रलोभन द्वारा जनता को पतन के गहरे गढ्ढे में डालकर वे तुच्छलोग अपना स्वार्थ साधन करने के लिये इससे भी बदतर उपायों के विभित्स आयोजन कर रहे थे।

जनसमूह की शक्ति के तंतु भिन्न भिन्न मत, पंथ, वर्ण, जाति और उपजातियों के पृथक पृथक केन्द्रों में विभाजित होकर चूर चूर हो चुके थे। चारों और उपद्रवों की भट्टी जोरों से

धधक कर समाज और राष्ट्र को भस्मीभूत करने को तैयार थी। उस समय उस विनाशकारी ज्वाला को बुझाकर सुख और शांति की धारा प्रवाहित करनेवाले एक महापुरुष की अत्यंत आवश्यक्ता थी। ठीक ऐसे आवश्यक अवसरपर दुख से पीड़ित जनता की रक्षा करने के लिये भारतभूमिपर प्रातःस्मरणीय भगवान् महावीर देव का जन्म हुआ। आपश्रीने उत्कट तपश्चर्या द्वारा दिव्यज्ञान को प्राप्तकर अपनी बुलुन्द आवाज द्वारा देश के कोने कोने में ऐसा संदेश पहुंचाया कि जिसके फलस्वरूप ऊँच और नीच के विषम-भाव एक दम दूर हो गये। जनता पुनः एक वार परम शांति के रसास्वादन करने को महावीर प्रभु के अहिंसा के झंडे के नीचे एकत्रित हो गई। भगवान महावीरस्वामी के समवसरण में राजा और रंक के लिये कोई भेद नहीं था। दीन और धनिकों के साथ भिन्न भिन्न व्यवहार और व्यवस्था नहीं थी। क्या उच्च और क्या नीच समवसरण के द्वार प्राणीमात्र के लिये खुले थे। जिस प्रकार पुरुषों को मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार है उसी प्रकार स्त्रिएँ भी मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं यह भगवानने अपने श्रीमुख से फरमाया। स्त्रियों के लिये भी सन्यास जैसे पद लेने का अवसर दिया गया और अनेक भाग्यशालिनी महिलाओंने उससे लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया। स्त्रियोंने तो इस ओर पुरुषों की अपेक्षा भी अधिक अभिरुचि प्रकट की।

उस समय की साम्यता वास्तव में आदर्श थी। जिस

प्रकार महाराजा चेटक, उदाई, श्रेणिक और संतानिक जैसे क्षत्रिय; इन्द्रभूति, अग्निभूति, ऋषभदत्त और भृगु जैसे ब्राह्मण; आनन्द, कामदेव, संख, पोक्खली और महाशतक जैसे वैश्योंने आत्मकल्याण करने का पथ अवलंम्बन किया ठीक उसी प्रकार ऊँच और नीच के भद्दे भेद को भूल कर अर्जुनमाली, हरकेशी और मैतार्य जैसे शूद्र और अतिशूद्र लोगोंने भी उन सब की तरह उसी उच्च पथ का बराबरी से अवलम्बन किया। उस समय भी विरोधियोंने असहयोग करने में कुछ कसर नहीं रखी। उन आततायोंने बागी बन कर शांत मूर्त्ति भगवान महावीर के साथ कई तरह के दुर्व्यवहार किये परंतु वे अंत में सब विफल मनोरथ हुए कारण कि भगवानने परम सत्याग्रही की तरह अहिंसक रह कर प्रकोप के बदले उल्टी उन पर दयादृष्टि ही रखी। अन्त में उन बागियोंने भगवान की इस उपकारवृत्ति पर मुग्ध हो कर भगवान के बताए हुए मार्ग का अनुसरण किया। भगवान महावीर स्वामीने उस समय की विषमता को मिटाकर सब को समान प्रकार से समभावी, नीतिज्ञ और सदाचारी बनाये रखने के उद्देश्य से शक्तियों को संगठित रखने के लिये एक संघ की स्थापना की। संघ की स्थापना होने से शांति का साम्राज्य स्थापित हो गया।

उपर्युक्त कथन को प्रमाणित करने वाला एक शिलालेख[1]

१ देखो जैन जाति महोदय प्रकरण पांचवा पृष्ठ १६३ वाँ

उडीसा प्रान्त की हस्ति गुफा में प्राप्त हुआ है। यह लेख विक्रम पूर्व की दूसरी शताब्दि में कलिंगपति महामेघवाहन चक्रवर्ती जैन सम्राट् श्री खारवेल नरेश का खुदवाया हुआ है। उस में खुदा हुआ है कि "वेनामि विजयो" अर्थात् महाराजा खारवेल वेन राजा की तरह विजेता हो। अब यह प्रश्न होता है कि यह वेन राजा कौन था। इस का प्रमाण पद्मपुराण में मिलता है। राजा वेन किसी वर्ण और जाति पांति को नहीं मानता था अतः उसे 'जैन' की संज्ञा जैनेतरोंने दी थी। इस से सम्यक् प्रकार से सिद्ध होता है कि जैनियोंने ही सब से प्रथम वर्ण और जाति की हानिकारक शृङ्खला को तोड़ने का प्रयत्न किया था। यही कारण है कि जिस में जैन धर्मावलंबियों में ब्राह्मण और क्षत्रियों का सम्मिलित होना पाया जाता है।

भगवान महावीर स्वामी के पश्चात् आचार्य श्रीस्वयंप्रभसूरि हुए। ये आचार्य, श्रीपार्श्वनाथ भगवान के पांचवे पट्टपर थे।

---

१ केशिनामा तद्विनेयः यः प्रदेशि नरेश्वरम्।
प्रबोध्य नास्तिकाद्धर्मी जैनधर्मेऽध्यरोपयत् ॥ १३६ ॥
तच्छिष्याः समजायन्त श्रीस्वयंप्रभसूरयः।
विहरन्तः क्रमेणैयुः श्रीश्रीमालं कदापिते ॥ १३७ ॥
तस्थुस्ते तत्पुरोद्याने मासकल्पं मुनीश्वराः।
उपास्यमानाः सततं भव्यैर्भवतरुच्छिदे ॥ १३८ ॥
(नाभिनन्दनोद्धार प्रबंध)

—आचार्य स्वयंप्रभसूरि के विषय में विशेष खुलासा देखो सचित्र जैनजाति-महोदय प्रकरण तीसरा पृष्ट १६ से ४० तक।

आप श्री उपदेश देते हुए मरुभूमि में पधारे। श्रीमालनगर में उस समय वाममार्गियों का उपद्रव बढ़ रहा था। आचार्यश्रीने श्रीमाल नगर में पधार कर वाममार्गियों के वज्र सदृश पापरूपी किल्ले को तोड़ डाला। आपश्रीने उपदेश दे कर व्यभिचारियों को सद्मार्ग पर लगाया। आपने वर्ण, जाति और ऊंच नीच की विषमता को दूर कर राजा और प्रजा को अहिंसा धर्मोपासक बनाया। आचार्य श्रीस्वयंप्रभसूरि के पट्टधर श्रीआचार्य रत्नप्रभसूरि हुए। आपने भी अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने आत्मबल के प्रभाव से वीरात् ७० वर्ष में उपकेश नगर में पधार कर एक ऐसा कार्य कर दिखाया कि उन का यश सदा के लिये अमर हो गया। उस समय के सत्ताधीश वाममार्गियों के पचड़ों को तोड़ डालना कोई साधारण कार्य नहीं था। किन्तु जिन महात्माओंने जन सेवा के अर्थ अपना सर्वस्व तक बलिदान कर दिया हो उन के लिये यह कठिनाई नहीं के बराबर है। आचार्य रत्नप्रभसूरि महाराजने उपकेशपुर के राजा उपलदेव और नागरिकों को प्रतिबोध दे कर मांस, मदिरा, व्यभिचार आदि का त्यागन करा कर उन की वासक्षेप द्वारा शुद्धि तथा सब का संगठन कर 'महाजन संघ' स्थापित किया। संघ स्थापित कराने के साथ ही साथ सेवा पूजा और भक्ति आदि उपासना करने के लिये महावीर स्वामीके

१ देखिये–जैनजाति महोदय–प्रकरण तृतीय पृष्ठ ४१ से ६४ तक।

मन्दिर की भी स्थापना (प्रतिष्ठा) आपने करवाई । इन के पश्चात् भी कई आचार्योंने महाजन संघ के रक्षण और पोषण में अनवरत प्रयत्न किया । निरन्तर आचार्यों की संरक्षता में 'महाजन संघ' की वृद्धि होती रही ।

कालान्तर से उस महाजन वंश का नाम 'उपकेश नगर के' कारण से उपकेश वंश प्रसिद्ध हुआ । इसी प्रकार उपकेश वंश के प्रतिबोधक–पोषक और उपदेशक आचार्यों के गच्छ का नाम भी उपकेश गच्छ मशहूर हुआ । उपकेश वंश की प्रख्याति सब प्रान्तों में क्रमशः फैल गई । उपकेश वंश के नेताओं की विशाल हृदयता और उदारता आदि का आशातीत प्रभाव जैनेतरों पर पड़ा जिस के परिणाम स्वरूप जनता अधिक संख्या में इस वंश को अपनाने लगी । लोग महाजन संघ में सम्मिलित होने लगे । उपकेशपुर की जन संख्या में भी खूब वृद्धि हुई । जन संख्या की वृद्धि के साथ साथ इस नगर के व्यापार की भी बढ़ती खूब हुई । उपकेशपुर व्यापारिक केन्द्र हो गया । जो लोग व्यापार के लिये अन्य प्रान्तों से उपकेशपुर आते थे उन पर भी उस नगर के निवासियों के रहन सहन और आचार व्यवहार का कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ता था । अनेक लोग इसी रीति से व्यापार

---

१ सप्तत्या (७०) वत्सराणं चरम जिनपतेर्मुक्त जातस्य वर्षः ।
पंचम्यां शुक्ररक्षे सुरगुरु दिवसे ब्रह्मण सन्मुहूर्ते ॥
रत्नाचार्यैः सकल गुण युक्तैः सर्व संघानु ज्ञातैः ।
श्रीमद्वीरस्य बिम्बे भव शत पथने निर्मितेयं प्रतिष्ठाः ॥ १
(उप० गच्छ० चरित्र)

के हित आए हुए इसी वंश में सम्मिलित हो गये। आज की भांति का संकीर्ण हृदय का व्यवहार उस समय विद्यमान नहीं था। जिस साधर्मी के साथ आज भोजन व्यवहार है उस के साथ बेटी व्यवहार अब नहीं भी होता है, पर ऐसी संकुचित वृत्ति उस समय नहीं थी। वरन् उस समय तो नये साधर्मी बन्धु के साथ विशेष प्रेम का व्यवहार प्रचलित था। निर्धन भाई को थोड़ी थोड़ी सहायता सब दे कर अपने बराबरी का धनी बना देते थे यही कारण था कि उस वंश की संख्या जो लाखों पर ही थी थोड़े ही समय में क्रोडों तक पहुंच गई और भारत के कोने कोने में यह जाति फैल गई।

वि० सं. १३९३ में—उपकेश गच्छाचार्य श्रीकक्कसूरिजी विरचित 'उपकेश गच्छ चरित्र' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ के पढ़ने से मालूम हुआ है कि आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के ३०३ वर्ष पश्चात् अर्थात् वीरात् ३७३ के वर्ष में उपकेशपुर में उपद्रव हुआ था जिस की शान्ति श्रीपार्श्वनाथ के १३ वें पट्टधर आचार्य श्रीकक्कसूरिने अपनी संरक्षता में करवाई थी। उस समय उपकेश नगर में उपकेश वंशीय मुख्य १८ गोत्र प्रसिद्ध थे और वे सर्व प्रकार से उन्नति प्राप्त किये हुए थे। उपर्युक्त ग्रंथरत्न में उन गोत्रों के नामों का भी उल्लेख है। जो इस प्रकार हैं १ तातेहड, २ बाफना, ३ कर्णाट, ४ बलहा, ५ मोरख, ६ कुलहट, ७ विरहट, ८ श्रीश्रीमाल, ९ श्रेष्ठिगोत्र, १० संचेती, ११ आदित्य नाग, १२ भूरिगोत्र, १३ भाद्रगोत्र, १४ चिंचट, १५ कुम्भट, १६

कन्नोजिया, १७ डीडू और १८ लघु श्रेष्ठि। इस प्रकार सब मुख्य गोत्र मिला कर अष्टादश थे। बाद में इन्हीं मूल गोत्रों की

---

१ कुलगुरुओं की वंशावलियों से पता मिलता है कि उपरोक्त मूल १८ गोत्रों से कई कारण पा कर प्रत्येक मूल गोत्र से अनेक शाखाएँ प्रशाखाएँ उत्पन्न हुई थीं यह बात उस समय की मूल गोत्रों की उन्नति की द्योतक है।

मूलगोत्र	शाखाएँ प्रशाखाएँ	संख्या.
१ तातेहड	तोडियाणी आदि	२२
२ बाफना	नाहटा जंघडा बेताला वगेरह	५२
३ कर्णाबट	बागडिया वगेरह	१४
४ बलहा	रांका बांका आदि	२६
५ मोरख	पोखणादि	१०
६ कुलहट	सुरवा आदि	१८
७ विरहट	भुरंटादि	१७
८ श्री श्रीमाल	कोटडिया आदि	२०
९ श्रेष्ठिगोत्र	वैद्य मुहता आदि	३०
१० संचेती	ढेलडिया आदि	४४
११ आदित्यनाग	चोरडिया पारख गुलेच्छा बुचा साव सुखादि	८५
१२ भूरिगोत्र	भटेवडा आदि	२०
१३ भाद्रगोत्र	समदडिया भाण्डावतादि	२९
१४ चिंचट ,,	देसरडा आदि	१९
१५ कुम्भट ,,	काजलिया आदि	१९
१६ डिडूगोत्र	कोचर मुहता आदि	२१
१७ कन्नोजिया	वटवटा आदि	१७
१८ लघुश्रेष्ठि	वर्धमानादि	१६

आधुनिक इन शाखा प्रशाखाओं में से कितनी तो मौजूद हैं और कितनी लुप्त

शाखाऐं प्रशाखाऐं उत्तरोत्तर बढ़ती गईं जिन की संख्या सब मिला कर ४९८ हो गई ।

हमारे दूरदर्शी समयज्ञ आचार्योंने विक्रम संवत् से ४०० वर्ष के पहले ही शुद्धि का प्रचार करना आवश्यक समझ कर उसे प्रचलित कर दिया था । शुद्धि और संगठन की उपयोगिता उन्हें अच्छी तरह से मालूम थी । उस समय की चलाई हुई शुद्धि की सुप्रथा कई वर्षों तक जारी रही । यहाँ तक कि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक जैन संघ में शुद्धि का जोरों से प्रचार था किन्तु जब से संकीर्णता का प्रादुर्भाव हुआ शुद्धि और संगठन के द्वार बंध हो गये । उसी समय से हमारी वर्तमान घटी आरम्भ हुई । जब से हम शुद्धि करना छोड़ बैठे इस जातिने भी अवनति के गर्त में प्रवेश करना प्रारम्भ किया । तब से निरंतर संख्या कम होने लगी है । जिसके कडुवे फल हमें अब चखने पड़ रहे हैं और पुनः आज इस बात की आवश्यक्ता अनुभव हो रही है कि शुद्धि का सिलसिला फिर प्रारंभ किया जाय । ऊपर संक्षिप्त में महाजन संघ की उत्पत्ति पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया गया है अब यह बताना आवश्यक है कि हमारे चरितनायक साहसी समरसिंह के पूर्वज किस नगर में रहते थे तथा उनका गोत्र आदि क्या था ?

भी हो चुकी हैं । यह बात महाजन वंश की अवनति की सूचक है । इन मूल अष्टादश गोत्र के सिवाय भी जैनाचार्योंने क्रमशः जैनेतर जनता को प्रतिबोध दे कर अनेक गोत्र स्थापित कियेथे उनकी मध्य कालीन संख्या १४४४ से भी अधिक थी—

मरुभूमि का नखलिस्तानरूप, धनधान्य के भरे भाण्डारों सहित विशाल आबादी वाला, व्यापार का केन्द्र और अपनी रमणीय शोभा और प्राकृतिक दृश्यों से स्वर्ग की प्रतिस्पर्द्धा करने वाला कमनीय नगर, उपकेशपुर के नाम से विख्यात था। नगर के चारों और बाग बगीचों का मनोहर दृश्य दर्शकों को सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। जनता के आवश्यक जल देने के श्रोत अनेक जलाशय नगर के चारों ओर विद्यमान थे जिन में स्वच्छ और मीठा जल भरा हुआ था। यह नगर प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। इसकी प्राचीनता के प्रमाणिक उल्लेख

---

१ विक्रम की आठवीं शताब्दी में भीनमाल के राजा भाणने उपकेशपुर के रत्नाशाह की कन्या से विवाह किया था। (जैन गोत्र संग्रह पं० ही० हं० जामनगरवाला)

२ विक्रम की नौवीं शताब्दी में उपकेशपुर में प्रसिद्ध प्रतिहार वत्सराज का राज था (दि० हरिवंश पुराण)—

३ कोटाराज्य के अटारूग्राम में एक जैनमूर्त्तिपर वि० सं० १०८ के शिलालेख में (उपकेश वंशी) भैंसाशाह का नाम है। इस से उपकेशपुर की प्राचीनता सिद्ध होती है। (राजपूताना की सोधखोज से)—

४ समेतमेतत्प्रथितं पृथित्वमुपकेश नामास्तिपुरं (वि. सं. १०१३ ओशियों मन्दिर के शिलालेख से)

५ उपकेश च कोरंटे तुल्यं श्रीवीर बिम्बयो
प्रतिष्टा निर्मिता शक्त्या श्रीरत्नप्रभसूरिभिः।
[श्री उपकेशगच्छ चरित्र (अमुद्रित)]

६ आस्ति स्वस्ति च व्य (कव)द् भूमेर्मरु देशस्य भूषणम्।
निसर्ग सर्ग सुभगगुपकेश पुरं वरम्।
(नाभिनदनोद्धार वि० सं० १३९३ के लिखे हुए से)

और इसके साथ नगर के प्राचीन खंडहर[1] यत्रतत्र दृष्टिगोचर अब भी होते हैं।

उपकेशपुर नगर में भगवान महावीर स्वामी का एक विशाल मन्दिर है जो इस नगर का अलंकार रूप है। इस रमणीय मन्दिर की शोभा, इसके उच्च शिखर और सुवर्णमय कलश तथा ध्वजा दंड की अनुपम सुन्दरता से, अलौकिक प्रकट होती थी। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा वीरात् ७० संवत् में आचार्य श्री रत्नप्रभ-

---

१ एक टूटे हुए मन्दिर में वि. सं. ६०२ का खुदा हुआ शिलालेख प्राप्त हुआ है। इसी तरह के और भी खण्डहरों से प्रमाण मिल सकते हैं। ओसियां से २० मील की दूरी पर गटियाला नामक ग्राम है उस ग्राम के पास उपकेशनगर के दरवाज़ों के प्राचीन खण्डहरों के चिह्न आदि अब तक दृष्टिगोचर होते हैं।

× × ×

कुमलयमाला के कथानक में उल्लेख है कि जब श्वेत हूणों ने विक्रम की छठी शताब्दी में इस ओर आक्रमण किया तो उपकेशवंशीय लोग मरुभूमि त्यागन कर लाट और गुर्जर देश की ओर चले गये।

× × ×

प्राचीन कथानकों में ऊहड मंत्री का जहां उल्लेख हुआ हैं वहां लिखा है कि उसने उपकेश जातिपर ब्राह्मणों द्वारा लगाया हुआ कर सर्वथा अनुचित समझ कर उस कर को मिटा दिया था। यह वही ऊहड मंत्री है जिसने वीरात् संवत् ७० में उपकेश नगर में महावीरस्वामी का मन्दिर बनवा कर आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि द्वारा प्रतिष्ठा करवाई थी। (श्रीमाली वाणियों का जातिभेद नामक पुस्तक)

× × ×

उपकेशपुर उपकेशवंश और उपकेशगच्छ की प्राचीनता के विषय में जैनजाति महोदय चतुर्थ प्रकरण देखिये—

सूरि के करकमलों से हुई थी। इस मन्दिर के प्रति नागरिकों की अटूट श्रद्धा और अनुपम भक्ति थी। लोग द्रव्य एवं भाव पूजा, सेवा और नृत्य आदि के कार्यों में संलग्न रहते थे। इस भक्ति और सेवा का ऐहलौकिक फल के भी वे भोक्ता थे। उनके घर में धान्य और धन से भंडार भरे हुए रहते थे। उस नगर के निवासी गार्हस्थ्य सुख से भी परम सुखी थे। उनके पुत्र कलत्र और मित्र सदाचारी आज्ञाकारी और विश्वासी थे इसीसे उनकी मान मर्यादा तथा प्रतिष्ठा सब तरह से बढ़ी हुई थी। ऐहलौकिक सुखों के साथ साथ पारलौकिक सुख प्राप्त करने के साधन पक्के करने में भी वे लोग तत्पर थे। भगवान की रथ यात्रा के निमित्त उन लोगोंने सुवर्ण-रथ[1] तैयार करवा लिया था। प्रति वर्ष रथयात्रा को महोत्सवपूर्वक निकाल कर नगर के अघों को सहजहीं में विनष्ट कर देते थे।

इस नगर के बीचांबीच एक रम्य वापी ऐसी कारीगरी से बनाई हुई थी कि जिसकी शिल्पकला की खूबी देखकर दर्शक आश्चर्य-चकित होकर आवाक् रह जाते थे। इस वापी की उत्तम शिल्पकला के कारण भारतवर्ष का मस्तक सारे विश्व में सगर्व ऊँचा था। उस वापी की एक विशेषता यह भी थी कि उसके सारे सोपान इस क्रम से बनाए हुए थे कि भले ही कोई किसी प्रकार का संकेत बनाकर वापी में नीचे जावे वापस उसी जगह

---

१ प्रतिवर्षं पुरस्यान्तर्यत्र स्वर्णमयो रथः।
पौराणां पापमुच्छेत्तुमिव भ्रमति सर्वतः॥ २७ (ना० नं० प्र०)

पर वह नहीं पहुंच सकता था। शिल्पकारोंने उसमें भूलभूलैयां जैसी बनावट की थी। जानेवाला व्यक्ति जाकर मार्ग में कहीं अटकता भी नहीं था पर जिस सोपान से प्रवेश होता था उस पर वापस आ भी नहीं सकता था। इसी प्रकार की विचित्रता के कई भवन उस नगर की विशेषता को प्रकट रहे थे। व्यापार, शिल्प और उद्योग का केन्द्र होने के कारण यह नगर घनी आबादीवाला था।

इस नगर के अन्दर धन-धान्य से परिपूर्ण तथा मान प्रतिष्ठा को प्राप्त किया हुआ उपकेश-वंश सर्व तरह से अग्रगण्य था। राज्य के उच्च उच्च अधिकारी भी इसी वंश के व्यक्ति थे तथा जिस प्रकार राज्य दरबार के कार्यों में उनका प्रभुत्व तथा हस्ताक्षेप था उसी प्रकार व्यापार का कार्य भी इसी वंश के सु-प्रतिष्ठित योग्य धनी मानी नेताओं के हाथ में था। जिस प्रकार वृक्ष अपने फूल पत्ते और फल द्वारा विशेष शोभायमान होता है उसी प्रकार यह उपकेश वंश रूपी वृक्ष अपनी अठारह[1] गोत्रों शाखाओं और प्रशाखाओं रूपी पत्तों द्वारा खूब प्रतिष्ठित था। इस वंश का चमन हरा भरा तथा गुलज़ार था।

उन अष्टादश[2] गोत्रों में भी 'श्रेष्टि' गोत्र का विशेष गौरव था। इस गौत्र की विशेष महत्ता का कारण यह था कि जब

---

१ तत्पुर प्रभवो वंश उकेशाभिध उन्नतः।
सुपर्वा सरलः किन्तु नान्तः शून्यऽस्ति यः क्वचित ॥ ३०
२ तत्राष्टादश गोत्राणि पत्राणीव समन्ततः।
विभान्ति तेषु विख्यातं श्रेष्ठिगौत्रं पृथुस्थिति ॥ ३१ ॥
} ना. नं. प्रबन्ध.

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरिजीने उपकेश वंश स्थापित कर महाजन संघ बनाया तो महाराजा उपलदेव को, जो उस समय वहां के राजा थे और जिन्होंने अपना शेष जीवन धर्म प्रचार के लिये ही अर्पित कर दिया था, श्रेष्ठ समझ कर उन्हें श्रेष्ठि गोत्र प्रदान किया गया था । तब से महाराजा उपलदेव के वंशज श्रेष्ठिगोत्रिय के नाम से विख्यात हुए ।

श्रेष्ठिगोत्र वालों की भी हर प्रकार से अभिवृद्धि हुई। वृद्धि होने के कारण विशेष विशेष घराने शाखा प्रशाखा के नाम से प्रसिद्ध होते हुए भारतवर्ष के कोने कोने में फैल गये । इस गोत्रवालों पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों ही की खूब दया रही। ये जगह जगह मंत्री आदि राजकीय उच्च पदों पर नियुक्त होकर राजतंत्र चलाने में विशेष कुशल थे । व्यापार के क्षेत्र में भी श्रेष्ठि गोत्रवालोंने आशातीत सफलता प्राप्त कर व्यापार के मुख्य मुख्य केन्द्रों में भी अपना विशेष सिक्का जमाया । इनकी धवल कीर्ति दिनों दिन उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती रही । राजकीय व्यवस्था करने में विशेषज्ञ तथा सिद्धहस्त और इष्ट की दृढ़ता होने के कारण इस गोत्र के वंशजों को राज्य की ओर से सम्मान सूचक " वैद्य मुहत्ता " का इलकाब प्राप्त हुआ । जिस नाम से यह गोत्र आज तक प्रसिद्ध है ।

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में उपर्युक्त उपकेश वंश के

---

१ इस ग्रन्थ के लेखकने भी इसी गोत्र में जन्म लिया था ।

श्रेष्ठि नामक गोत्र में बेसट[1] नाम के महा प्रतापी पुरुष हुए। ये उपकेशपुर के निवासी धनी एवं बड़े धर्मात्मा थे। इनका सुयश चारों ओर फैला हुआ था। इनके पास इतना द्रव्य था कि अनेक याचकों को दे दे कर उन्होंने उनका दारिद्र सदैव के लिये दूर कर दिया था। एक आदर्श गृहस्थी के सब गुण इनमें प्रकृति से ही विद्यमान थे। ये अपनी बात के धनी थे। एक बार उपकेशपुर के मुख्य २ पुरुषों से आपकी अनबन हो गई। वैमनस्य को बढ़ता हुआ देख कर आपने उस नगर को ही छोड़ने का विचार कर लिया। अपने सारे ऐश्वर्य सहित आप चलने को प्रस्तुत हुए तो प्रारम्भ ही में ऐसे ऐसे शुभ शकुन हुए कि जिस से आप को प्रतीत होने लगा कि यह प्रस्थान बहुत सुफल प्रगट करेगा। भाग्यशाली पुरुषों के लिये ऋद्धि और सिद्धि सर्वदा हाथ जोड़े उपस्थित रहती ही है। उनके लिये देश और विदेश सब सुखकर हैं। जहां वे जाते हैं सदा आदर सत्कार पाते हैं। श्रेष्ठि गोत्रज बेसट चलते हुए क्रमशः किराटकूपनगर[2] के समीप पहुंचे।

किराटपुर नगर की शोभा का अनुपम वर्णन प्रबन्धकार इस प्रकार करते हैं कि वह नगर जिनालयों की पताकाओं[3] से

---

१ तत्र गोत्रेऽभवद् भूरि भाग्य सम्पन्न वैभवः।
श्रेष्ठि 'बेसट' इत्याख्या विख्यातः क्षितिमण्डले ॥ ३२ ॥

२ अविलम्बैः प्रयाणैः स गच्छन्नच्छाशयः पथि।
किराट कूप नगरं प्राप पापविवर्जितः ॥ ४३ ॥

३ सुर सद्म पताकाभिश्चसन्तीमिश्चतुर्दिशम्।
पथिका नाह्व मतीव यत्पुरं सर्वदिगातान् ॥

विशेष सुशोभित हो रहा है पताकाएँ वायु में फहराती हुई यात्रियों को मानों यह संकेत कर रही हैं कि इस ओर आकर जिनेश्वर भगवान के दर्शन कर अपने मानव जीवन को सफल करो। जलाशयों में राजहंस और अन्य खगवृन्द मधुर ध्वनि करते हुए ऐसे मालूम होते थे मानो वे पथिकों को शीतल जल पीने का निमंत्रण दे रहे हों। मन्दिरों के अन्दर से निकलते हुए धूप घटिकाओं के धूम्र से आकाश श्याम मेघों की तरह काला दृष्टि-गोचर हो रहा था। मन्दिरों में मृदंग और नृत्य के नाद से नगर के दुष्कर्म पलायमान हो रहे थे। नगरवासी धन वैभव से सम्पन्न अपने द्रव्य को सातों क्षेत्रों में दिल खोल कर खर्च कर रहे थे। किराटपुर नगर धर्म की तरह व्यापार का भी मुख्य केन्द्र था। इस प्रकार नगर के लोगों को धर्म और व्यवहार के कार्यों में उत्साहपूर्वक निमग्न देख कर श्रेष्ठिवर्य बेसटने भी इसी नगर में निवास करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसने अपने कुटुम्ब के लोगों को एक रम्य उद्यान में ठहराया और आप बहु मूल्य वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर कीमती भेंट लेकर राजसभा में जाने की तैयारी करने लगा।

उस समय वह नगर परमार वंशीय जैत्रसिंह के आधिपत्य में था जिसकी धवल कीर्ति चहुं ओर प्रसारित थी। उस नरेश के अतुल भुजबल के पराक्रम के आगे सारे शत्रु नतमस्तक थे। जिस दर्जे का वह बली था उसी कोटिका उदार हृदयी भी था। याचकों को मुंहमांगा द्रव्य देकर वह अपनी उदारता का

साक्षात परिचय देता था। राज्य के कार्य की व्यवस्था ऐसी सुसंगठित थी कि सारी प्रजा अपने नृपति में अटूट श्रद्धा रखती थी तथा जेत्रसिंह भी प्रजा को पुत्रवत् समझ कर सबके साथ वैसा ही व्यवहार करता था।

वेसट श्रेष्ठि राज्य सभा में भेंट लेकर प्रविष्ट हुए। राजा के सम्मुख भेंट रखते हुए आपने अभिवादन के पश्चात् इस प्रकार रोचक वार्तालाप किया।

राजा—"आपका शुभनाम क्या है? और आप कहां से पधारे है?"

सेठ—"मेरा नाम वेसट है और मैं उपकेशपुर से आया हूं।"

राजा—"आपका यहां आना किस प्रयोजन से हुआ?"

सेठ—"आपके सुन्याय की धवलकीर्ति सारे विश्व में प्रख्यात है जिस से आकर्षित होकर मैं यहां आया हूं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं यहाँ आप की छत्र छाया में निवास करूं इसके अतिरिक्त मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।"

राजा—"सेठजी, यह बहुत हर्ष की बात है कि आप आगए। जिस प्रकार राजहंस के निवास से सरोवर की शोभा बढ़ती है इसी प्रकार आप से श्रेष्ठ श्रेष्ठि वंशियों के निवास करने से मेरे नगर की भी शोभा अवश्य परिवर्द्धित होगी। आप

प्रसन्नतापूर्वक यहां बसिये।। मकान और विविध आवश्यक सामग्री भी यहां आपको हमारी ओर से दे दी जायगी।"

इस प्रकार परिचय के साथ ही अगाढ़ प्रीति बढ़ गई। उसी समय राज सभा में दरबानने प्रविष्ट होकर राजाजी से निवेदन किया कि आज इस नगर के महाजनों के सारे मुखिया मिलकर आप से कुछ निवेदन करने के लिये बाहर उपस्थित हुए हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या कार्य है तो उन्होंने बताया कि इस नगर में ऋषभदेव[१] जिनेश्वर का जो विशाल मन्दिर है जिसमें ५२ देहेरियों है। मूलनायकजी की पूजा और आरती के साथ साथ सब देहेरियों में भी पूजा व आरती की जाती है। वर्ष भर में जितने दिन होते हैं उतने ही दिन अर्थात् ३६० दिन अठाई महोत्सव (पूजा) के ठाठ लगे रहते हैं। शिखर के चारों ओर जिह्वा बाहर निकालते हुए सिंहों के चित्र ऐसा दृश्य प्रदर्शित करते हैं मानों वे वाममार्गियों के अत्याचारों को भक्षण करने की चेष्टा कर रहे हैं। मूल मन्दिरजी के सम्मुख एक विशाल सुन्दर रमणीय मण्डप ऐसी अनोखी शोभा देता है मानों भव्य पुरुषों के लिये पुण्यलक्ष्मी वरने का स्वयंवर का मण्डप हो। और उस मण्डप के ऊपर के सुवर्ण कलश तो और भी अलौकिक शोभा दिखा रहे हैं। इस मन्दिर में भक्तिभाव से नित्य पूजा

---

१ यदस्ति देव! ऋषभस्त्रैमि चैत्यमिहोत्तमम्।
द्वाभ्यां पञ्चाश देवकुलिकाभिर्वि भूषितम्॥ ६५॥

आदि होती है। आज भगवान की रथयात्रा[1] का पर्व दिवस है अतः हमारी सब की अनुनय यही विनय है कि आज इस समग्र नगर में जीवहिंसा बन्द होनी चाहिये। इन लोगों की यही प्रार्थना है।

उपर्युक्त विवरण को सुनकर राजा जैत्रसिंहने हँस कर वेसट से कहा कि ये बनियों का धर्म भी कैसा है कि जिसमें अहिंसा की उद्घोषणा सब से प्रथम कराई जाती है और शेष सब कार्य बाद में होते हैं। श्रेष्ठिवर्य श्री वेसटने निसंकोचपूर्वक राजा को तत्क्षण प्रत्युत्तर दिया कि राजन्! यह अहिंसा धर्म केवल बनियों का ही है ऐसा कोई ठेका नहीं है। जैसे गंगा नदी के पवित्र जलको काम में लाने का किसी एक व्यक्ति या जाति का ही ठेका नहीं है उसी तरह यह इस अहिंसा धर्म का लाभ भी केवल एक ही जाति को नहीं मिलता है बल्कि जो कोई प्राणी अहिंसा धर्म का पालन करता है वह इसके मृदुफलों का अवश्य आस्वादन करता है। खास कर यह अहिंसा धर्म तो क्षत्रियों का ही है कारण कि जैनों के चौबीसों धर्म के प्रवर्तक जो बड़े तीर्थंकर हुए हैं वे सब के सब क्षत्रिय ही थे।

प्राचीन समय के भरत सागर जैसे चक्रवर्ती और राम कृष्ण जैसे अवतारिक पुरुष हुए हैं वे सब भी अहिंसा धर्म के ही उपासक थे। आपके और हमारे पूर्वज परमार-वंश-मुकुट राजा

---

१ रथस्यदेव तस्तस्य भविष्यति पुरेऽधुना।
यात्रा ततो जीवभारि वारणं याचते जयः॥ ७१॥

उपलदेव आदिभी अहिंसा धर्मावलम्बी ही थे। महाराजा चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट् सम्प्रति, महाराजा खारवेल, शालिवाहन, विक्रमादित्य, शिलादित्य, आमराजा और कुमारपाल आदि अनेक वीर क्षत्रिय भी अहिंसा धर्म के अनुयायी थे। केवल उपासक ही थे सो नहीं ये तो अहिंसा धर्म के प्रचारक भी थे परन्तु बाद में सदोपदेश के अभाव में कई स्वार्थी और पेटू लोगोंने अपनी विकार लिप्सा को तृप्त करने के लिये प्राणियों का संहार कर उनके मांस से अपने उदर को भरना शुरु कर दिया तथा 'हाडा ले डूबा गनगौर' की तरह अपनी सत्ता के बल से कई लोगों को भी बरजोरी मांसभक्षक बनाया।

इस तरह के और और प्रमाणों द्वारा बेसट ने राजा को अच्छी तरह से अहिंसा धर्म के महत्व को समझाया जिस का ऐसा प्रभाविक प्रभाव हुआ कि राजाने तत्काल प्रतिज्ञा की कि मैं भविष्य में किसी निरपराधी जीव का वध नहीं करूंगा तथा प्रति मास मैं कम से कम १५ दिन तो मांस भक्षण नहीं करूंगा। राजाजी के आदेश से नगर में अमरी पहडा बजवाया गया। रथयात्रा महोत्सवपूर्वक सानन्द निकाली गई। राजा जैत्रसिंह बेसट श्रेष्ठिपर बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि प्रथम तो आप हमारे अतिथि और दूसरे आप मेरे धर्मोपदेशक हो अतः कृपया इस नगर में अवश्य निवास करिये ताकि मुझे समय समय पर धार्मिक उपदेश आप द्वारा प्राप्त होता रहे। इस प्रकार कहते हुए

राजाजीने सेठ साहब का वस्त्राभूषण आदि से अच्छी तरह से स्वागत किया।

मंत्रीश्वर को राजाजी की ओर से आज्ञा हुई कि श्रेष्ठिवर्य के लिये अनुकूल भवन नगर में दिलवा दीजिये ताकि आज ही से ये अपने कुटुम्बवालों को उद्यान में से नगर में ले आवें तथा इस के अतिरिक्त और भी सब आवश्यक सामग्री जुटा दो ताकि सेठजी को किसी भी प्रकार की असुविधा न रहे।

राजा से विदा होकर जब बेसट राजद्वारपर पहुंचे तो वहाँ नगर के महाजन वंश के मुख्य मुख्य अग्रेसरों से मिले। सबने सेठजी का हृदय से स्वागत किया। भगवान की रथयात्रा का प्रसंग छिड़ा तो आपने सब प्रस्तावों का अनुमोदन किया तथा उत्सव में सम्मिलित होने का अभिवचन भी दिया और उसका पालन भी किया। बेसट श्रेष्ठिवर्य कुटुम्ब सहित नगर में रहने लगे। जो मान और प्रतिष्ठा आपको उपकेशपुर में प्राप्त थी उससे भी अधिक आदर आपने इस नगर में थोड़े ही समय में अपने अनुपम गुणों द्वारा शीघ्र ही प्राप्त कर लिया। श्रेष्ठिवर्य बड़े उदार थे। आपके द्वारपर आये हुए याचक कभी रिक्त हाथ नहीं लौटते थे। सेठजीने सबके हृदय में स्थान पा लिया। क्यों न हो भाग्यशाली भद्र पुरुषों को सब ठौर सफलता प्राप्त हो ही जाती है।

श्रेष्ठिवर्य श्रीयुत बेसट सकुटुम्ब सुखपूर्वक किराटकूपनगर में रहने लगे। इनकी देवगुरु और धर्मपर अटूट श्रद्धा और दृढ़

भक्ति थी । सखाईका देवी का पूर्ण इष्ट रखते हुए बेसट आनंद पूर्वक अपना शेष जीवन इसी नगर में बिता रहे थे । समय समय पर राजा को अहिंसा के उपदेश देकर आपने उसको अहिंसा का परमोपासक बना लिया था जिसके परिणामस्वरूप राजा की श्रद्धा जैन धर्मपर पूर्णतया दृढ़ हो गई थी । जिस प्रकार बेसट राज्य कार्य में दक्ष होने के कारण राजा के कृपापात्र थे उसी तरह व्यापारिक दक्षता के कारण व्यापार आदि में भी इनको अग्रस्थान लब्ध हुआ था तथा संघ की ओर से आपको नगर सेठ की उच्च पदवी भी मिली थी । आप में यह विशेषता थी कि राज्य और व्यापार के प्रत्येक कार्य में नागरिकों की भलाई को आप पहले सोचते थे । तथा सर्व साधारण के लाभ के लिये अपना तन मन धन तक अर्पण कर देते थे । साधर्मियों की ओर तो आपका इस से भी अधिक ध्यान था । आप न्यायमार्ग से द्रव्य उपार्जन करते थे तथा उस द्रव्य को देव, गुरु, धर्म और साधर्मियों की भक्ति में ही व्यय करते थे । बेसटने विपुल द्रव्य व्यय करके अनेक यात्राऐं कीं कई स्थानों पर बड़े २ जिनालय बना के प्रभु–प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवा के ध्वजा दंड और सुवर्ण कलश चढ़ाये थे तथा कई जिन मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी कराया । आपने अपने जीवन को इसी प्रकार के शुभ और आवश्यक कृत्य करते हुए बिताया । आप का इकलोता पुत्र बहुत गुणी था जिसका नाम वरदेव था । यद्यपि बेसट के एक ही पुत्र

था किन्तु वह परम गुणी होने के कारण सहस्रों के बराबर था। कहा भी है कि—

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।

बेसट अपनी अंतिम समाधि की क्रिया कर सात क्षेत्रों में अपनी सारी सम्पत्ति अर्पण कर गृहकार्यों का भार वर देव को सोंप अनशनपूर्वक स्वर्गधाम को सिधाये।

सुयोग्य पुत्र वरदेवने भी अपने सदाचरण द्वारा अपन पिता की कीर्ति को द्विगुणित किया। उसकी भी श्रद्धा देवगुरु धर्म और शासन के प्रति वैसी ही थी। साधर्मियों और जन साधारण की ओर भी तादृशी सहानुभूति और वात्सल्यता विद्यमान थी। राज्य कार्य में तो उसका हस्तक्षेप था ही परन्तु व्यापार आदि में उसने और भी अधिक वृद्धि कर दिखाई।

वरदेव के एक पुत्र हुआ जिसका नाम जिनदेव था। जो जिनेश्वर के चरणों में अविरल भक्ति रखनेवाला तथा प्रखर बुद्धिमान था। वरदेवने भी अपना द्रव्य सातों क्षेत्रों में अपर्ण कर घर का भार जिनदेव को सुपूर्द कर अनशनपूर्वक स्वर्गधाम प्राप्त किया।

जिनदेव का पुत्र नागेन्द्र तो साक्षात् सहस्र नाग की तरह जगत का उद्धार करनेवाला अवतरित हुआ था। उसे विपुल लक्ष्मी और अक्षय कीर्ति प्राप्त हुई थी। इसके द्वारपर जो

याचक आता था वह मुँह माँगा द्रव्य पाकर अपने दारिद्र को सदैव के लिये दूर कर देता था। गृहकार्य और व्यापारिक क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त करके नागेन्द्र ने परम ख्याति प्राप्त की थी तथा वह—राजा और प्रजा—सब का माननीय था।

जिनदेव एक बार रात्रि के समय यह विचार करने लगा कि सांसारिक मोहजाल के वशीभूत होकर मैंने दीक्षा प्राप्त करने योग्य युवानी की वयस को यों ही खो दिया परन्तु 'जागे तब ही से सबेरा' अब भी मुझे उचित है कि नागेन्द्र कुमार को पूछ कर मेरी उपार्जित दौलत को धार्मिक कार्यों में व्यय कर संसार में रहते हुए भी कुछ सुकृत कर पुण्य प्राप्त करने के साधन प्राप्त करलूँ। ऐसा विचार कर उसने अपने पुत्र नागेन्द्र को बुलाया और अपनी सारी इच्छा उसके सामने प्रकट की। नागेन्द्रने तत्क्षण प्रत्युत्तर दिया कि पिता की सम्पत्ति भोगना पुत्र के लिये ऋण है। यदि आप अपनी सम्पदा धर्म के कार्यों में व्यय करते हैं तो मैं ऋण से उन्मुक्त होता हूँ। ऐसा पुत्र हितैषी पिता विरला ही होगा जो अपने पुत्र को किसी प्रकार का ऋणी न बना जावे। अतः आप प्रसन्नतापूर्वक सुकृत में द्रव्य व्यय कीजिये।

पुत्र की अनुमति प्राप्तकर जिनदेव, आचार्य श्री कक्कसूरिजी की सेवा में उपस्थित हुआ और द्रव्य किस क्षेत्र में व्यय किया जाय इस विषय में सम्मति पूछी। आचार्यश्रीने भी उचित परामर्श दिया। जिनदेवने क्रोडों रुपये धार्मिक क्षेत्रों में व्यय किये। एक

दिन जिनदेवने आचार्यश्री से पूछा कि गुरु महाराज! बताइये मेरी आयु का कितना समय और अवशेष है? आचार्यश्रीने अनुमान–ज्ञान द्वारा बतलाया कि तुम्हारी आयु अब केवल ३ मास और शेष है। यह सुनकर जिनदेव उसी दिनसे धर्माराधन में जुट गया और अन्तमें आराधना द्वारा अनशनपूर्वक स्वर्गवास का प्राप्त किया। नागेन्द्रकुमारने भी अपने पिता को बहुत सहायता धर्माराधन में दी तथा पिता की मृत्युके पश्चात् भी लौकिक क्रिया सम्यक् प्रकारसे की।

नागेन्द्र कुमार अपनी पितृभक्तिद्वारा पहले ही से जगतवल्लभ बन चुका था। पिता के स्थानपर प्रतिष्ठित होकर उसने सब कार्यों को अच्छी तरहसे संभाल लिया। अपनी धैर्यता, कर्त्तव्यपरायणता, परोपकारिता और गंभीरता के कारण वह दूर दूर तक प्रख्यात हो गया। तीर्थयात्रा के लिये कई संघ निकालकर तथा स्वामिवात्सल्य आदि द्वारा नागेन्द्रने संघकी खूब सेवा की। जिन–मन्दिरों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार कराकर नागेन्द्रने अक्षय पुण्य उपार्जन किया तथा गुरुदेव की सेवामें वह सदैव तत्पर रहा। साधर्मियों की सहायता और सन्मान करना तो उसको बहुत सुहाता था।

नागेन्द्र के भी एक पुत्र हुआ। हस्तरेखा के अनुरूप उस का नाम 'सलक्षण' रखा गया। वास्तवमें वह था भी ऐसा ही सौभाग्यशाली। वह सुलक्षणधारी तथा बुद्धिशाली था। वह छोटी वयसमें ही कार्य–कलादक्ष तथा प्रवीण हो गया था। नागेन्द्रने

अपना सारा सर्वस्व सुपुत्र सलक्षण को अर्पण कर अन्त समयमें गुरुसेवामें निश्चिन्तपूर्वक रहकर सातों क्षेत्रों में प्रचुर द्रव्य व्यय कर अक्षय पुण्य उपार्जित करते हुए आराधना में निमग्न रह अनशन पूर्वक स्वर्ग पदको प्राप्त किया। पश्चात् सलक्षण भी अपने पिता की तरह सारे कार्य उचित व्यवस्थापूर्वक चलाने लगा। वह भी नागरिकों में मुख्या और राज्यमान्य व्यक्ति था।

एक बार एक सार्थवाह तरह तरहकी किराने की सामग्री लेकर व्यापारार्थ किराटकूप नगरमें आया। जब सलक्षणसे उसकी भेंट हुई तो सलक्षणने विनम्रतापूर्वक पूछा कि कहो भाई! किस देशसे आए हो?

सार्थवाह—"मैं गुजरात प्रान्तसे आया हूँ।"

सलक्षण—"कहिये, आपका प्रान्त कैसा है?"

सार्थवाह—"गुजरात एक हराभरा प्रान्त है जो सदा धन-धान्य-पूर्ण रहता है। सब प्रकारकी वस्तुए वहाँ प्राप्त हो सकती हैं। हमारे प्रान्तके लोग सभ्य, मधुरभाषी और धर्मात्मा हैं। शत्रुंजय और गिरनार जैसे भवतारक तीर्थ भी हमारी गुजरात-भूमिपर हैं। बड़े बड़े व्यापारी जल और थलके मार्गसे गुजरात में आकर विपुल द्रव्य उपार्जन कर लाखों और क्रोडों रुपये धर्म के काम में व्यय करते हैं।"

सलक्षण-"गुर्जरभूमिके लिये यह परम गौरवकी बात है।"

सार्थवाह—"महानुभाव! आपका कथन सत्य है। पर

आप ध्यान लगाके सुनिये गुर्जरभूमि में प्रवेश होते ही गुर्जरभूमि और मरुभूमि की सीमा जहाँ मिलती है वहाँ एक अत्यंत मनोहर स्वर्गसे भी बढ़कर नगर है जिसका नाम पल्हनपुर है। उस नगर में परम रम्य पार्श्वनाथ–जिनालय[1] है जिसके कलश, ध्वजदंड और कंगुरे सुवर्ण के तो है हीं पर उनमें विशेषता यह है कि वे अमूल्य जवाहरात से जड़े हुए हैं। आरती के समय झालरोंकी झन-झनाहट की गर्जना की तुमूल ध्वनि चहुँ दिशामें प्रसारित होकर कलि-कालरूपी शत्रुको पलायमान करती हुई दिखती है। वह नगर व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र है अतः वहाँ भिन्न भिन्न मतों के लोग अधिक संख्या में रहते हैं पर खूबी यह है कि उनमें परस्पर किसी भी प्रकार का द्वेष या बैरभाव नहीं है। सब अपने अपने धार्मिक कर्तव्यों को पालने में स्वतंत्रतया निरत हैं। सब से अधिक संख्या-वाले जैनी हैं। जिनशासनके अभ्युदयकी सर्वोच्च स्थिति इस नगरमें विद्यमान है। जिस प्रकार रोहिणाचल अनेक मणियों से विभूषित है उसी प्रकार यहाँ का जैन संघ भी अनेक योग्य अग्रेसरों से शोभित है। महानुभाव! कृपया आप एक बार पधारकर उस नगर का निरीक्षण अवश्य करिये। 'अवसि देखिये देखन योगू।'

---

१ प्रल्हादनविहाराख्यं श्रीवामेयजिनेशितुः।
विद्यते मंदिरं यत्र सुरमन्दिर सुन्दरम् ॥ ६१ ॥
सद्वालानकमूर्धस्थ सुवर्ण कपि शीर्षकैः।
आबद्धशेखरमिवाभाति देवगृहेषु यत् ॥ ६२ ॥
सौवर्णदण्डकलशा–मलसारक कान्तिभिः।
प्रातर्लोका हतालोकं यदूर्ध्वं नेक्षितुं क्षमाः ॥ ६३ ॥ } नाभिनन्दनोद्धार.

सलक्षण—" सार्थवाह ! मैं आपका असीम उपकार मानता हूँ कि आपने ऐसे उत्तम नगरका मुझे विशेष परिचय कराया। अब मैं उस नगर को देखनेके लिये परम उत्सुक हूँ। मैं कुछ भी विलम्ब नहीं करूँगा। और आपके साथ चलना तो मेरे लिये और भी अधिक उपयुक्त होगा। "

इस प्रकार कह कर सलक्षणने पल्हनपुर जाने के लिये तैयारी की। यात्रा के लिये आवश्यक सामग्री एकत्रित की गई। जब सलक्षण रवाने हुए तो रास्तेमें कई शुभ शकुन हुए। इससे श्रेष्टिवर्य का उत्साह और भी परिवर्धित हुआ। निर्विघ्नतया यात्रा समाप्त कर जब सलक्षण पल्हनपुर नगरमें प्रविष्ट हुए तो पुनः शुभ शकुन दृष्टिगोचर हुए जो भावी मंगल लाभ की सूचना दे रहे थे। प्रसन्नचित्त सलक्षण को शकुनों के फलस्वरूप नगरमें जाते ही श्री पार्श्वनाथ भगवान की रथयात्रा[1]के वरघोड़े के दर्शन हुए। सलक्षणने वरघोड़े में सम्मिलित होकर सारे नगर के जिनालयों के दर्शन करने का प्रथम लाभ लिया।

उस समय एक सामुद्रिक विद्याका विशेषज्ञ श्रेष्टिवर्य के चहरे को देखकर भविष्यवाणी कहता है कि यदि आप इस नगर में आ बसेंगे तो आपको धन, धान्य, पुत्र और सुख की प्राप्ति होगी। आपके वंशज संघ—नायक होंगे। आपकी संतान धर्मिष्ट

---

१ तदन्तर्विशतस्तस्य श्रीवामेयजिनेशितुः।
रथः संमुखमायातः ससङ्घेऽथ पुवेऽभ्रमत् ॥ ७६ ॥ (ना० नं०)

और कर्तव्यनिष्ठ होगी जिसके द्वारा अनेक देवमन्दिरों की प्रतिष्ठा होंगी। आपकी चतुर्थ पीढी में तो ऐसे भाग्यशाली व्यक्ति उत्पन्न होंगे जो शत्रुंजय महातीर्थ के उद्धार कराने में समर्थ होंगे जिससे आप का कुल अक्षय कीर्ति प्राप्त करेगा। उस उद्धार के कारण आपके वंश की ख्याति देश और विदेशों में अनेक वर्षोंतक प्रसारित होगी। मैं आपके शकुनोंके अनुसार यह प्रमाणपूर्वक उद्घोषणा करता हूँ कि उपर्युक्त सब बातें अवश्य सत्य होंगी।

शकुनों के ऐसे अनुपम फलको विद्वान ज्योतिषी द्वारा सुनकर सलक्षण का चित्त अति प्रफुल्लित हुआ। भविष्यवेत्ता को उपहारमें वस्त्राभूषण और बहुतसा द्रव्य दिया गया। सलक्षणने रथमें विराजित श्रीपार्श्वनाथ भगवान के सामने मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। बादमें सलक्षणने नगर में रहे हुए सारे गुरुओं का वंदन किया। रहने के लिये एक सुन्दर स्वास्थ्यप्रद भवनको चुनकर उसमें निवास करना प्रारंभ कर दिया। शकुनों के फलस्वरूप व्यापारद्वारा श्रेष्ठिवर्यने अखूट लक्ष्मी उपार्जन की। क्यों न हो ऐसे भाग्यशाली नररत्नों को, जो जवाहरातका व्यापार करते हों, अवश्य गहरी सम्पत्ति प्राप्त हुई थी।

उस नगरमें उपकेशगच्छीय उपासक अनेक धनी मानी व्यक्ति रहते थे। श्री पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिरजी की देखरेख भी इसी गच्छवालों के संघके सुपूर्द थी। क्योंकि सलक्षणने थोड़े ही समय में इस नगरमें रहकर विशेष ख्याति प्राप्त कर ली थी।

अतः इस मन्दिर की व्यवस्थाकारिणी कमेटी के सभासद भी यह चुन लिये गये। सलक्षणने कमेटी के सभासद होकर इस कार्य को तन मन धन लगा कर सुचारु रूप से किया। जिनालयों के प्रबंध करने में सलक्षण को विशेष अभिरुचि थी अतः सोने में सुगन्ध वाली कहावत चरितार्थ हो गई।

सौजन्य से शोभित सलक्षण के एक पुत्ररत्न था जिसका नाम 'आजड़' था। यह बाल्यवय से ही प्रखर बुद्धिवाला था तथा समयोचित शिक्षा ग्रहण कर वह पुरुषोचित सर्व कलाओं में कुशल था। श्री पार्श्वप्रभु के मन्दिर में नित्य जाकर वह श्रद्धा सहित भक्ति करने के अतिरिक्त अपने गुरु महाराज का भी परम आज्ञाकारी धर्मानुरागी श्रावक था। अपनी वंश की परम्परागत उच्च पदवी पर आरूढ़ रहने के लिये वह सर्वथा योग्य था। संघ में तो वह अग्रगण्य था ही पर राजा भी इन में पूरा विश्वास रखता था तथा आवश्यक्ता होने पर उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों में इन की सहायता एवं परामर्श अवश्य लिया करता था। सलक्षण को पूर्ण विश्वास हो गया कि आजड़ अवश्य जिन शासन की सेवा करने के योग्य है। सलक्षणने इस नगर में रह कर बहुत द्रव्य उपार्जन किया तथा देव, गुरु, धर्म, स्वधर्मी भाइयों और सार्वजनिक कार्यों के लिये उदारतापूर्वक द्रव्य व्यय कर अर्जित लक्ष्मी का यथार्थ सदुपयोग किया। अन्त में अपने गुरुवर्य आचार्य श्री कक्कसूरि के चरणों में धर्माराधन करते हुए जरा अवस्था में अनशनपूर्वक स्वर्गधाम को गमन किया।

आजड़शाहने अपने कर्त्तव्य को पूर्णरूप से निबाहा। इनके द्वारा अनेक शुभ कार्य सम्पादित हुए। उपकेशगच्छाश्रित श्रीपार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर में आपने गुरु देवगुप्तसूरि[1] द्वारा २१ अंगुल परिमाण श्री आदीश्वर भगवान की मूर्त्ति, मूलनायक जी तथा अन्य १७० प्रतिमाओं की अंजनशलाका तथा प्रतिष्ठा करवाई। इसके अतिरिक्त आजड़शाहने एक दूसरा नया मन्दिर बनवाकरके उस में भी कई मूर्त्तियों प्रतिष्ठित करवाईं तथा आजड़शाहने एक रङ्गमण्डप भी बनवाया था। इस प्रकार वे अपने जीवन को आनन्दपूर्वक निर्विघ्नतया बिता रहे थे।

आजड़शाह के एक पुत्ररत्न हुआ जिसका नाम 'गोसल' रखा गया। 'गोसल' की शिक्षा का भार अनुभवी और योग्य अध्यापकों को दिया गया। थोड़े ही समय में परिश्रमी होने के कारण गोसलने सर्व कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली। जब वह सम्यक् प्रकार से इष्ट शिक्षा को ग्रहण कर चुका तो युवावस्था में अवतरित होते ही उस का विवाह एक शिक्षिता गुणवती नामक रूपगुणसम्पन्न बालिका से किया गया। जिस प्रकार गुणवती यथा नाम तथा गुणी थी उसी प्रकार वह गृहस्थी के सर्व कार्यों को सम्पादन करने में भी प्रवीण थी। गुणवती के धर्मानुराग तथा उदारता के स्वभाव से गोसल का गाहस्थ्य जीवन सुखी

---

१ एकविंशत्यङ्गुलाङ्गं नाभेयं मूलनायकम्।
तत्परिकरबिम्बानां सप्तत्याऽभ्यधिकं शतम् ॥ ८९ ॥
विधाप्य श्रीमदुपकेशगच्छीये पार्श्वमन्दिरे।
श्रीदेवगुप्तसूरिभ्यः प्रतिष्ठाप्य यथाविधि ॥ ९० ॥ (ना० नं०)

था। दम्पत्तिद्वय को अच्छी तरह से घर का कार्य उत्तरदायित्वपूर्वक चलाते हुए देखकर आजड़शाहने अपनी अंतिमावस्था को निकट जान आचार्य श्री देवगुप्तसूरिजी को आमंत्रित कर अपने यहाँ बुलाया। गुरुवर्य के आने पर आजड़शाहने विनयपूर्वक अर्ज़ की "गुरुवर्य! मेरा आत्मकल्याण शीघ्र हो ऐसी आज्ञा फरमाइये" आचार्यश्रीके सदुपदेश के परिणामस्वरूप आजड़शाहने सातों क्षेत्रों में मनचाहा धन खर्च किया। उसने अपने भाईयों को भी खूब धन देकर सम्पत्तिशाली बनाया तथा आप स्वयं आचार्यश्री के चरणों में रहते हुए धर्म कार्य करते हुए अन्त में अनशनपूर्वक देहत्याग कर स्वर्गधाम को सिधाया।

गोसलने भी अपनी कुशलता से संघपति के पद को प्राप्त किया। जिस प्रकार वह राज्य और व्यापार के कार्यों में दक्ष था उसी प्रकार वह धर्म आदि के कार्यों में भी सदा अग्रसर रहता था। गोसल अपना जीवन सर्व प्रकार से सुखपूर्वक बिता रहा था। उसके तीन पुत्ररत्न हुए। प्रत्येक पुत्र गुणी और प्रखर बुद्धिशाली था। वे सबके सब अपने कुल को दीपायमान करने वाले थे जिनके नाम क्रम से ये थे—आशाधर, देशल और लावण्यसिंह। गोसलने इनकी शिक्षा के लिये उचित प्रबंध किया। जब ये युवावस्था को प्राप्त हुए तो आशाधर का रत्नश्री से, देशल का भोलीका से तथा लावण्यसिंह का लक्ष्मी से विवाह किया गया। ये तीनों कन्याऐं रूपवती व शीलगुण सम्पन्न थीं। तीनों पुत्र शिक्षा पूर्ण-

१ आजड़ शाहा के कितने भाई थे वह प्रबन्धकारने खुलासा नहीं किया है।

तथा प्राप्त कर चुकने के पश्चात् अपने राज्य व व्यापारिक व्यवसाय में कार्य करने लगे।

यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि लक्ष्मी (money) का स्वभाव सदा चंचल रहता है। जब वह अपने खुदके आवास में ही स्थिर नहीं रह सकती तो यह आशा कब की जा सकती है कि यह दूसरों के यहाँ जाकर भी अचल रहे। कई बार ऐसा भी संयोग होता है कि पौरुष की परीक्षा होने के हेतु भी सम्पत्ति जो पूर्वजोंसे पीछे छोड़ी गई हो या खुदने बहुत यत्न और परिश्रम से प्राप्त की हो सहसा विलायमान हो जाती है। ऐसा ही हाल गोसल का हुआ। यकायक लक्ष्मीने किनारा किया। (Wealth with wings) गोसल, जो एक दिन विपुल वैभवका अधिकारी था, यकायक प्रायः निर्धन हो गया। यद्यपि धन चला गया तथापि गोसल अपने तीनों पुत्रों सहित धर्म मार्ग पर दृढ़ रहा। इतना ही नहीं ऐश्वर्य के अभाव में झंझटों की न्यूनता के कारण वह धार्मिक कार्यों में विशेष रूप से तल्लीन हो गया। वह परम संतोषी था अतः उसे निर्धन होने के कारण किसी भी प्रकार का दुःख नहीं हुआ। जिस प्रकार सुवर्ण को तपाने से वह अधिक खरा होता जाता है उसी प्रकार गोसल भी कसौटी पर कसे जाने पर साहसी और दृढ़ साबित हुआ। धर्मकृत्य करने में तर गोसल नमस्कार मंत्र का जाप करता हुआ इस नश्वर देहका परित्यागन कर स्वर्ग को सिधाया। उसके देहान्त के पश्चात् सुयोग्य जेष्ठ पुत्र आशाधरने सारे व्यवसाय और गृह कार्य को सभाला।

एक बार आशाधरने अपनी जन्मपत्रिका आचार्यश्री देव-गुप्तसूरि के समक्ष रखी और यह प्रश्न किया, " गुरुवर्य ! क्या म भी कभी फिर धनवान होऊंगा ? " प्राचीन समय में आचार्य गण भी लौकिक विद्याओं में पूर्ण विज्ञ होते थे तथा संघ पर संकट आने पर उनका उचित उपयोग भी किया करते थे एवं उस समय के श्रावक भी देव गुरु और धर्म में पूर्ण श्रद्धा रखने वाले होते थे। आचार्यश्रीने भविष्य में लाभ जानकर आशाधर को सम्बोधित करते हुए कहा—" भद्र ! तू अल्प समय में ही बड़ा धनी होगा। यदि उस धन का धार्मिक कार्यों में व्यय उदारतापूर्वक करेगा तो तेरा धन दिन ब दिन बढ़ेगा अन्यथा पुनः वही अवस्था होगी जो इस समय है। इस बातका पूरा ख्याल रखना। " आशाधरने स्वीकार किया कि आपने जो हिदायत की है उसका पूर्णतया पालन करूंगा। तत्पश्चात् वंदना करके वह अपने घर गया। उसने उसी समय यह दृढ़ प्रतिज्ञा की—" यदि मुझे द्रव्य प्राप्त होगा तो सबका सब द्रव्य धर्म के कार्यों में ही लगाऊंगा—और यह कहते हुए हमें अति हर्ष है कि उसने वैसा ही करके अपने प्रणको पूर्णतया निबाहा भी !

एक बार आशाधर जब आचार्यश्री देवगुप्तसूरि के वंदनार्थ पौषधशाला में गया तो उस समय अन्य मुनि तो आहार आदि लेने के लिये बाहर गये हुए थे अतः आचार्यश्री ध्यानमग्न थे। एक सात वर्षकी कन्या भी उस समय पौषधशाला में आई हुई थी। इस सुअवसर को आया हुआ जान कर सच्चाईका देवीने उस

अल्प व्यसक कन्या के शरीर में प्रवेश कर लिया। तदनुरूप होकर देवीने आचार्यश्री को वंदना की। आचार्यश्रीने अपने मनोवांछित प्रश्नों को पूछकर देवी से इष्ट उत्तर प्राप्त किये। इस सुअवसर का उपयोग करने के हेतु आशाधरने आचार्यश्री के समक्ष यह इच्छा प्रकट की "वह दिन कब आवेगा जब मैं विशेष लक्ष्मीपात्र होऊँगा? कृपया यह बात देवी से पूछ कर मुझे बताइये। मैं आपका इसके लिये बड़ा आभार मानूँगा।" देवी जो पास में खड़ी हुई यह बात सुन रही थी बोली, "आशाधर को थोड़े ही समय के पश्चात् दक्षिण दिशा में बहुत द्रव्य प्राप्त होगा और मैं आशा करती हूँ कि वह अपने प्रण को भी अवश्य निभावेगा।" इतना कह कर देवी तो अन्तधान हो गई। आचार्यप्रवरने पाप और दारिद्र को नष्ट करनेवाला महा मांगलिक वासक्षेप आशाधरके सर पर डाला। वह जब दक्षिण दिशाकी ओर व्यापारार्थ गया तो असीम लक्ष्मी उपार्जन करके लाया। तब उसने विना विलम्ब आचार्यश्री के आदेशानुसार सातों क्षेत्रों में बहुत सा धन व्यय किया। द्रव्यके सद्व्य से उसने सहज ही में अक्षय पुण्य उपार्जन कर लिया।

आशाधरने जब देखा कि आचार्य श्री की अब वृद्धावस्था है और इनके जीते जी किसी योग्य मुनि को निकट भविष्य में सूरि-पद मिलेगा ही अतः वह आचार्यश्री के पास जाकर कहने लगा कि आप अपने पद पर किसी योग्य मुनिको चुनिये और उन्हें सूरिपद प्रदान करियेगा! मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि उस अवसर

पर महोत्सव के खर्च का सारा लाभ मुझे उपलब्ध हो। इस पर आचार्यश्रीने कहा, "महानुभाव! अपने उपकेश गच्छ में आचार्य चुनने की प्रणाली इससे भिन्न है। सच्चाईका देवी भविष्य का लाभालाभ विचारकर इस गच्छ के योग्य आचार्य को चुनने का आदेश स्वयं दे दिया करती है! अतः मैं किसी को अपनी इच्छानुसार चुनना नहीं चाहता।" तब आशाधर ने यह प्रस्ताव आचार्य श्री के समक्ष रखा—"इसका क्या कारण है कि जब अन्य गच्छों में एक नहीं वरन् अनेक आचार्य हैं तो इस बड़ी संख्यावाले उपकेशगच्छ में केवल एक ही आचार्य होता है ऐसी परिपाटी क्यूँ है? मेरा ख्याल तो ऐसा है कि यदि कमसे कम प्रत्येक प्रान्त के लिये अपने गच्छका एक एक पृथक आचार्य नियुक्त हो तो इससे कई गुना अधिक उपकार होनेकी संभावना है।" आचार्यश्रीने प्रत्युत्तर दिया कि यद्यपि कई अवस्थाओं में एक ही गच्छ में अधिक आचार्यों का होना विशेष लाभप्रद है परन्तु कई बार लाभ के बदले हानि होनेकी भी सम्भावना बनी रहती है। यही समझकर अपने आचार्योंने ऐसी मर्यादा बांध दी है और अबतक एक ही आचार्य होते आरहे हैं जिसका शुभ परिणाम यह हुआ कि इस गच्छमें पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा न होनेके कारण अनेक बड़े बड़े शासन—प्रभाविक धुरंधर दिग्विजयी आचार्योपाध्यायादि मुनिप्रवर हुए हैं जिन्होंने जैन धर्मकी विजय पताका भूमण्डल में फहराई। आज जो श्रीमाल, पोरवाल उपकेशादि जातियोंसे शासन शोभा पा रहा है वह सब उस पूर्व महर्षियों का ही प्रभाव है और वे सब के सब उसी परिपाटी को निभाते चले आ रहे हैं।

आचार्यश्रीसे आशाधरने कहा कि गुरुवर्य ! कृपया आप मुझे उपकेशगच्छ का पिछला वर्णन तो सुनाइये। मुझे सुनने की पूर्ण उत्कंठा है। इस पर आचार्यश्रीने उपकेशगच्छ की स्थिति का संक्षिप्त इतिहास अपने मुखारबिंदसे सुनाया। भगवान् पार्श्वनाथ से लगाकर अपनी मौजूदगी तकका क्रमबद्ध सुनाया गया' वर्णन आचार्यश्रीने आशाधरको संक्षेपमें ही बताया, जो आगे तीसरे अध्यायमें लिखा गया है। आशाधरने गच्छ के अतीत गौरवको सुनकर परम प्रसन्नता प्रकट की तथा वह उस दिनसे विशेष तौरसे गच्छ प्रेमी होकर गच्छोन्नति की ओर अधिक लक्ष्य देनेलगा।

आचार्यश्री देवगुप्त सूरि जब ८४ वर्ष के हुए तो उन्होंने एक दिन देवी का स्मरण किया। देवी सचाईका प्रकट हुई और बोली कि आपका आयुष्य अब केवल ३३ दिन का ही अवशेष है अतः बताइये आप आचार्य पद पर किसे बिगना चाहते हैं ? आचार्यश्रीने कहा कि मुझे तो कोई ऐसा मुनि दृष्टिगोचर नहीं होता जो इस उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर आरूढ़ होने के लिये सर्वथा योग्य हो। बहुत अच्छा हो यदि आप ही स्वयं बता दें। तब देवीने कहा कि मेरे ख्याल से तो मुनि बालचन्द्र, सूरि पद के सर्वथा योग्य है। इतना कहकर देवी तो अदृश्य हो गई। प्रातः काल होनेपर आचार्यश्रीने आशाधर को बुलाया और रात का सर्व वृतान्त कह सुनाया। आशाधर तो इस अवसर की प्रतीक्षा कर ही रहा था। उसने महोत्सव के लिये भरपूर तैयारी की।

वि. सं. १३३० के फाल्गुन शुक्ला ९ शुक्रवार के शुभ दिन अनेक आचार्यों के समक्ष पार्श्वनाथ भगवान् के मन्दिर में आचार्यपद मुनि बालचन्द्रजी को दिया गया। इस महोत्सव में आशाधरने एक लक्ष दीनार खर्च किये थे। जनता आशाधर की भूरि भूरि प्रशंसा कर उसे द्वितीय वस्तुपाल[1] या तेजपाल की उपमा देने लगी। आचार्यश्री देवगुप्तसूरिने अपने स्थानापन्न आचार्यश्री सिद्धसूरि को कार्य सोंपने के थोड़े दिन पश्चात् ही स्वर्गधाम को गमन किया।

आशाधरने आचार्य श्री सिद्धसूरि को वंदन कर एक बार अनुनय अभ्यर्थना की कि आचार्यवर मुझे धर्मदेशना देकर आत्म-कल्याण का कोई सरलमार्ग बताइये। आचार्यश्री को तो इसमें कोई आपत्ति थी ही नहीं। वे उसे धर्मोपदेश सुना कर दान, शील, तप और भावना पूजा प्रभावना वगैरह के विषय में विशेष विवेचन करने लगे। प्रसंग आने पर उन्होंने शत्रुंजय तीर्थ के महात्मय का भी विवेचन किया और कहा कि यात्रा से कितने कितने ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्त होते हैं? आशाधर के कोमल और निर्मल हृदयपर इस बात का विशेष प्रभाव पड़ा। उसने गुरुराज के समक्ष अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट की कि मैं भी श्री शत्रुंजय

---

१ साधुराशाधरः संघवात्सल्यं विदधे तथा।
अस्मरन् वस्तुपालस्य सर्वदर्शिनिनो यथा ॥ २६० ॥
श्री देवगुप्ता गुरवः क्रमेण त्रिदिवं गताः।
तत्संस्कारधरायां तु स्तूपं साधुरकारयत् ॥ २६१ ॥

तीर्थ का संघ निकालना चाहता हूँ। आचार्यश्रीने फरमाया कि 'शुभस्य शीघ्रं', काल का क्या भरोसा न जाने कब आ दबावे। आत्मकल्याण–साधन का कार्य जितना जल्दी हो सके उतना ही अच्छा। आशाधरने चाहपूर्वक बड़ी तैयारियों की। देश और विदेश से अपने साधर्मियों को बुलवाकर बहुत बड़ा संघ[1] निकाला। सिद्धसूरि के वासक्षेपपूर्वक शुभमुहूर्त में रवाना होकर संघ शत्रुंजय और अर्बुदराज की यात्रा निर्विघ्नतया करता हुआ वापस आया। संघपतिने सातों क्षेत्रों में उदारतापूर्वक बहुत द्रव्य व्यय किया। असंख्य द्रव्य धार्मिक शुभ कार्यों में व्ययकर अपार पुण्यउपार्जन कर अन्त में आशाधरने शांतिपूर्वक देह त्यागी।

उसका अनुज 'देशल' था। जिसकी कीर्त्ति विदेशों तक फैली हुई थी। यह व्यापार में सिद्धहस्त और द्रव्य के अधिकार में कुबेर था। इसकी दानवृति कल्पवृक्ष को भी लजाती थी। यद्यपि इसने मरुभूमि को छोड़कर अन्य जगह वास किया तथापि देव गुरु और धर्मपर दृढ़ होनेके कारण वहाँ भी इसने उचित सन्मान पाया। आशाधर के बाद घर के कार्य का सारा उत्तरदायित्व भी इन्हीं के कंधोंपर था।

शाह देशल के तीन पुत्र थे। धन्य है ऐसे पिता को

---

१ अथ निखिलदेशेभ्यः संघं संमील्य शुद्धधीः।
शत्रुंजयमहातीर्थप्रमुखेषु स सप्तसु ॥ ८९९ ॥
तीर्थेषु महतीं कुर्वन् जिनधर्मप्रभावनाम्।
यात्रां निर्माय निर्मायः संघेशत्वमवाप यः ॥ ९०० ॥

जिसके ऐसे गुणी पुत्र उत्पन्न हुए हों ! इनकी धार्मिकवृति के प्रताप से कलियुगके सारे पाप काँपने लगे । तीनों पुत्र मानों तीनों लोकों के सारभूत थे । जेष्ठ पुत्र का नाम सहज, मझले का साहण और सब से छोटे का नाम समरसिंह था । तीनों पुत्ररत्न साहसी, सुन्दर, शूरवीर, सहनशील, और कुल के शृङ्गार थे । इनमें से तृतीय, जो हमारे चरितनायक हैं, तो विशेष चमत्कारी थे । इनकी बुद्धि, वैभव और भाग्य, अभ्युदय की पराकाष्टा तक पहुँचा हुआ था । इस लोहे की लेखनी का परम सौभाग्य और अभिमान है कि जिसके द्वारा ऐसे दानवीर नररत्नों का चरित अंकित कर आज हम हिन्दी संसार के समक्ष रखने को समर्थ हुए हैं । पाठक प्रवर ! तनिक धीरज धरिये इनके रम्यगुणों का विशद वर्णन, ऐतिहासिक प्रमाणों सहित आगेके अध्यायों में, विस्तारपूर्वक किया जायगा ।

शाह देशल के लघु बान्धव का नाम लावण्यसिंह था, जिनकी गृहिणी का नाम लक्ष्मी था । लावण्यसिंह सचमुच लक्ष्मीपति की नाईं सुख प्राप्त कर रहे थे । इनके जो दो पुत्र थे उनके नाम क्रमसे ये थे—सामन्त और सोगण । दोनों लवकुश की तरह गंभीर, वीर और धीर थे । उच्च गुणोंने तो मानो इन युगल भ्राताओं के शरीर में ही निवास कर लिया हो ऐसा भान होता था । उधर जब लावण्यसिंह का भी सहसा देहान्त हो गया तो देशलशाह का गार्हस्थ्य भार और भी बढ़ गया । देशल-शाह दोनों भाइयों के वियोग से दो पंख कटे पक्षी की तरह

दुःख अनुभव करने लगे परन्तु गुरुवर्यने उपदेशद्वारा उनके चित्त को चिरस्थायी शांति दिलाने का भरसक प्रयत्न किया और लिखते हुए परम हर्ष है कि दूरदर्शी देशल के चित्त पर उसका अच्छा प्रभाव भी पड़ा। वह सांसारिक संताप को छोड़कर धार्मिक कृत्यों की ओर विशेष रुचि प्रदर्शित करने लगा। तीन की जगह पांचों होनहार पुत्रों को (तीन निज के तथा दो अपने अनुज के) पांचों पाण्डवों की तरह समझकर चित्त को आश्वासन देकर दोनों बन्धुओं के वियोग को वे भूल गये। पांचों को जीवनक्षेत्र में विजय प्राप्त करने योग्य शिक्षा दिलाने में उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी।

जब वे पांचों पुत्र पूरी तरह से प्रवीण हो गये तो स्वावलम्बन पूर्वक रहने की व्यवहारिक शिक्षा देने के हित व्यापार कराने के हेतु से देशलशाहने अपने बड़े पुत्र को देवगिरि (दौलताबाद) और साहण को स्थंभन (खंभात) नगर को भेजा। ये दोनों नगर उस समय व्यापारिक केन्द्र होने के कारण खूब उन्नत थे।

सहजपालने अपने बौद्धिकबल से देवगिरिनगर के राजा रामदेव को इस भाँति अपने वशं किया कि उसे प्रत्येक आवश्यक कार्य में सहजपाल का परामर्श लेना अनिवार्य हो गया। राजा के

---

१ सहज श्रीदेवगिरौ रामदेवं नृपं गुणैः।
तथा निजवशं चक्रे यथा नान्यकथामसौ ॥९२५॥

ऊपर ' सहज ' के व्यक्तित्व की अच्छी छाप पड़ गई । यही कारण था कि वह इनके अतिरिक्त और किसी को कुछ नहीं पूछता था । इतना ही नहीं इस आश्चर्यजनक प्रभाव के परिणाम-स्वरूप उन्होंने तैलंगदेश[1] के राजा के हृदय में भी जगह प्राप्त कर ली । सहजपालने इस अवसर का सर्वोत्तम उपयोग कर वहाँ पर एक जिनमन्दिर भी बनवाया । यहाँ तक कि करणाट और पाण्डु प्रान्त के नृपति[2] भी उससे मिलने की इच्छा प्रकट करने लगे । यदि ऐसा हुआ तो कोई अनोखी बात नहीं थी, गुणवानों की तो हर स्थान पर कद्र होती ही है ।

धर्मी पुरुषों की इच्छाएँ भी वैसी ही हुआ करती हैं । देशल के मन में यह इच्छा हुई कि एक मन्दिर देवगिरि में भी बनवाऊं । जब उसने यह बात आचार्य श्रीसिद्धसूरि से कही तो उन्होंने कहा कि देशल, तू वास्तव में पूर्ण शौभाग्यशाली व्यक्ति है । ऐसे प्रान्त में तो जिन मन्दिर का होना नितान्त आवश्यक है। यह कार्य परम पुण्यप्राप्ति का होगा। यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो फिर देर करने की क्या आवश्यक्ता है । यदि उस मन्दिर में भगवान् पार्श्वनाथस्वामी की मूर्त्ति स्थापित की जाय तो बहुत अच्छा हो । देशलने अपने पुत्र सहज को इस आशय का एक

---

१ तिलङ्गाधिपतिर्यस्य कीर्त्या श्रुतिमुपेतया ।
प्रेरितः स्वपुरि स्थानं प्रददौ देववेश्मनः ॥९२७॥

२ कर्णाट–पाण्डुविषये यशसः प्रसरत् सदा ।
तदधीशमुख्यलोकमुत्कं तद्दर्शनेऽकरोत् ॥९२८॥

पत्र लिख भेजा। सहजने उसे सादर स्वीकार किया। उसने देवगिरि नरेश से तुरन्त ही मन्दिर के लिये आवश्यक जमीन प्राप्त करली। इधर सहजपालने बहुत द्रव्य लगा कर देवभवन तुल्य भीमकाय मन्दिर चतुर शिल्पकारों द्वारा तैयार करवा लिया। उधर देशलशाहने आरासन का उत्तम पाषाण मंगवा कर मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की दो दिव्य बड़ी मूर्त्तियों तथा २४ अन्य मूर्त्तियों देवकुलिकाओं के लिये और[2] सच्चाईका देवी, अम्बिका देवी, सरस्वतीदेवी और गुरुमहाराज की मूर्त्तियों भी सुघड़ कारीगरों के हाथों से तैयार करवाईं। इतनी तैयारी कर देशलशाहने आचार्य को विनंती कर देवगिरि चलने के लिये साथ लिया। देशलशाहने साथ में इतने स्त्री पुरुषों को लिया कि इस एकत्र समुदाय को देखकर ऐसा मालूम होता था मानो कोई सेना जा रही है।

इस बात की सूचना जब सहजपाल को मिली तो वह मूर्त्तियों की अगवानी करने के लिये कई मील सत्वर सामने आया। नगर प्रवेश का महोत्सव इतनी धूमधाम से हुआ कि रामदेव नृपति इस अपूर्व जमघट को देख चकित से हो दाँनो तले ऊंगली दबाने लगे। शुभ मुहूर्त में आचार्य श्री के करकमलों से प्रस्तुत बिम्बों की अञ्जनशलाकापूर्वक

---

१ दुष्टारिष्टहरः पार्श्वजिनः श्रीमूलनायकः।
विधाप्यतामयं साधो ! सर्वकामितदायकः ॥९३३॥

२ चतुर्विंशतिबिम्बानि द्वे बिम्बे च बृहत्तरे।
सत्याऽम्बा–शारदायुग्म गुरुमूर्तीरकारयत् ॥९३९॥

प्रतिष्ठा करवाई गई । इस महोत्सव का साँगोपाँग विशद वर्णन करना लोहे की लेखनी की तुच्छ शक्ति के बाहर की बात है । सोलह आना यही कहावत चरितार्थ है ' गिरा अनयन नयन बिनु बानी ' । जिस आंखने देखा वह तो बोल सकती नहीं और जो बानी बोलना चाहती है उसने देखा कहाँ ? चारों दिशाओं की ओर प्रसारित होती हुई कीर्ति को बटोर कर एक जगह रखने के उद्देशसे ही मानो देशलशाहने ध्वजदंड और कलश को स्थापन किया था । उस मन्दिर के इर्द गिर्द कोट बनवाया गया जिनमें रही हुई २४ देवकुलिकाऐं किसी विबुधभवन की याद दिला रही थीं । इससे जैन धर्म की बहुत अधिक प्रभावना तथा वृद्धि हुई । राजा और प्रजा दोनों पर जोरदार असर पड़ा ।

तदन्तर देशलशाह इन कार्यों को कर आचार्य श्री सिद्धसूरि के साथ वहाँसे रवाने होकर गुजरात प्रान्तके पाटण नगर में पहुँचे[२] । क्यों कि वहाँ हमारे चरितनायक समरसिंह पाटण राज्य में सूबेदार के उच्चपद पर अधिकारी थे । पाटण व्यापार का भी केन्द्र था अतः देशलशाह भी वहीं निवासकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे । आचार्यश्री सिद्धसूरि भी उस समय पाटण में विराजकर मोक्षमार्ग का आराधन कर रहेथे ।

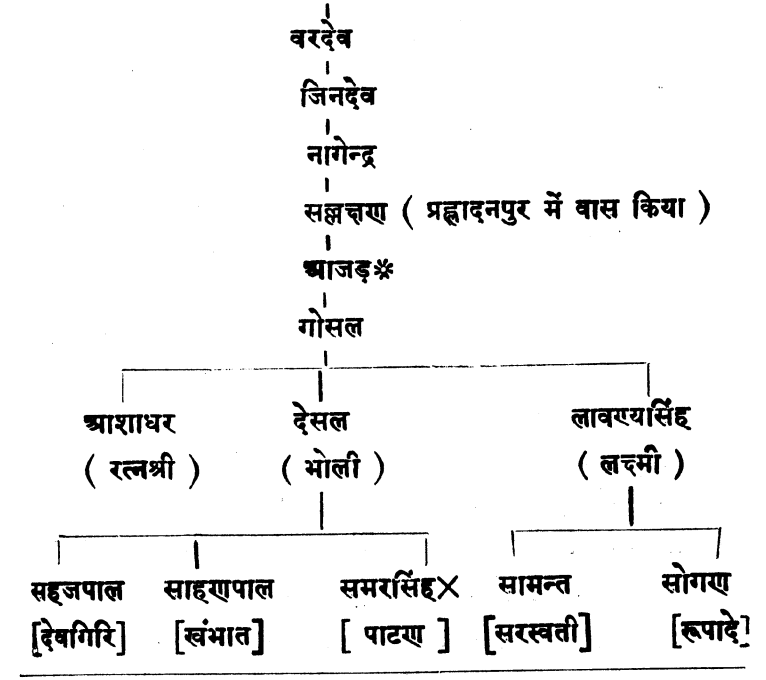
---

१ क्रमेण जलयात्रादि महोत्सवपुरस्सरम् ।
प्रतिष्ठालग्ने समयं सिद्धसूरिसाधयत् ॥ ६४७ ॥

२ साधुर्विधाय विविधैरथ धर्मकृत्यैः । श्री जिनशासन समुन्नतिमत्र देशे ॥
श्री गूर्जरावनिधिभूषणपत्तनेऽसौ । सार्धं जगाम गुरुभिर्गुरुकार्यसिद्धौ ॥९५३॥

चरितनाय का वंश वृत्त—

मरुधराभरण उपकेशनगर (ओशियां) निवासी
उपकेशवंशीय श्रेष्ठिगोत्रीय
श्रेष्ठिवर्य वेसट (किराटकूपनगर में वास किया)



* आजड़ शाहके भाइयों का परिवार पाल्हनपुर में रहा उनकी परम्परा में जेसलशाह और सारंगशाह बड़े नामी पुरुष हुए ।

× समरसिंह के सन्तानादि का इतिहास परिशिष्ट मे दिया गया है शेष कुल-गुरुओं की वंशावलीसे फिर समय पाकर लिखा जाएगा ।

तृतीय अध्याय

उपकेशगच्छ का संक्षिप्त परिचय।



परम पुनीत भवतारक श्री शत्रुंजय महातीर्थ के पंद्रहवे उद्धारक साहसी दानवीर समरसिंहके पूर्वजों का संक्षिप्त वर्णन पाठक पिछले अध्याय में पढ़चुके हैं। इस उद्धारको करवाने का सौभाग्य हमारे चरितनायकको आचार्य श्री सिद्धसूरिकी कृपासे ही मिला था अतः इस अध्याय में आचार्यश्री के गच्छ का संक्षिप्त परिचय पाठकों के सम्मुख रखना असंगत नहीं होगा।

जगत्पूज्य विश्वविख्यात वर्तमान चौवीसीके तेवीसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान् ईसा के लगभग ८०० वर्ष पहले हुए हैं। ये महा प्रतापशाली थे। परहित साधनकी भावनाएँ सदा इनके चित्तमें बसी रहती थीं। इन्होंने पूर्ण आत्मबल प्राप्त किया था। कैवल्य लाभ कर भगवान्ने संसारके असंख्य प्राणियों को सत्य, संयम और अहिंसाके मार्गपर लगाया—उन्हें दुःखोंसे छुड़ाया। इनके महान 'अहिंसा—धर्म' के झंडेके नीचे असंख्य लोगोंने परम

१—"अहिंसा परमोधर्मः" इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मण—धर्मपर चिर-स्मरणीय छाप (मोहर) मारी है। यज्ञ—यागादिकोंमें पशुओं का बध होकर जो 'यज्ञार्थ

शांति प्राप्त की । आपके जीवन पर कई स्वतंत्र ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं अतः हम यहाँ पर इतनाँ ही लिखना उपयुक्त समझते हैं कि उन्होंने जिस कल्याणपथ का ज्ञान जनताको कराया उसके हम पूर्ण आभारी हैं । आज भी अनेक भव्य जीव उनके उपदेशोंके अनुसार अपना जीवन बिताकर आत्मकल्याण कर रहे हैं ।

भगवान् श्री पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टपर आचार्य श्री शुभदत्त गणधर हुए । दूसरे पट्टपर आचार्य श्री हरिदत्तसूरि[1] हुए जिन्होंने स्वस्ति नगरीमें वेदान्ती लोहित्याचार्य को शास्त्रार्थमें प्रेमपूर्वक समझाकर उन्हें ५०० शिष्यों सहित दीक्षित कर जैन बनाया । नव-दीक्षित लोहित्याचार्यने महाराष्ट्र तैलंगादि प्रान्तोंमें विहार कर यज्ञहिंसा आदि को मिटाते हुए जैन-धर्म का खूब प्रचार किया । तीसरे पट्टपर आचार्य श्री आर्यसमुद्रसूरि हुए । आप भी अहिंसा धर्मके प्रचार में खूब सफलीभूत हुए । आपके शासन

पशु-हिंसा ' आजकल नहीं होती है, जैनधर्मने यह एक बड़ी भारी छाप ब्राह्मण-धर्म पर मारी है । पूर्वकाल में यज्ञके लिये असंख्य पशु-हिंसा होती थी । इसके प्रमाण मेघदूत काव्य तथा और भी अनेक ग्रन्थोंसे मिलते हैं । रन्तिदेव नामक राजाने जो यज्ञ किया था उसमें इतना प्रचुर पशु-वध हुआ था कि नदीका जल खूनसे रक्तवर्ण हो गया था ! उसी समयसे नदीका नाम चर्मण्वती प्रसिद्ध है । पशु-वधसे स्वर्ग मिलता है, इस विषयमें उक्त कथा साक्षी है ! परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मण-धर्मसे विदा ले जाने का श्रेय (पुण्य) जैन धर्मके हिस्से में है ।

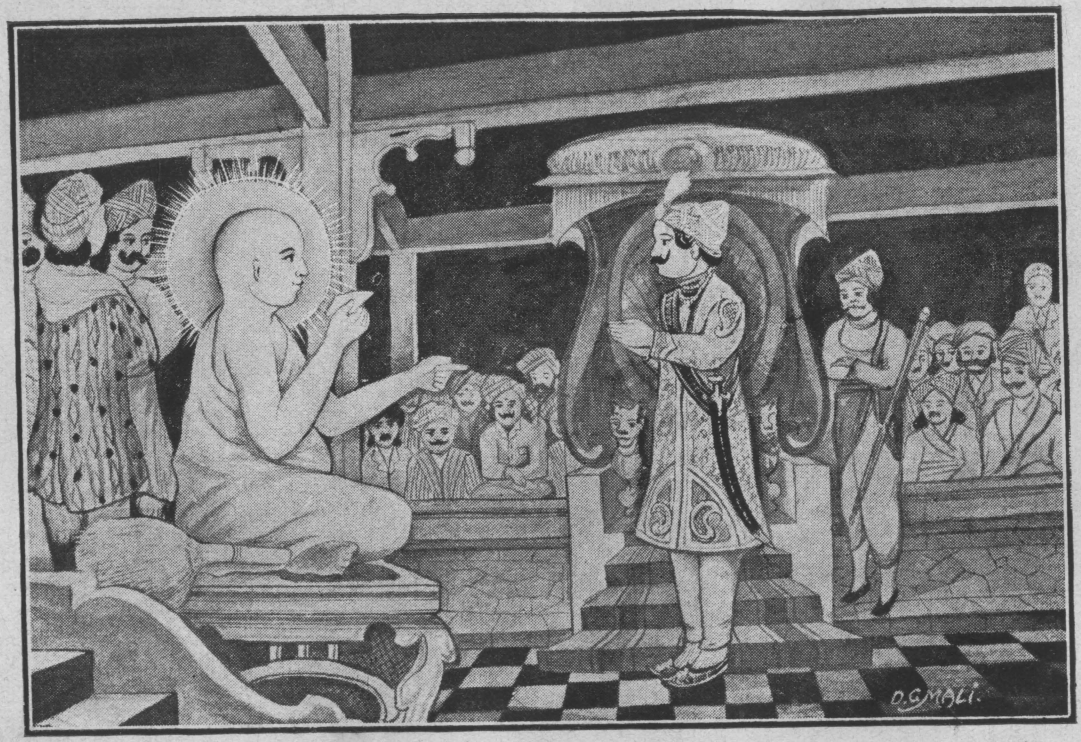
स्व० लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ।

१ देखो-जैन जाति-महोदय । प्रकरण तीसरा पृष्ठ ३.

काल में विदेशी नामक एक प्रचारक आचार्यने उज्जैन नगरीके महाराजा जयसेन को उनकी रानी अनंगसुंदरी और उनके राजकुँअर केशी कुंअर को दीक्षित किया था। चौथे पट्टपर केशीश्रमणाचार्य महान् प्रभाविक हुए। इन्होंने केवल कई राजा महाराजाओंको ही जैन धर्म में दीक्षित किया हो ऐसा नहीं वरन् कट्टर नास्तिक नरेश प्रदेशी को भी अधोगतिसे युक्तियों द्वारा बचाकर आपने उसे सच्चा जैनी बनाकर वास्तव में अद्भुत और अनुकरणीय कार्य कर दिखाया। आप ही के शासनकाल में वर्तमान शासन, जो भगवान् महावीर स्वामी का है, प्रवृत हुआ था। आपने सामयिक सुधार कर जिन शासन को सुदृढ़ और सुनियंत्रण द्वारा व्यवस्थित किया। इसी व्यवस्थित शासन में भगवान् श्री महावीर स्वामीने अपनी बुलुन्द आवाजसे भारतवर्षके कोने कोने में "अहिंसा परमोधर्मः" के संदेश को पहुँचाया। ऐतिहासिक अनुसंधानने यह साबित कर दिया है कि उस समय महावीर स्वामी के झंडेके नीचे ४० क्रोड़ जनता जैन धर्म का पालन कर निज आत्महित साधन में संलग्न थी।

आचार्य श्री केशीश्रमण के पट्टधर आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरि[1] हुए। आपके उद्योगसे जैन–धर्म का विशेष प्रचार हुआ। अनेक आफ़तों को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए आप वाममार्गियों के केन्द्र श्रीमालनगर में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर आपने यज्ञ में होमे जानेवाले सवा लाख मूक पशुओं को अभय–दान दिलवाया। उस

१ देखिये जैनजाति–महोदय तीसरा प्रकरण पृष्ठ १६ से ४० तक



आचार्य स्वयंप्रभसूरिजी पद्मावती नरेश पद्मसेनको जैन बना रहे हैं। (देखो पृष्ठ ७६)



आचार्य रत्नप्रभसूरिजी महाराज उपकेशपुरके राजा उपलदेव आदिको जैन बना रहे हैं।

(देखिये पृष्ठ ७७)

समय वहाँ ९०,००० घरों के निवासियों को आपने अहिंसा के सदोपदेशद्वारा जैनी बनाया। आपका यह असीम उपकार हमारे लिये गूँगेकागुड़ है। इसी प्रकार आपने अपनी असाधारण प्रतिभा के प्रभाव से पद्मावती नगर के राजा पदमसेन को ४५००० घरों की जनता सहित अहिंसा धर्म का परमोपासक बनाया।

आपके पट्टपर प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि हुए। ऐसा कोई विरला ही जैनी होगा जो आपके शुभ नाम और कार्यों से परिचित न हो। आपने असीम बाधाओं को पराजित कर मरुभूमि–स्थित उपकेशपुर नगर में पधारकर ऊपलदेव राजा को ३,८४,००० गृहों के निवासियों सहित प्रबोध देकर जैनधर्मावलम्बी बनाया। यह प्रतिबोधित जन समाज बाद में 'महाजन संघ' नामसे प्रख्यात हुआ। आपके पीछे पट्टधर आचार्य श्री यक्षदेवसूरि हुए जिन्होंने राजगृही नगर में उपद्रव मचाते हुए यक्ष को प्रतिबोध देकर संघ को संकटसे बचाया। पहले आपने मगध, अंग, बंग और कलिङ्ग आदि प्रान्तों में विहार कर सवालक्ष नये जैनी बनाए तत् पश्चात् आप मरुभूमि सदृश दुर्गम क्षेत्रमें पर्यटन करते हुए नये नये जैनी बनाते हुए सिन्धप्रान्त की ओर पधारे और सिन्ध समाट् रुद्राट् और राजकुँअर कक्क को उपदेश देकर जैनी बनाया। इस प्रकार सिन्धप्रान्त में जैनधर्म-प्रचार का अधिकतर श्रेय आपही को है।

---

१ देखिये–जैनजाति–महोदय–प्रकरण तृतीय पृष्ठ ४० से ४९ तक

२ ,, ,, ,, पञ्चम ,, ,, १ से ५२ तक

आपके पीछे पट्टधर आचार्य कक्कसूरि महान् उपकारी हुए। इन्होंने सिन्धप्रान्त में धर्मोपदेश देनेके पश्चात् कच्छप्रान्त की ओर पर्यटन किया। आपने देवी को बलि दिये जानेवाले राजकुँअर की रक्षा कर उसे दीक्षित किया तथा कच्छप्रान्त के कोने कोनेमें अहिंसा का सन्देश पहुँचाया। आपके पट्टपर आचार्य देवगुप्तसूरि महान् चमत्कारी हुए। इन्होंने पञ्जाब भूमि में विहारकर सिद्ध पुत्राचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित कर जैनधर्म में दीक्षित कर बड़ा भारी उपकार किया। आपके पट्टपर आचार्य सिद्धसूरि बड़े ही तपस्वी और जैन मिशन के प्रचारक हुए। आपने भी अनेक प्रान्तों में विहारकर जैन-धर्मके झंडेको फहराया। यह इन आचार्यों के ही अनवरत परिश्रम का शुभ परिणाम था कि महाजन संघ की संख्या जो लाखों तक थी क्रोड़ों तक पहुँच गई और दिन-प्रति-दिन अभिवृद्धि होने लगी।

भगवान् श्री पार्श्वनाथ की समुदाय पहले ही से निग्रन्थ नामसे सम्बोधित की जाती थी परन्तु आचार्य रत्नप्रभसूरिने उपकेशपुरके राजा और प्रजा को जैन बनाया वह समूह उपकेशवंशी (जिसे वर्तमान में ओसवाल कहते हैं) कहलाने लगा। तथा इस समूहके प्रतिबोधक और उपदेशकों को उपकेशगच्छाचार्य की संज्ञा प्राप्त हुई और तदनुरूप यह समुदाय उपकेशगच्छ के नामसे

---

१ देखो—जैनजाति-महोदय पञ्चम प्रकरण पृष्ठ ५२ से ६८ तक
२ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ६८ से ७४ ,,
३ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ७४ से ८१ तक



आचार्य श्री यक्षदेवसूरि सिन्ध प्रान्तके राजा या राजकुमार कक्क कुमारको प्रतिबोध दे रहे है।

(देखिये पृष्ठ ७७)

प्रसिद्ध हुआ। क्योंकि (१) आचार्य रत्नप्रभसूरि, (२) यक्ष-देवसूरि, (३) कक्कसूरि, (४) देवगुप्तसूरि और (५) सिद्ध-सूरि सबके सब प्रभाविक, लब्धिसम्पन्न और विद्यासागर थे तथा इन्हीं पांचोंने मरुस्थल, संयुक्त प्रान्त, सिन्ध, कच्छ और पञ्जाब आदि प्रदेशों में असुविधाऐं झेलते हुए पर्यटन कर अनेक प्राणियोंको मिथ्यात्वसे मुक्तकर जैनी बनाया था अतः प्रस्तुत उपकेश गच्छके आचार्यों की वंश–परम्परा इन्हीं पाँच नामों के आचार्यों द्वारा चली आ रही है। पट्टावली[1] से पता मिलता है कि इस गच्छ में श्रीरत्नप्रभसूरि नाम के ६, श्रीयक्षदेवसूरि नाम के ६, श्रीकक्कसूरि नाम के २३, श्रीदेवगुप्तसूरि नामके २२ और सिद्ध-सूरि नामके २२ आचार्य, इस प्रकार ये सब मिलके ७८ आचार्य तथा श्रीरत्नप्रभसूरि के पूर्व श्रीपार्श्वनाथ भगवान् के पट्ट पर ५ आचार्य हुए। यानि श्रीपार्श्वप्रभु के पट्ट पर आजतक ८४ आचार्य हुए। इन आचार्य के द्वारा जैनधर्म के बड़े बड़े उल्लेख-नीय कार्य सिद्ध हुए जो क्रमसे ये हैं–महाजन संघ की स्थापना; शाखा, प्रशाखा के रूप में गोत्र[2] और जातियों का प्रादुर्भाव; अनेक ग्रंथों की रचना[3]; असंख्य मन्दिर एवं मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा[4]। इन आचार्यों का विस्तृत विवरण तो एक स्वतंत्र ग्रंथ में ही दिया जाना सम्भव है यहाँ तो विशेष प्रतिभासम्पन्न आचार्यों का ही

१ देखो–उपकेश-गच्छ–पट्टावली। जो जैन साहित्य संशोधक त्रैमासिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है।

२, ३ और ४ देखो–इसी अध्याय के परिशिष्ट

दिग्दर्शन मात्र कराना सम्भव है। परन्तु यहाँ यह बात पाठकों को ध्यान में रखना चाहिये कि ऐतिहासिक समय-निर्णय की शृङ्खला के अभाव में एक ही गच्छ में एक नामके ६, ६, २३, २२ और २२ आचार्यों के हो जाने से समय के तथ्य निर्णय के करने में अनेक बाधाओं के उपस्थित होने की सम्भावना अवश्य है तथापि इतिहास के अनुसंधान को कुछ अध्यवसाय द्वारा विशेष परिश्रमपूर्वक अध्ययन करने पर तथ्य निर्णय पर पहुंचना भी सर्वथा संभव और शक्य है।

इस गच्छ में वीर संवत् ३७३ में आचार्यश्री कक्कसूरि महान् प्रभाविक हुए हैं। आप आकाशगामिनी विद्या-विज्ञ थे अतः जिस समय उपकेशपुर नगर में वीरजिन-बिम्ब की ग्रंथी-छेदन के कारण उपद्रव घटित हुआ था उस समय आपश्री ही उसे सहज ही में शांत करने में समर्थ हुए थे।

इन आचार्यों की परम्परा में एक सिद्धसूरि आचार्य भी महान् प्रभाविक हुए हैं। इन्होंने वल्लभीनगरी के महाराजा शिलादित्य को प्रतिबोधित कर जैनी बनाया। वह राजा जिन-शासन का इतना भक्त हुआ कि प्रति वर्ष साश्वती अठाइयों का जिन-मन्दिरों में भक्ति तथा श्रद्धा सहित अठाई महोत्सव करवाता था। आचार्यश्री के उपदेश से इन्होंने श्री शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार भी

---

१ देखो-जैनजाति-महोदय पञ्चम प्रकरण पृष्ठ ८३ से १०४ तक।

कराया। आचार्य श्रीसिद्धसूरिने अन्यान्य प्रान्तों में विहार कर जैन-धर्म की असीम उन्नति की।

कालान्तर इसी गच्छ में महान् चमत्कारी और दस पूर्व-धारी आचार्य श्री यक्षदेवसूरि हुए जो आचार्य वज्रसूरि के सदृश कहलाये। आप दस पूर्व धारी तो थे ही परन्तु इसके अतिरिक्त आप अनेक विद्याओं और लब्धियों से विभूषित थे। जिस समय उत्तर भारतवर्ष में भीषण दुष्काल पड़ा था आपने दक्षिण भारत में विहार किया था। पर्यटन करते हुए आप एक वार सोपारपुर-पट्टन में पधारे। उस समय आचार्य श्रीवज्रसेनसूरि अपने नयें शिष्यों को ज्ञानाभ्यास कराने को चन्द्रादि शिष्यों सहित आचार्य श्रीयक्षदेवसूरि के समक्ष आए और प्रार्थना करने लगे कि इन शिष्यों को शिक्षित करने का भार आप अपने पर लीजिये। परोपकारपरायण आचार्यश्रीने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और तदनुसार चन्द्रादि शिष्यों को परिश्रमपूर्वक पढ़ाने लगे। सच कहा है कि भवितव्यता भी बलवान होती है। इधर इन शिष्यों

---

१ तेषां श्रीवक्रसूरीणं शिष्याः श्री सिद्ध सूरयः।
वल्लभीनगरे जग्मुर्विहरंतो महीतले ॥७३॥
नृपस्तत्र शिलादित्यः सूरिभिः प्रतिबोधितः।
श्रीशत्रुंजय तीर्थेश उद्धारान् विदधे बहून ॥७४॥
प्रतिवर्ष पर्यूषणे स चतुर्मासीक त्रये।
श्री शत्रुंजय तीर्थे गत यात्रायै नृपरुत्तम ॥७५॥
(वि. सं. १३९३ के लिखे उपकेशगच्छ चरित्र से)

का ज्ञानाभ्यास चल रहा था उधर वज्रसेनसूरि अकस्मात् व्याधि-से पीड़ित हो पंचत्व को प्राप्त हो गये। इनके इस वियोग से आचार्यश्री तथा उनकी शिष्य मण्डली बहुत अधीर हो गई। तथापि आचार्य श्री यक्षदेवसूरिने उन्हें विश्वास दिलाया कि अब चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं। जहाँतक मुझसे बनेगा मैं आप लोगों की सब व्यवस्था ऐसे ढंगसे करदूँगा कि जिससे आपको किसी प्रकारसे गुरुवर्य का अभाव न खटकेगा। और आपने किया भी ऐसा ही। उन ज्ञानाभ्यासी छात्रोंमें चन्द्र, विद्याधर, नागेन्द्र और निवृति—ये चार शिष्य ही विशेष अग्रगण्य थे। इन्होंने परिश्रमपूर्वक जी जानसे अध्ययन किया परन्तु कालकी कुटिल गतिके कारण भारतमें भीषण अकाल पड़ने के कारण साधुओं की स्थिति यथायोग्य नहीं रही। अतः दूरदर्शी समयज्ञ आचार्य श्री यक्षदेवसूरिने वज्रसूरिके आज्ञावर्ती साधु और साध्वियों को एकत्र कर वासक्षेप और विधि—विधानपूर्वक चन्द्रादि मुनियों को अग्र-पद प्रदान किया। उस समय ये सब मिलाकर ५०० साधु, ७ उपाध्याय, १२ वाचनाचार्य, २ प्रवर्तक, २ महत्तर पदधर, ७०० साध्वियों, १२ प्रवर्त्तिका और २ महत्तरा थीं। इस समुदाय के आचार्य-पद पर चन्द्रसूरि सुशोभित हुए। बाद दिन—प्रति—दिन संख्यामें वृद्धि होने के कारण इस समुदाय की अनेक शाखाएँ और प्रतिशाखाएँ फैलीं। तपा, खरत्तर, अंचलिया, आगमिया और पूनमिया आदि गच्छ इसीसे निकले हुए हैं। जब कोई नई दीक्षा दी जाती है या नया श्रावक वासक्षेप लेता है तो कोटीगण वज्रीशाखा चन्द्रकुल उच्चा-

रित किया जाता है इसके साथ ये अपने गच्छ, आचार्य या प्रवर्त्तक का नाम भी जोड़ देते हैं। आचार्य चन्द्रसूरिके अतिरिक्त नागेन्द्र, विद्याधर और निवृत्ति के भी महा प्रभाविक कुल हुए। इन कुलों में जिनशासन-प्रभावक बड़े बड़े धर्मधुरंधर आचार्य हुए। क्यूँ न हो ! आचार्य श्री यक्षदेवसूरि का वासक्षेप और ज्ञान ही इस कद्र प्रभाविक था कि उसे यहाँ सम्यक् प्रकारसे प्रकट करने में लेखनी को उपयुक्त शब्द उपलब्ध नहीं होते। यदि वास्तव में देखा जाय तो चन्द्रादि कुलोंपर आचार्य यक्षदेवसूरि का असीम उपकार है।

तत्पश्चात् इस उपकेश गच्छ में देवगुप्तसूरि नामक एक बड़े ही अच्छे प्रभाविक आचार्य हुए जिन्होंने भारत भूमिपर पर्यटन कर जन समाज का बहुत उपकार किया। एकबार आप देवयोगसे कनौजाधिपति महाराजा चित्रांगद से मिले। साक्षात् होनेपर आपने स्वाभाविकतया राजा को ऐसा हृदय प्रभावोत्पादक

---

१ तदत्वये यक्षदेवसूरि रासी द्वियां निधिः ।
दश पूर्वधरो वज्रस्वामि भुत्य भवद्यदा । (उ. चा. श्लो. ७७)

श्री यक्षदेवसूरिर्बभूव महाप्रभावकर्ता द्वादशवर्षे दुर्भिक्ष मध्ये वज्रस्वामि शिष्य वज्रसेन गुरोः परलोकप्राप्ते यक्षदेवसूरिणा चत्वारि शाखा स्थापिता-(उपकेशगच्छ पट्टावली)

श्री पार्श्वप्रभु के १७ वें पट्टपर श्री यक्षदेवसूरि हुए हैं जिन्होंने वीरात् ५८५ वर्षके बारह वर्षीय दुर्भिक्ष में वज्रस्वामि के शिष्य वज्रसेन के परलोकवास होनेके पीछे उनके चार प्रधान शिष्यों के, जो सोपारक पट्टन में दीक्षित हुएथे, नामसे चार कुल अथवा शाखाएँ स्थापित हुई जिनके नाम ये हैं–नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर.....—विजयानदसूरिकृत 'जैन-धर्म-विषयक प्रश्नोत्तर' का प्रश्न ८०।

उपदेश दिया कि राजाने तुरन्त जैनधर्म स्वीकार कर लिया। चित्रांगद की श्रद्धा जिन-धर्मपर इतनी दृढ़ हुई कि उसने आचार्यश्री के सदोपदेशसे श्री महावीरस्वामी का एक भव्य मनोहर मन्दिर बनवाया। उसने स्वर्ण की महावीर मूर्त्ति बनवाकर देवगुप्तसूरि के कर-कमलोंद्वारा उसकी प्रतिष्ठा करवाई। धन्य है ऐसे महान् उद्योगी धर्मप्रचारक आचार्यवरों को कि जिन्होंने राजा महाराजों को प्रतिबोध देकर जैन बनाने के कार्यमें इस प्रकार तत्परता प्रकट की[1]।

कुछ समय बीते पीछे इस गच्छ में यक्षदेवसूरि नामक बड़े ही शक्तिशाली आचार्य हुए। विहार करते हुए वे एकदा मुग्धपुर नगर में पधारे[2]। देवीद्वारा इन्हें पहले ही ज्ञात हो गया कि इस नगर की ओर म्लेच्छ आक्रमण करनेवाले हैं। संघ को सावधान कर, दो साधुओं को मन्दिर और मूर्त्तियों की रक्षार्थ नियुक्त कर आप कायोत्सर्गार्थ बनमें पधारे ध्यानावस्थित हो गये। होनहार के अनुसार ममीचीं नामक म्लेच्छ की अधीनता में पामरों ने मुग्धपुर पर धावा बोलदिया। फिर क्या था? वे लगे मन्दिर

---

१ तदत्वयं देवगुप्ताचार्य यैः प्रतिबोधितः।
श्रीकन्यकुब्ज देशस्य स्वामि चित्रांगदाभिधः।
स्व राजधानी नगरे स्वर्ण बिम्ब समन्वितं।
यो कारय जिनगृहं देवगुप्त प्रतिष्ठितं।

—(उ. चा. श्लोक ८५, ८६)

२ तत पुनर्यक्षदेवसूरयः केचताभवन्।
विहरंत क्रमेण (.....) स्त मुग्धपुरे वरे॥

और मूर्त्तियों तोड़ने । नगर में चारों ओर मार-घात और लूट-खसोट मच गई । मन्दिर और मूर्त्तियों के रक्षार्थ उभय नियुक्त मुनियोंने अपने प्राणोंका बलिदान दिया । बिजली की तरह शीघ्र ही यह समाचार आचार्यश्री के कानों तक पहुँचा तो वे अपने साधु-समुदाय सहित मन्दिर और मूर्त्तियों के रक्षणार्थ तुरन्त मुग्धपुर में पहुँचे । बहुतसे साधु और श्रावक गुप्ततया मूर्त्तियों उठा उठाकर ले गये परन्तु इस घमसान युद्ध में अनेक कत्ल भी हुए । और मन्दिर मूर्त्तियों के रक्षणार्थ रहे हुए आचार्य श्री कतिपय मुनियों सहित कारावास में डाल दिये[1] गए । यद्यपि आपश्री अनेक विद्याओं के पारगामी थे तथापि भवितव्य को कोई मिटा नहीं सकता । एक जैनी को म्लेच्छोंने बरजोरी पकड़कर म्लेच्छ बना लिया था । उसकी गुप्त सहायतासे आचार्य श्री किसी युक्ति-द्वारा बन्दीगृहसे विमुक्त हुए । अपने धर्मका आधारभूत मन्दिर और मूर्त्तियों की रक्षाके हित अपने प्राणों को निछावर करनेवाले साधु और श्रावकों को कोटिशः धन्यवाद दिये ! उपसर्गकी शान्तिके पश्चात् आचार्य श्री अपने मुनि समुदाय को साथ लेकर मुग्धपुरसे प्रस्थान कर षट्कूपनगर पधारे[2] । वहाँ आपने उपदेश देकर ११ श्रावकों को दीक्षित किया ।

---

१ प्रतिमा स्थाधृताः केपि मारिताः केऽपि साधवाः ।
सूरि वंदि स्थित श्राद्धो म्लेच्छी भूतोप्पमोचयत् ॥
× × × ×

२ दत्वा सह स्व पुरुषांन् षट् कूप पुरे प्रभुः ।
प्रापयन्च सुखे नैव भाग्यंजागर्तिय भृणां ॥

वहाँपर मुग्धपुरसे मूर्त्तियों लेकर आया हुआ संघ भी आ मिला। उस संकटावस्था में भी धर्म की रक्षा करते हुए आचार्यश्री आघाटपुर (मेवाड़ की राजधानी) पधारे। आपने श्रमणसंघ की वृद्धि करते हुए जैनधर्म का खूब प्रचार किया। यह घटना विक्रम की दूसरी शताब्दी के लगभग की है। यह समय ठीक उसीसे मिलता है जब कि महात्मा जावड़शाह को म्लेच्छोंने अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाये थे। आचार्यश्री अपनी शिष्य मंडली सहित विहार करते हुए लाट प्रदेश में पधारे। श्री स्तंभण श्री-संघके आग्रहसे सर्वधात की तथा अन्य भाँति की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी आपश्री के करकमलोंसे सम्पादित हुई थी। इस प्रकार से आपने अनेक धर्मोन्नति तथा धर्म-रक्षा के कार्य किये।

इसी गच्छमें पुनः कृष्णर्षि नामक एक बड़े प्रभाविक मुनि हुए थे। वे जाति के ब्राह्मण थे। इन्होंने नन्नप्रभ नामक मुनिके

श्रावकैस्तत्र वास्तव्यैर्दं दिरे निज नन्दनाः।
दीक्षया मास भगवांस्तान कादशं संमिमान्॥

१ श्री विक्रमादेक शते किंचिदभ्यधिके गते।
तेऽजायंत यक्षदेवाचार्य वर्य चरित्रिणः॥

२ स्तंभ तीर्थेपुरे संघकारितः पितलामयः।
श्रीपार्श्वः स्थापितो ये न मन्दिरे यैर्मुनीश्वरै॥
यरिवारे बहौ जाते शिष्यं कंचन धीनिधिं।
कक्कसूरिं गुरु कृत्वा स्वपदे स्वर्गं जगामास॥

(उ० चा० श्लोक १८८ से २०२)

पास दीक्षा ली थी। कृष्णर्षि जिस प्रकार शास्त्रज्ञ थे उसी प्रकार जिन–धर्म के परिश्रमी प्रचारक भी थे। आपने जैनेतरों को विपुल संख्या में जैनी बनाया।[1] चक्रेश्वरी देवीकी आपपर विशेष कृपा थी। देवीकी आग्रहसे आप शास्त्रज्ञान में विशेषज्ञ होनेके अभिप्रायसे चित्रकोट नामक नगर में पधारे थे और वहाँ सकल विद्याओं में पारगामी हुए। तत्पश्चात् विहार करके मरुधरवासियों के सौभाग्य से नागपुर (नागौर) नगर में पधारे। नागोर नगर के निवासी, राज्यमान और विशाल-कुटुम्बी नारायण श्रेष्ठि को प्रतिबोध देकर उसके ५०० कुटुम्बी जनों के साथ उसे जैनधर्म की दीक्षा[2] आपने दी। श्रेष्ठिवर्यने राजासे किले के अन्दर की जमीन लेकर जैन मन्दिर तैयार करवाया। जब मन्दिर बनकर तैयार हो गया तब नारायण श्रेष्ठिने अपने धर्म-गुरु कृष्णर्षि को आमंत्रित किया कि आप इस मन्दिर की प्रतिष्ठा करावें। इस पर कृष्णर्षिने उत्तर

---

१ ततः कृष्णर्षिणा——देव्या चक्रेश्वरी गिरा ।
चित्रकुटपुरे गत्वा विनेय कोऽपि पाठितः ॥
स सर्व्व विद्याः श्रीदेवगुप्ताख्यः स्थापितो गुरुः ।
स्वयं गच्छ वाहकत्वं पालयामास सादरः ॥

२ श्री देवगुप्त गच्छस्य भारं निर्वाह यस्पथ ।
कृष्णर्षिः श्री नागपुरे विहरन्नन्यदा ययौः ॥
तत्र नारायण श्रेष्ठि श्रुत्वा तद्धर्म देशनां ।
प्रतिबुद्ध कुटुम्ब.....शतैं ॥
व्यजिज्ञ पद सौजातु कृष्णार्षि भगवन्नहं ।
कारयामित्वदादेशात्पुरेस्मिन् जैन मन्दिरं ॥ २१७ ॥

उ० ग० च०

दिया कि हमारे गच्छाधीश देवगुप्तसुरि अभी गुर्जरभूमि में विहार कर रहे हैं अतः आप उनसे निवेदन करें। श्रेष्ठिने अपने पुत्रको इस कार्य के लिये भेजा। सूरिजी पधारे तब राजा और प्रजाने मिलकर सम्यक्रीतिसे स्वागत किया। उस नये बनाये गये मन्दिर की प्रतिष्ठा महोत्सवपूर्वक हुई। उस मन्दिर की देखरेख के लिये एक कमीटी नियत की गई जिसके सभासद ७२ स्त्रीएँ और ७२ पुरुष (गोष्टक) चुने गये। इतने बड़े मन्दिर के कार्य के उत्तर-दायित्वपूर्ण करने के लिये इतने ही बड़े समुदाय की आवश्यक्ता थी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि पुरुषों की तरह स्त्रिएँ भी ऐसे कार्य को संचालित करने में समर्थ होतीं थी। कृष्णर्षिने केवल नागपुर में ही नहीं परन्तु सपादलक्ष[2] प्रान्त में भी जैनधर्म का साम्राज्य सा स्थापित कर दिया था। क्या राजा और क्या प्रजा—सबके सब कृष्णर्षि को अपना धर्म गुरु समझ सदैव उनकी सेवा किया करते थे। क्यों न हो—चमत्कार को नमस्कार सब करते ही हैं! कृष्णर्षिने अपने उपदेशद्वारा इस प्रान्तमें इतने मन्दिर बनवाए कि जिनकी ठीक संख्या मालूम करना बड़ा कठिन था। कृष्णर्षि बड़े प्रभावशाली थे। यहाँ तो केवल संक्षिप्त परिचय देनाही हमारा इष्ट है। इन्हीं जैसे और भी अनेक प्रतापी आचार्य इस गच्छ में हुए थे जिन्होंने जिनशासन में प्रचार द्वारा खूब वृद्धि की थी।

---

१ तत्र द्वा सप्ततिं गोष्टीर्गोष्ठिका नापचीकरत।
जैनधर्मस्य साम्राज्यं ततो नागपुरेऽभवत् ॥

२ सपादलक्षे कृष्णर्षिः कृष्टं विदधे तयः।
यन्निरीक्ष्य जनः सर्वो विदधे मूर्द्ध धूननं ॥

विक्रमकी छट्ठी शताब्दी में ककसूरि नामक एक बड़े प्रतापी आचार्य हुए जिन्होंने एकबार विहार करते हुए मरुकोटनगर[1] में पदार्पण किया। उस नगरका महान् बली काकू नामक राजा अपने पुराने किलेका जिर्णोद्धार करवा रहा था उसके खोदने के काम में भगवान् नेमीनाथ की एक मूर्त्ति निकली। जब इस बात का पता आचार्य श्री को हुआ तो आप श्रावकवर्ग सहित जिन-बिम्ब दर्शनार्थ पधारे। उस अवसरपर राजाने आचार्यश्री से यह प्रश्न किया कि यह निमित्त मेरेलिये किस प्रकार का है। आचार्य श्रीने कहा कि इससे अधिक सौभाग्य का चिह्न और क्या हो सकता है कि साक्षात् जिसके यहाँ परमेश्वर की प्रतिमा प्रकट हो। यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। जब श्रावक मूर्त्ति ले जाने लगे तो राजाने इन्कार करदिया और अपने ही व्ययसे राजाने किलेके भीतर ही एक जिनालय तैयार करवा लिया। इस मन्दिर को बन-वाने के लिये राजाने दूर दूरसे चतुर कारीगर बुलवाए थे। यह मन्दिर तात्कालीन शिल्पकला का सर्वोत्तम नमूना था इसकी रचना

---

१ अथ श्री विक्रमादित्यात्पंचवर्ष शतैर्यतैः।
साधिकैः श्रीककसूरि गुरु रासीद्गुणोत्तर ॥
तदाश्री मरुकोट्टस्य वीक्ष्यवप्रं पुरातनं।
दृढं पृथुं कर्तुममा जोइया त्वय संभवः॥
काकुनामा मंडलिको बलवान् बलवृद्धये।
शुभेलग्ने शुद्धभूमौ गर्तापुरमखानयत्॥
खन्यमाना ततो कस्मान्निस्ससार जिनेशितुः।
बिंबश्री नेमिनाथस्य वीक्षितं मुमुदेनृपः॥

ऐसे ढ़बसे की गई थी कि राजा अपने महल में खेड़ हुए ही जिन बिम्ब के दर्शन सुगमतापूर्वक कर सकता था। मंदिर तैयार होने-पर राजाने आचार्य श्री कक्कसूरि को बुलवाकर प्रतिष्ठा करवाई आपने राजा को ४०० घरों के निवासियों सहित जैन बनाके धर्मकी बहुत उन्नति की। धन्य है हमारे ऐसे प्रचारकों को जिन्होंने जिन-शासन की इस प्रकार अभिवृद्धि की।

वहाँ से विहार कर आप राणकगढ़ पधारे। वहाँ का राजा भूट (शूट) शूरदेव, सूरीश्वरजी का व्याख्यान सदैव सुना करता था। सदोपदेश के प्रभावसे राजाने मांस मदिरादि का परित्यागन किया। इतना ही नहीं राजाजीने एक मन्दिर बनवा उसमें श्री शांतिनाथ भगवान् की मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा आचार्यश्रीके करकमलों-द्वारा करवाई।

आचार्यश्री विहार करते हुए उच्चकोट और मरुकोट नगर

---

१ नूतनं परिकरं च कारयामासिवा नृपः ।
श्रीकक्कसूरीनभ्यर्च्य प्रतिष्ठां चव्यधापयत् ।

२ सूरी राणकदुर्गेगाद्विहरन्नथ तत्प्रभुः
भुट्टात्वये सूरदेवो याति तं नं तुम त्वहं
प्रबुधोथ स्वीय पुरे श्रीशान्तिजिनमन्दिरे
कारया मास भूपालं प्रातिष्ठां विदधे गुरुः ।
(उ. चा. श्लोक ६१-६२)

उच्चकोटे मरुकोट्टे श्रीशान्तेर्नेमिनस्तथा
अष्टम्यष्टाहिका भूपसक्कास्पदीदृशी स्थितिः [उ० च:)

में पधारे । राजा और प्रजाने आप का धूमधाम पूर्वक स्वागत किया । जिनमन्दिरों में अठाई महोत्सवपूर्वक भक्ति होने लगी । आचार्य श्री के साथ शान्ति नामक शिष्य था । सूरिजीने उसे सम्बोधन करते हुए कहा—" कहो शांति, तुम भी किसीको प्रतिबोध देकर मंदिर बनवाओगे । " शान्तिने इसे ताना समझ कर उत्तर दिया—" राजा को प्रतिबोध तो मैं दूँगा परन्तु राजा के बनाये हुए मन्दिरकी प्रतिष्ठा कराने लिये आप पधारना । " ऐसा कह शान्ति मुनि सूरिजीकी आज्ञा से कुछ मुनियों को साथ लेकर विहार करते हुए थोड़े ही दिनों बाद त्रिभुवननगरमें पहुँचे । वहाँ जाकर अपनी प्रतिज्ञानुसार राजा को प्रतिबोध देकर मन्दिर बनवाया और साथ ही प्रतिष्ठा के लिये सूरिजी को निमंत्रण भी भिजवाया । यह समाचार सुन सूरिजी बहुत आह्लादित हुए । क्यों न हों ! कमाऊ पूत सबको प्रिय लगता ही है । सूरिजीने त्रिभुवनगढ़ पधारके पूर्वोक्त मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवा राजा को अनेक व्यक्तियों सहित जैन धर्मसे दीक्षित किया । धन्य ऐसे गुरु शिष्यों के कारनामों को ! इससे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि जैन-धर्मके प्रचार की उनके हृदयपटल पर कितने गहरे स्नेह के भाव खचित थे !

इसी उपकेश गच्छ में दो पूर्वधारी देवगुप्त सूरि नामक एक महान् प्रभाविक आचार्य हुए । आपने स्व तथा परगच्छके अनेक जिज्ञासुओं को शास्त्रों का ज्ञान देकर शासनप्रेमी बनाया ।

---

१ प्रतिज्ञा येति सो गच्छत् दुर्गे त्रिभुवनादिके
गिरौ भूपं प्रतिबोध्या कारय जिन मन्दिरं । उ० च० । ६६ ।

श्री देवऋद्धिश्रमणजीने भी आचार्य श्री देवगुप्तसूरिसे एक पूर्व सार्थ और अर्द्ध पूर्व मूल, १½ पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया[1] । जिस देवऋद्धि महाराजने जैन सूत्रों को पुस्तक बद्ध किया था उन्हींके आधार पर आज जैन साहित्य अपने पैरों पर खड़ा है। यहाँ तक तो इस गच्छ में उपर्युक्त पांचों नाम से आचार्योंकी परम्परा चली आ रही थी ।

कालान्तर में मारोट कोट नगर में एक धनकुबेर सोमक नामक श्रेष्ठि रहते थे । उन के किसी शत्रु के बहकाये जानेपर वहां के राजाने इन्हें हवालात में रख बेड़ियों पहना कर बन्दीगृह में डाल दिया था । इन्होंने इस विपदकाल में आचार्य श्रीकक्कसूरि का ध्यान किया जिस के परिणाम स्वरूप इन की बेड़ियें टूट गईं तथा बन्दीगृह के दरवाजो के ताले अपने आप खुले

---

१ पैंतीसवें पट्टपर आचार्य देवगुप्तसूरिजी हुए हैं जिनके पास श्रीदेवऋद्धि गणि क्षमाश्रमणजीने २ पूर्व पढ़े थे ।

—जैनधर्मविषयक प्रश्नोत्तर, प्रश्न ८० विजयानंदसूरि

तत्पट्ट आचार्यश्री देवगुप्तसूरि महान् प्रभाविक हुए। ये दो पूर्वधारी अनेक साधु साध्वियोंको ज्ञानदान देते थे। श्री देवऋद्धिक्षमाश्रमणजी एक पूर्वसार्थ और आधापूर्व मूल पढ़े थे ।—उपकेशगच्छ पट्टावली—

१ तत. प्रभृति प्रत्यक्ष देवी नायाति सत्यक ।
कार्यकाले सदाधत्ते सांति ध्यं गच्छ वासिनां । ४३३

तत्पट्टे कक्कसूरि द्वादशवर्षे यावत् षष्ट तपं आचाम्ल सहितं कृतवान् तस्य स्मरणस्तोत्रेण मारोटकोट सोमकश्रेष्ठिभ्य श्रृंखला त्रुटितः

(उपकेशगच्छ पट्टावली)

दिखाई पड़े। जब राजा को इस बात का पता पड़ी कि इष्ट के बल से सोमक को कितनी बड़ी सहायता मिली है। राजा की श्रद्धा जैनधर्म के प्रति खूब बड़ी। राजाने तुरन्त सोमक को मुक्त कर दिया। सोमक ने बन्दीगृह के बाहर आकर विचार किया कि अहा! गुरुवर्य के नाम के स्मरण में कितना गुण भरा है। अतः मैं सब से पहले इन्हीं का दर्शन करूंगा। चूँकि आचार्य प्रवर उस समय भड़ौंचनगर में विराजमान थे अतः सोमक वहां पहुंचा। जिस समय सोमक उपाश्रय में पहुंचता है क्या देखता है कि अन्य सारे साधु भिक्षार्थ नगर में गये हुए हैं और आचार्य श्री एकान्त में बैठे हुए हैं। उन के पास में एक युवती स्त्री को बैठी हुई देख कर सोमक के मन में शंका उत्पन्न हुई। उसने विचार किया कि जिस के नाम को मैं प्रातःस्मरणीय समझता था वह सब बात मिथ्या सिद्ध हुई। अब मुझे निश्चय हो गया कि मेरी बंधन से मुक्ति का कारण यह आचार्य नहीं किन्तु मेरे पुण्य हैं। ये आचार्य तो एकान्त में युवा स्त्री के पास बैठे हैं।

ऐसा सोचते ही वह धम से धराशायी हुआ और उस के मुख से रक्त-धारा प्रवाहित होने लगी। इतने ही में अन्य साधु भिक्षा लेकर आये उन्होंने सोमक की यह दशा देख कर आचार्य श्रीका ध्यान इस ओर आकर्षित किया। आचार्यने कारण पूछा तो देवीने उत्तर दिया कि इस आदमी के विचार ही इस की दुर्दशा के कारण हैं। सूरिजी सब बात समझ गये तथापि कहने लगे कि हे देवी, इस व्यक्ति को दुःख से बचाओ। देवीने कहा

कि जब यह दुष्ट आप से आचार्यों के लिये ऐसे बुरे विचार रखता है तो फिर अन्य मुनियों के विषय में तो न जाने क्या कलंक लगाता होगा। आचार्यश्रीने कहा कि देवी खमोस करो। अब इस की सुधि लेना चाहिये। इस की कुटिलता का यथेष्ट दंड यह भुगत चुका है। परन्तु देवीने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि ऐसा नहीं होगा। आचार्यश्रीने पुनः अनुरोध किया तो देवीने कहा कि यदि आप की इच्छा है कि सोमक का कष्ट दूर हो जाय तो मैं यह कार्य इस शर्त पर करने को उद्यत हूं कि भविष्य में मैं कभी भी प्रत्यक्षरूप से प्रकट न होऊंगी। गच्छ के कार्य के लिये मैं परोक्ष रूप से ही प्रबंध करदूंगी। आचाश्रीने भी यही उपयुक्त समझा क्योंकि समय ही ऐसा आनेवाला था। सूरिजी की आज्ञानुसार देवीने तुरन्त सोमक की मूर्छा को दूर कर दिया।

सर्व संघ की अनुमति से यह प्रस्ताव स्वीकृत उसी दिन से हो गया कि अब भविष्य में आचार्यों के नाम रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि नहीं रखे जाँय। अतः इस के पश्चात् आचार्यों के नाम की परम्परा इस प्रकार प्रचलित हुई कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि। जो आज तक चली आरही है। अस्तु।

इस समय उपकेश गच्छोपासक २२ शाखाओं के मुनिगणों के नाम के उत्तरार्ध भाग में सुन्दर, प्रभ, कनक, मेरु, सार, चन्द्र, सागर, हंस, तिलक, कलश, रत्न, समुद्र, कल्लोल, रंग, शेखर, विशाल, राज, कुमार, देव, आनंद और आदित्य तथा कुंभ आदि

लगाये जाते हैं। शाखा का अर्थ इतना ही है कि नाम के अंत में वह चिह्न रहे यथा–सहजसुन्दर, देवप्रभ, रूपकनक, धनमेरु, ज्ञानसार, मुनिश्चन्द्र और सुमतिसागर आदि प्रत्येक शाखा में सहस्त्रों मुनि थे। इतनी विपुल संख्या में होने के कारण ही यह गच्छ जेष्ठ गच्छ के नाम से भी संबोधित होता था। इस का दूसरा कारण यह भी था कि यह गच्छ श्रीपार्श्वप्रभु की वंश परम्परा का है।

कुछ समय पीछे ककसूरि नामक आचार्य हुए। ये राजा और महाराजाओं के गुरु कहलाते थे। इस का यह कारण था कि यह गृहस्थावस्था में क्षत्रिय थे। इसी लिये क्षत्रियोंपर आप के उपदेश का अच्छा असर होता था। आचार्यश्री जिनभक्ति के उत्कट प्रेमी थे। मुनि होते भी आप वीणा वाद्य रस में रक्त थे। जब संघने एतराज पेश किया तो आपने अपने पदपर दूसरे मुनि को नियुक्त कर दिया। फिर आप विदेश की ओर पधार गये। भक्ति में अटूट श्रद्धा होने से आप को जैन सम्राट् रावण की उपमा दी जाती थी। इस घटना के होने से सर्व सम्मति से यह निश्चय हो गया कि इस गच्छ की आचार्य पदवी भविष्य में उपकेश वंशीय (ओसवंश) को ही दी जाय। माता और पिता दोनों पक्ष के गच्छ निर्मल होतो और भी उत्तम बात हो। यही मर्यादा आज पर्यन्त इस गच्छ में चली आ रही है।

इसी जेष्ठ गच्छ में और ककसूरि नाम के आचार्य हुये।

---

१ देखिए–उपकेशगच्छ पट्टावली (जै० सा० संशोधक त्रमासिक से।)

उस समय उपकेशपुर में संचेती गोत्रीय कदर्पी नामक शेठ बड़ा ही धनाढ्य और विशाल कुटुम्ब का स्वामी था अतः वह श्रेष्ठिवर्य कहलाता था। एक बार नागरिकों से आप का वैमनस्य हो गया अतः आप उस नगर को सकुटुम्ब त्याग कर पाटण नगर में पधार गये। वहाँ व्यापार में पुष्कल द्रव्योपार्जन किया। वह आचार्य श्रीकक्कसूरि का परम सेवक था। आचार्यश्री के उपदेश से आपने एक जिनमंदिर बनवाना निश्चय किया। द्रव्य जो न्याय-मार्ग से उपार्जित किया जाता है वह ऐसे पवित्र कार्यों में ही सर्फ होता है। मन्दिर बनवाने के लिये कदर्पीने कुच्छ सामग्री बाहर से मंगवाई। जगातवालोंने उस सामग्री पर भी कर वसूल करना चाहा। कदर्पीने कहा कि देवमन्दिर के लिये मंगवाई हुई सामग्री पर कर नहीं देना पड़ता है। ऐसा नियम सब राज्यों में है तब ऐसे धार्मिक राजा के राज्य में वह अंधेर कहाँ का ? परन्तु इतना कहने पर भी दाणी के कान पर जूं तक नहीं रेंगी। अतः कदर्पी बहुमूल्य भेंट ले कर राजा के समक्ष उपस्थित हुआ। वहांपर जाकर मुँहमांगा द्रव्य देकर जगात के महकमे का ठेका ले लिया और नगर में उद्घोषणा करवा दी कि किसी भी प्रकार का कर देवस्थान के लिये आई हुई बाहर की सामग्री पर नहीं लिया जायगा तत्पश्चात् कदर्पीने अपना मनचहा कार्य आदि से अन्त तक निर्विघ्नतासे सफल किया—जो मन्दिर बनवाया था वह देवभुवन[1] के सदृश भीमकाय और मनोहर था।

---

१ कपर्दि नामा निग्रेत्य सुचिंतित कुलोद्भवः सकुटुंबोधनी मानादणहिल्लरं ययो ॥ २१ ॥
समुष्पर्य्य बहुद्रव्यं तत्र देव गृहं नवं विधातुं ढौक्यनैर्भूपं सतोष्याव्वीमयाचत ॥२९२॥

उस समय उपकेश गच्छाचार्य श्रीकक्कसूरि के पट्टधर सिद्ध-सूरिजी थे जो अनेक विद्याविज्ञ थे। ये लब्धी से भी भूषित थे। एकदा जब आप पाटण पधारे तब श्रेष्ठिवर्य कदर्पीने आप के परामर्श से ४२ अंगुल प्रमाण स्वर्णमय चरम जिनेश्वर की मूर्त्ति बनवाना निश्चय किया। इस कार्य के लिये सूत्रधारों को एकत्र कर यह कार्य प्रारम्भ करवा दिया गया। शुभ कार्यों में विघ्न उपस्थित होते ही हैं। एक घटना इस प्रकार हुई कि उस नूतन बनाया मन्दिर के समीप ही भावड़ारकगच्छीय[1] वीरसूरि का एक मन्दिर तथा उपाश्रय था और जिस में वे रहा करते थे। न जाने क्यों वीर-सूरि के हृदय में इर्ष्याने घर कर लिया। जब इधर मूर्त्ति ढालने के लिये स्वर्ण पिघाला गया तो वीरसूरिने अपने मंत्रों के प्रभाव से वृष्टि का आविर्भाव कर दिया जिसके कारण सुवर्ण संचेमें नहीं ढाला सके। इस प्रकार की बाधा एक बेर ही नहीं निरंतर दो तीन बार उपस्थित हुई। कदर्पी बहुत असमंजस में पड़ गया और इस समस्या को हल कराने के उद्देश्य से उपाय पूछने के लिये आचार्य श्री सिद्धसूरिजी के समक्ष गया। कदर्पीने कहा कि

---

१ भावडारकगच्छीयं तत्कपर्दि जिनोकसः
सर्मीपे पूर्व निष्पन्नं विद्यते देवमंदिरं ॥३०१॥
तस्याचार्यो वीरसूरिः सोमर्षवहतीतियन्
नवेना नेन पूर्वस्य भविता पट्टावोनतु ॥३०२॥
} ना० नं० उ०

आप सदृश योगीराज के होते हुए भी यह विघ्न बार बार कैसे हो जाता है ? आप इस के निराकरण का उपाय तुरन्त बताइयें।

सिद्धसूरिजी बड़े विद्याबली और इष्ट बली थे। बाद में इन की बजह से वीरसूरि की दाल नहीं गली। मूर्त्ति सुन्दर आकृति में सुघड़ता से तैयार हो गई। उस मूर्त्ति के युगल नेत्रों में लक्ष लक्ष दीनार की दो अद्भुत और आकर्षक मणियों खचित की गई।

तत्पश्चात् आचार्य श्री सिद्धसूरिजीने बड़े समारोह से उस मन्दिर में मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की। कदर्पी के बनाये हुए कुछ शेष कार्य की पूर्ती बाफणा गोत्रिय बह्मदेवने की। देखिये पारस्परिक प्रेम का क्या अनूठा उदाहरण है ! ब्रह्मदेवने कदर्पी से अनुनय निवेदन किया कि आपने तो मन्दिर बनवा कर अपने मानव जीवन को सफल किया यदि अब कुछ लाभ मुझे भी प्राप्त करने का सौभाग्य आप की कृपा से हो जाय तो बड़ी दया हो।

---

१ मद भाग्यमिदं किंवा शरणं किंवनापरं।
पूज्येषु विद्यमानेषु धर्मविघ्नः कथं भवेत् ॥ ३०९ ॥

२ शुभे लग्नेथसंलग्ने प्रभुश्री सिद्धसूरयः
प्रतिष्ठा वीरनाथस्य विदधुर्विधिवेदिनः ॥ ३१४ ॥

शक्तो सत्यामपिश्रेष्ठि बप्पनागकुलोद्भवः
ब्रह्मदेवस्य सुहृदो गुर्व्याभ्यर्थ नयामुदा ॥ ३१५ ॥

कदर्पीने इस की यह बात सहर्ष स्वीकृत कर ली। ब्रह्मदेवने भी अपनी शक्त्यानुसार द्रव्य व्यय कर पुण्य उपार्जन किया।

आचार्यश्री के शिष्य समुदाय में जम्बूनाग नामक मुनि प्रखर बुद्धिवाला था। वह ज्योतिषविद्या में विशेष पारंगत था। उस को सर्वतायोग्य समझ कर आचार्यने महत्तर पद प्रदान किया। एकवार जम्बूनाग कई मुनियो सहित लोद्रवपुर नगर में गये। वहाँपर ब्राह्मणों की प्राबल्यता थी। यद्यपि उस नगर में जैनियों की बस्ती ही अधिकांश थी तथापि ब्राह्मणों के तात्कालीन अत्याचार के कारण जैनी अपनी इच्छा होते हुए भी जिन-मन्दिर नहीं बनवा शकते थे। इन के आगमन होनेपर श्रावकोंने अपनी कष्ट-कहानी कही। जम्बूनागने अपने शास्त्रार्थ के बल से ब्राह्मणों को पराजित कर उन्हें नतमस्तक किये। शास्त्रार्थ का विषय भी बहुत सोच समझ कर चुना गया था। विषय ज्योतिष का था जिस में कि जम्बूनाग मुनि विशेषज्ञ ही थे। ब्राह्मणोंने राजा के वर्षफल का सार प्रतिदिन का अलग अलग लिखा तो जम्बूनाग मुनिने प्रत्येक घडी का फल लिख कर दे दिया। इन की लिखी हुई बातें बावन तोला पावस्ती सिद्ध हुई।

राजाने जमीन दे कर जिनमन्दिर बनवाया और उस की प्रतिष्ठा जम्बूनाग मुनि द्वारा करवाई। इसी प्रकार अनेक राजा महाराजाओं को शास्त्रार्थ का चमत्कार दिखला कर आपने जिन-शासन की कीर्त्तिपताका चहुँ ओर फहराई।

जम्बूनाग महत्तर
|
देवभद्र ,,
|
कनकप्रभ ,,
|
जिनभद्र ,,

जम्बूनाग के चतुर्थ पट्टपर जिनभद्र हुए। ये विहार करते हुए अणहलपुरपट्टण पधारे। उस समय वहाँ सिद्धराज जयसिंह का राम-राज्य था। राजा की भावजने अपने पुत्र लोतासा को जिनभद्र के सुपूर्द कर दिया। जिनभद्र को ज्ञात हुआ कि इस व्यक्ति के सामुद्रिक शुभ लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में यह लोतासा जिनशासन का महान् उपकारक होगा। अतएव उसे जैन दीक्षा दे कर पद्मप्रभ नाम रखा। ज्ञान ध्यान में पद्मप्रभ को खूब अभ्यास कराया गया। आप के अन्दर तीन गुण विशेष तौर से शोभित थे। प्रत्येक गुण उत्कृष्ट दर्जे का था। वे ये थे-संगीत, वक्तृत्व और अध्यात्म। आप की मधुर लय को सुन कर स्वर्ग की सुन्दरियें भी दाँतो तले ऊँगली दबाती थी। आप की वक्तृत्वकला का क्या कहना। जो व्यक्ति आप का ओजस्वी भाषण श्रवण करता उस के हृदय में वीररस का संचार हो जाता था। आध्यात्मिक ज्ञान तो आप में कूट कूट कर भरा हुआ था। इन गुणोंपर मुग्ध हो कर जिनभद्रोपाध्यायने आप को वाचनाचार्य की उच्च पदवी से विभूषित किया। इस से आप की प्रख्याति और भी विशेष फैली। एक बार आप विहार करते हुए पाटण पधारे। आप के वहाँ कई भाषण हुए। व्याख्यान का विशाल पाण्डाल श्रोताओं से इतना खचाखच भर जाता था कि वहाँ तिल धरने को भी ठौर नहीं मिलती थी।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यने पद्मप्रभ वाचकाचार्य के भाषणों की प्रशंसा सुन कर एकवार उन्हें अपने यहाँ व्याख्यान देने के निमित्त बुलवाया। यह व्याख्यान ऐसा लोकप्रिय हुआ कि पाटणनगर के कोने कोने में इन की भूरि भूरि प्रशंसा श्रवण-गौचर होने लगी। स्वयं हेमचन्द्राचार्यने परोक्षरूप से आप का व्याख्यान सुना और उस की खूब तारीफ की। आपने यह सोच कर कि यदि पद्मप्रभ मेरे पास रहे तो जिनशासन का बडा भारी हित हो, जिनभद्र से इन के लिये याचना की। पर यह कब संभव था कि ऐसे शिष्यरत्न को कोई गुरु अपने हाथ से जाने दे। जिनभद्रने सोचा कि हेमचन्द्र जैसे आचार्यों का वचन न मान कर यहाँ रहना उचित नहीं अतः तुरन्त वहाँ से विहार कर दीया। इन्होंने सेनपल्ली अटवी के रास्ते से विहार इस कारण किया कि लोगों की भीड़ आकर कहीं यहाँ और न रोक ले। हेमचन्द्राचार्यने इन के इस भांति चले जाने की बात राजा कुमार-पाल से कही। कुमारपालने कहा कि मैं वास्तव में कैसा मंदभागी हूं कि ऐसे उत्तम संतपुरुषों की अधिक सेवा न कर सका। आपने कई पुरुषों को इन मुनियों को लाने के लिये भेजा परन्तु सब प्रयत्न विफल हुआ क्यों कि वे कहीं न मिले।

जिनभद्रोपाध्याय और वाचनाचार्य मरुधर निवासियों के सौभाग्य से नागपुर नगर में पधारे। वहाँपर रह कर आपने असीम उपकार किया। वहाँ अपसे–संघने विनय की कि आप यहाँ कुच्छ अरसा और ठहरिये परंतु आप न रुके। वहाँ से

विहार कर आप डाभरेल नगर, जो सिन्ध प्रान्त में है, पधारे। उस शहर में यशोदित्य नामक एक स्वगच्छीय श्रावक था जो धनाढ्य और धर्म का पूर्ण मर्मज्ञ था। वह राज्य में माननीय था अतः वाचनाचार्य के नगरप्रवेश के जुलूस को सफल बनाने में उसने हरप्रकार की सहायता दी। पद्मप्रभ वाचनाचार्य के धार्मिक उपदेशों का प्रभाव वहाँ के नरेश पर इतना अधिक हुआ कि राजाने उन का असीम आभार मान कर ३२००० रूपये तथा बहुत से ऊंट और घोडे अर्पण करने लगा। जो श्रद्धालु भक्त जैन-मुनिवों के आचार से अनभिज्ञ होते हैं वे प्रायः ऐसा किया ही करते हैं। वाचनाचार्यने उत्तर दिया कि-राजन्! यह पदार्थ हमारे ग्रहण करने योग्य नहीं है, यदि तुम्हारी भक्ति करने की इच्छा है तो सब से उत्तम और सीधा उपाय यही है कि आप अहिंसाधर्म का खूब प्रचार करो। राजाने उत्तर दिया कि-यद्यपि आप का कथन उचित है तथापि जो द्रव्य मैं अर्पण करने की इच्छा कर चूका हूं वह मैं कदापि ग्रहण नहीं कर सकता। बहुत उत्तम हो यदि आप ही इस समस्या को हल करने का सरल उपाय बतादें। पद्मप्रभजीने उत्तर दिया है कि-यदि आप की ऐसी ही इच्छा है ती आप यह द्रव्य शुभ क्षेत्रों में व्यय कर डालिये। यशोदित्यने उस द्रव्य से एक रमणिक जैनमन्दिर बनवाया। इस प्रकार से और भी कई धर्माभ्युदय के कार्य आप द्वारा सम्पादित हुए।

यशोदित्य की सहायता से पद्मप्रभने सिन्ध प्रान्त में पधार कर पंचनदपर जाकर त्रिपुरादेवी की आराधना की। देवीने संतुष्ट हो कर स्वयं प्रकट हो इन्हें वचनसिद्धि का वरदान दिया। भाग्यशालियों के लिये ऋद्धि, सिद्धि, देवी और देवता सब के सब हस्तामलक हैं। आपने इस वचनसिद्धि का सदुपयोग इस ढंग से किया कि जिस से जनता पर जिनधर्म का प्रभाव पड़ा और उस की खूब वृद्धि भी हूई।

एक समय वाचनाचार्यजी पाटण पधारे। वहाँ की महारानी जैनधर्मावलम्बिनि थी। आध्यात्मिक ज्ञान में वह विशेष दक्ष थी। वर रानी अध्यात्मशून्य क्रिया करनेवालों के साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं करती थी। अर्थात् वह किसी दर्शनी में साधुपना ही नहीं मानती थी। जब इस बात का समाचार वाचनाचार्यजी को मिला तो वे उस के पास गये और वार्तालाप के अनन्तर अपने आध्यात्मिकज्ञान और अष्टाङ्गयोग के विषय ऐसे उत्तम ढब से प्रतिपादित किये कि रानी चकित हो गई। उस की मिथ्या भ्रमणा दूर हो गई। राणीने कुछ भेट करना चाहा जो उन्होंने यह आदेश दिया कि यह द्रव्य शुभ क्षेत्रों में व्यय किया जाना चाहिये।

उपाध्यायजी और वाचनाचार्यजी अपनी शिष्यमण्डली सहित वापस मरुभूमि की ओर पधारे। आप शास्त्रार्थ में इतने पारंगत थे कि अनेकानेक लोगों को पराजित कर जैनधर्म के प्रेमी और नेमी बनाये। इन के अनोखे और चोखे कार्यों कर विशद

विवेचन चारित्रकारने किया है। इस प्रकार जिधर ये जाते थे, जैन धर्म की चढ़ती व बढ़ती कर आते थे। प्रसंग छिडने पर यहाँ जम्बूनाग का परिचय करा दिया गया है अब पुनः अपने मुख्य विषय पर आते हैं'।

विक्रम की बारहवी शताब्दी की बात है कि आचार्य श्री कक्कसूरि, जो अनेकानेक लब्धियों और विद्याओं के धुरन्धर ज्ञाता थे, विहार करते हुए डीडवाने नगर में पधारे। वहाँ चोरड़िया गोत्रिय भैंशाशाह नामक श्रावक रहते थे जो बड़े चढ़े धार्मिक और निर्धन थे। सत्य में आप की विशेष रति थी। आचार्यश्री के अनुग्रह से इन के यहाँ के उपले सुवर्णमय हो गये। इन्होंने 'गदियाणा' नामक सिक्का चलाया था, अतः इनकी शाखा 'गदइया' के नाम से प्रख्यात हुई। आपने डीडवाने में कई मन्दिर तथा एक कूआ और नगर को चहुँ ओर कोट बनाया जो आजपर्यन्त प्रसिद्ध है। राजकीय खटपट के कारण आप वहाँ से भीनमाल आकर बस गये। इन्होंने देवगुप्तसूरि के पट्ट महोत्सव में सवालक्ष रुपये व्यय किये थे। इन की माताने श्रीशत्रुञ्जय गिरि का संघ निकाला। गुजरात के लोगोंने भेंशाशाह नाम की खिल्ली उडाई। तब भेंशाशाहने तेल, घृत, और चांदी के सौदे में गुजरातीयों को नतमस्तक किये। इस विजय की यादमें दो

---

१ सं. १३६३ का लिखा उपकेशगच्छ चरित्र देखिये। श्लोक ३१७ वें से ४०६ वें तक

बाते करवाई गई--गुजरातीयों की एक लांग खुलवाई और भैंसे पर पानी लाद कर मगवाना बंध करवाया[२]।

तदन्तर इसी गच्छ में महान् प्रभाविक ककसूरि नामक आचार्य हुए। इनका दूसरा नाम कुंकुदाचार्य भी थे। इन्होंने १२ वर्ष तक छट्ठ छट्ठ तपस्या के पश्चात पारणे पारणे आयंबिल किया। बड़े बड़े राजा महाराजा आपके चरणकमलों में उपस्थित रहते थे। आप राज्यगुरु कहलाते थे। आप के शासनकाल में सहस्रों साधु--साध्वियों तथा क्रोड़ों श्रावक विद्यमान थे। आपने अपने आत्मबलद्वारा अनेकानेक लोगों को त्यागी और जैनधर्मानुरागी बनाया। अतःएव आप की विद्वता का प्रभाव चहुंओर प्रसरा हुआ था।

यह समय परिवर्तन का था। श्रमण--संघ में क्रिया की शिथिलता छा रही थी। प्रत्येक गच्छ में क्रिया के उद्धार की आवश्यक्ता अनिवार्य प्रतीत होती थी। और हुआ भी ऐसा ही। प्रायः इसी शताब्दी में गच्छों का प्रादुर्भाव हुआ है। आचार्य श्री अपने गच्छ के क्रिया--शिथिल साधुओं को मृदु और मंजु उपदेश द्वारा पुनः उचित पथ पर ले आते थे अथवा यदि वह साधु उचित कर्त्तव्य का पालन न करता तो उसे गच्छ से विलग कर देते थे। जो साधु इन की आज्ञानुसार क्रिया करते थे वे कुकुन्दाचार्य की संतान कहलाते थे।

---

२ दखिये उपकेशगच्छ--पट्टावली (जैन० सा. सं. पत्र में मुद्रित)

सूरीश्वरजी क्रमशः विहार करते हूए मरुभूमि के सपादलक्ष प्रान्त की ओर पधारे। मार्ग में म्लेच्छों के उत्पीडन से जनता की रक्षा करते हूए उन्हें जैनधर्मानुरागी और इस का अनुगामी बनाया। वहाँ के राजाने आप का यथेष्ठ आदर किया। वहाँ से आप एक संघ सहित अर्बुदराज पधारे। ग्रीष्मऋतु होनेके कारण जल की कमी के कारण संघ पिपासा के घोर कष्ट को अनुभव करने लगा। सबने आप से संकट को मोचन करने के लिये प्रार्थना की। आपने निमित्त ज्ञान के ध्यान से एक बड़ वृक्ष की ओर संकेत मात्र किया। दक्ष श्रावकोंने पानी निकाल कर पिपासा की बाधा को हरा। और संघ इस बात की स्मृति के हित एक स्थम्भ वहाँ बना कर आनंदपूर्वक आगे बढ़ा। चंद्रावती आदि नगरों के श्रावक वहाँ आकर प्रतिवर्ष स्वामिवात्सल्य और महोत्सव मनाया करते थे। पुनः आप माण्डवपुर व उपकेशपुर में श्रीवीर भगवान् के दर्शनार्थ पधारे। वहाँ के श्रावकोंने बहुत आनंद अनुभव किया। चातुर्मास के अन्त में श्रीशत्रुंजय के लिये एक संघ रवाना हुआ। रास्ते में कई जिनालयों की यात्रा की। संघ वापस लौटते हुए पाटण आया। राजा कुमारपालने श्रावकोंने तथा उस समय वहाँ स्थित सर्व आचार्योंने बड़े धूमधाम से आप का स्वागत किया। आप सर्व गच्छ के आचार्यों में अग्रेसर समझे जाते थे।

कुमारपाल नरेश के अत्याग्रह से आचार्य हेमचन्द्रसूरिने योगशास्त्र की रचना की। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण के

अन्तिम पद में ' पढमं हवई मंगलं ' तथा दो वन्दन के स्थान छे वन्दन लिखने से वह सर्वमान्य नहीं हुआ। यद्यपि उस समय बहुत से आचार्य ' पढमं होई मङ्गलं ' माननेवाले थे तथापि हेमचन्द्राचार्य के एक शिष्य—गुणचन्द्रने एक षडयंत्र रचा। उसने राजा कुमारपाल के नाम से एक पत्र लिख कर सर्व गच्छवालों के पास आदमी भेजा कि योग्य शास्त्र को अनुमोदन करनेवाले इस पर अपने हस्ताक्षर करदें। सब आचार्योंने कह दिया कि हमारे नायक उपकेश गच्छाचार्य श्री कक्कसूरि हैं यदि वे इसे स्वीकार कर लेंगे तो हम भी अवश्य स्वीकार कर लेंगे। पत्र ले कर आदमी उपकेशगच्छ के उपाश्रय में आही रहा था कि इतने में सारे आचार्य मिल कर कक्कसूरि के समक्ष उपस्थित हुए। पत्र ले कर वह आदमी भी ककसूरिजी के पास आया। आपने पत्र

---

१ तदा श्री कुमारपाल भूपाल पालयन महीं;
आस्ते श्रीहेमसूरीणं पदाम्बुज मधुव्रतः ॥ ४३५ ॥
तस्याभ्यर्थनया योगशास्त्र सूत्रमसूत्रयन्।
श्रीहेमसूरयो राजगुरवो गुरुसत्तमाः ॥ ४३६ ॥
षट्ट छं (वं)दनानि तन्मध्ये तथा ' हवई मंगलं '
स्थापया मासुरसचार्याः सुराचार्य समप्रभाः ॥ ४३७ ॥
तेषां गणी गुणचन्द्रः स्वकर्षेण गर्वितः
चतुरशीत्ति गच्छानां द्विच्छंदन कदापिनां ॥ ४३८ ॥
सूरीणांमुपाश्रयेषु भट्टपुत्रान्रे शितुः।
राजादेशकरान्प्रषी दिहोक्तं मन्यता मिति ॥ ४३९ ॥ (ना० नं० उ०)

पढ़ कर उस के दो टुकड़े कर के कह दिया कि एक टुकड़ा तो राजा कुमारपाल को और दूसरा हेमचन्द्र को दे देना और साथ में यह भी कह देना कि शास्त्र के प्रतिकूल बात को मानने के लिये कोई भी आचार्य तैयार नहीं है। यह संदेश लेकर आदमी तो चला गया। पीछे सब आचार्योंने मिल कर विचार किया कि समुद्र में रहते हुए मगर से बैर करना उचित नहीं क्योंकि इस समय पाटण का वातावरण हेमचन्द्राचार्य के पक्ष में हैं। महाराजा कुमारपाल यद्यपि सब गच्छों के आचार्यों का मान करता है तथापि वह आचार्य हेमचन्द्र का ही विशेष भक्त है। परन्तु यह कब सम्भव हो सकता है कि अपनी मान्यता के प्रतिकूल योगशास्त्र को कैसे मान सकते हैं। जब ऐसा विचार होने लगा तो आचार्यश्रीने कहा! भो आचार्यों, आप सब क्यों असमंजस में पड़े हो। आप लोग त्यागी हो। एक ही प्रान्त में या नगरमें रहना उचित नहीं, मेरे साथ सिन्ध[1] प्रान्त चलिये, जहाँ एक उपकेशगच्छ आश्रित ५०० मन्दिर और लाखों श्रद्धालु सुश्रावक हैं जो आप की भक्तिपूर्वक सेवा करेंगे। साथ में आप लोगों को नये नये

---

१ तानू चेथ कक्कसूरि सिन्धु देशे मया सह।
आगच्छ तय तस्तत्र किं कर्त्ता सौ नरेश्वरः॥ ४४४॥

यस्य देव गृहस्येच्छा=द्वेक्षावापियस्पतां।
पूरयेतत्रयदेवगृह पंचशती ममः॥ ४४५॥

श्रावका अथ संख्याताश्चलतातोज्जटित्यपि।
संक्लेश कारकं स्थानं दूरतः परिवर्ज्जयेत्॥ ४४६॥ (ना० नं० उ०)

तीर्थों की यात्रा का बड़ा लाभ प्राप्त होगा। श्रावकों को आप के दर्शन और उपदेशामृत का पान मिलेगा। मेरी निजी सलाह तो यही है कि आप को अवश्य सिन्ध प्रान्त की ओर विहार करना चाहिये।

यह बात उन के जी में भा गई। सब आचार्य सिन्ध की ओर यात्रार्थ जाने को प्रस्तुत हुए। उन के कहने से अनेकानेक श्रावकगण भी यात्रा का लाभ लेने को प्रस्तुत हुए। शुभ मुहूर्त में आचार्य श्री कक्कसूरिजी की अध्यक्षता में सारा समुदाय रवाना हुआ। नगर के बाहर नदी के एक चौक में डेरा डाला गया। इस समग्र यात्रियों के स्पइवारों और तम्बुओं को देख कर ऐसा मालूम होता था मानों कोई राजा अपनी कटक सहित वहाँ आ ठहरा हो। इधर यह विशाल संघ सिन्ध जाने को तैयार था उधर पाटण नगर के बच्चे बच्चे के मुंह पर यह बात निकलने लगी कि ऐसा क्या कारण है कि ये सब के सब आचार्य आज यहाँ से विदाय हो रहे हैं। ठीक उसी समय महाराजा कुमारपाल प्रातः-काल अपने बगीचे में जा रहा था। उसने इस जमघट के जनरव को सुन कर अपने अनुचरों से पूछा कि आज यहाँ कौन मंडलिक आया है? नौकरोंने जवाब दिया कि—अन्नदाताजी! यह किसी मंडलिक का आना नही है यह तो सिवाय हेमचन्द्राचार्य के शेष आचार्यों का समुदाय है जो पाटण का परित्याग कर सिन्ध प्रान्त की ओर जानेवाला है। यह सुन कर कुमारपाल बहुत दुःखी हुआ। वह सोचने लगा कि मुझ से ऐसा कौनसा

अपराध बन पड़ा कि ये आचार्यगण मेरी नगरी को सहसा छोड़ रहे हैं। वह लौट कर सीधा हेमचन्द्राचार्य के पास उपस्थित हुआ और सब हाल कह सुनाया। हेमचन्द्राचार्यने भी इस घटना से अपरिचित होना प्रकट किया। हेमचन्द्राचार्य यह वर्णन सुन कर अवाक् रह गये परन्तु जाँच करने पर ऐसा मालूम हुआ कि यह किसी साधु की कारस्तानी है। अतः आप के एक एक साधु को अपने पास बुला कर इस का रहस्य पूछा तो अन्त में गुणचन्द्रने सब रहस्य प्रकट किया जिस पर हेमचन्द्राचार्यने अपने शिष्य को बड़ा भारी उपालम्भ दिया। परन्तु अब अधिक पश्चाताप करना व्यर्थ था। हेमचन्द्राचार्य कुमारपाल सहित आचार्य श्री ककसूरि के समक्ष उपस्थित हो द्वादश आवृत से वन्दना की। इन के आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। आपने गद्गद् स्वर से कहा क्षमसागर! आप मेरे अपराध को क्षमा करिये। गुर्जरेश्वर कुमारपालने कहा कि–हे पूज्यप्रवर! आप अपना विरुद विचार मुझ पर अनुग्रह कर आप सर्व आचार्यों सहित एक बार नगर में अवश्य पधारिये। क्योंकि

---

१ श्रीहेमसूरयः सद्योत्याकुलाः कुलदीपकाः।
दर्शनस्य सात्क्षनायङ्गमुर्भूप समन्विता॥ ४५८॥

पार्श्वे श्रीककसूरीणां दर्शनं मिलितं तदा।
श्रीहेमसूरयः साश्रुलोचना गदगद स्वराः॥ ४५९॥

वंदनं द्वादशावर्तं ककसूरि पादांब्जयोः।
दत्वा लगित्वा स नृपास्तश्युर्भक्तिपरायणाः॥ ४६०॥

प्रसिद्ध है कि " तथ्यो अतथ्यो वा, महिमा हरन्ति जनरव " इस पर आचार्यश्रीने हेमचन्द्राचार्य के शिर पर हाथ रखा और उनकी यथार्थ प्रशंसा की । आपने कहा कि आप उच्च कोटि के विद्वान हो तथा योगशास्त्र जैसे महान् ग्रंथ के रचयिता हो । यदि आप ' पढमं हवइ मंगलं ' के स्थान पर ' पढमं होई मंगलं ' कर देते तो यह बात शास्त्र सम्मत होने के कारण आपका ग्रंथ सर्व गच्छवालों के उपयोग का हो जाता । हेमचन्द्रसूरिने उत्तर दिया कि इस में मुझे किसी भी प्रकार का एतराज नहीं है मैं ' हवई ' की जगह ' होई ' कर दूँगा । पाठकगण ! जरा देखिये कैसी सारल्यता और विवेक तथा विनय का दृश्य है । इस से सिद्ध होता है कि उस समय क्लेश कदाग्रह और हठग्राहीपने का नाम निशान भी नहीं था । फिर क्या कहना था । दोनों आचार्य परस्पर धर्म-वार्ता प्रेमपूर्वक करने लगे ।

महाराजा कुमारपालने अपने अनुचरों को आदेश दिया कि स्वागत की तैयारियाँ करो । संघ तथा कुमारपाल नरेश की विनति स्वीकार कर सर्व आचार्य पाटण नगर में चलने को सहमत हुए । नगरप्रवेश का वह महोत्सव अवश्य दर्शनीय था मानो इन्द्रराज की सवारी चढ़ी हो । जय जय की घोष से

न वरं षट् छंदनानि तथा हवई मंगलं ।
समुद्धर योगशास्त्रयथ सर्वत्र पठ्यते ॥ ४६५ ॥
तथेत्यंगीत्यहेमसूरयः कक्कसूरिभिः
वर्शनेननथ संयुक्ता राहकृत महोत्सवा ॥ ४४६ ॥

आकाश गुँज रहा था। हर्ष का वारापार न था। पहले सब आचार्य व संघ मिल श्रीपंचासरा पार्श्वनाथ की यात्रा कर बाद आचार्य श्री कक्कसूरिंजी के उपाश्रय पहुँचे पुनः वन्दनादि करके सब अपने अपने स्थानों की ओर चले।

ऐसे महान् प्रभाविक आचार्य श्री कक्कसूरि शासन की अति उन्नति कर अन्तमें अपने पट्टपर एक आचार्य को नियुक्त कर उनका नाम देवगुप्तसूरि रख स्वर्ग सिधारे। सूरिजी के स्वर्ग-वास के समाचार को सुनकर संघ के चित्त अति शोक उत्पन्न हुआ पर बात विवश थी। सब आचार्योंने उपकेशगच्छ के उपा-श्रय में उपास्थित हो सूरीश्वर के स्वर्गवास पर बहुत शोक प्रकट किया। आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरि के हृदयपर इस का विशेष आघात पहुँचा। उनके ललाट पर एक विषाद की रेखा खिंच गई। हेमचन्द्राचार्य के मुखसे सहसा यह उद्गार निकले।

गयउ सुकेसरी पीयहुऊ जलु निचितपैं,
हरी लाइ जासु तणइ हुकरडइ महुह पडंती भीणई। १।

अर्थात् "हे शृगालो! अब सुखपूर्वक तृणचरो, जिसके हुँकार मात्रके श्रवण से मुख से तृण छूट पड़ते थे यह केसरी आज दुनिया से चला गया है। वादी व शिथिलाचाचारी रूप शृगालों के मुख से वाणारुप घास जो मुखसे खिसक जाता था उस हूँकार को करनेवाला केसरी आज जैन शासन से चला गया है। इस वाक्य से आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिने अन्यान्य आचार्यों को यह

चेतावनी दी कि अब आप लोगों को ककसूरिजी की तरह सिंहरूप शीघ्र ही धारण कर लेना चाहिये।

आचार्य ककसूरिके पट्ट पर देवगुप्तसूरि हुए। आप पाटण नगर के श्रेष्ठिगोत्रीय देशलशाह के होनहार सुपुत्र थे जिहोंने कई लक्ष द्रव्य को त्याग कर दीक्षा स्वीकार की थी। संसार पक्षमें उनके एक धर्म बहन श्रीबाई थी जिसने अपने भाग के एक लक्ष रुपये अपने धर्म भाई (देवगुप्त सूरि) को अर्पित कर दिये थे। आचार्यश्रीने कहा हम त्यागियों को इस द्रव्य से क्या सरोकार है ? अच्छा हो यदि यह द्रव्य किसी धार्मिक शुभ कृत्य में उपयोग आवे। तदनुसार किसी देव मन्दिरमें उस द्रव्यसे एक विशाल अद्भुत रंगमण्डप तैयार करवाया गया।

समयान्तर में आप विहार करते हुए मरुकोट नगर की ओर पधारे। आपकी सेवामें एक संघ भी साथ था जिसे आपने कई संकटों से उबारा। मारोठकोट के राजा सिंहबलीने जो जइप वंश का था, सूरिजी को अपने नगर में महामहोत्सवपूर्वक स्वागत कर बुलाया। उस राजा के एक बहन थी जिसका विवाह ढूढक राजा से हुआ वह भी सूरिजीसे योगशास्त्र सुनती थी, जिस के परिणाम स्वरूप वह श्राविका बन गई और उसने भी जैनधर्म का खूब प्रचार किया। वि० सं० १२३६ में आचार्यश्रीने पूल्हकूप नगर में स्थित श्री नेमी जिनालय में ध्वजा और दंड की प्रतिष्ठा

करवाई। बाद में क्रमशः विहार करते हुए आप भोयणी नगर पधारे। वहाँ के राजा को धर्मोपदेश दे जिनधर्म का प्रेमी और नेमी बनाया। आप जैनधर्म का प्रचार कर अपने पट्ट पर सिद्धसूरि को आचार्य नियुक्त कर स्वर्गवास सिधारे।

आचार्य सिद्धसूरि का एक गुरुभाई था जिसका नाम वीरदेव थे। वे प्रायः उपकेशपुर में ही रहते थे तथा साधु समुदाय व श्रावकों को पढ़ाया करते थे। आप बड़े विद्वान और अनेकानेक विद्याओं में पूरे प्रवीण थे। आपकी प्रशंसा सुनकर एक योगी आया। उस समय आप एक स्तम्भ पर खड़े थे। योगीने अपनी करामत दिखलाने को उनके पैर स्तम्भ पर चिपका दिये। यह देख वीरभद्रने इस से भी बढ़ कर चमत्कार दिखाने के उद्देश से स्तम्भों को हुक्म दिया कि चलो और वह स्तंभ आज्ञानुसार वीरभद्र को लिये हुए आगे बढ़े। यह करामत देखकर योगी क्षमा मांग नमस्कार कर वीरभद्र का शिष्य बन गया।

वि. सं. १२५२ में उपकेशपुर नगर में एक म्लेच्छ की सेना चढ़ कर आई। उस समय आप अपनी आकाशगामिनी विद्या के कारण उस सेना की खबर लिया करते थे। आपकी ग़ैरमोजूदगी में जब सेना नगर के बहुत निकट आ गई तो श्रावकोंने भय से भ्रान्त हो भगवान् श्री महावीर स्वामी की मूर्त्ति के रक्षणार्थ मूल गंभारे के आडे पत्थर[1] लगा दिये और जनता नगर

---

१ ततः श्रीवीरबिंबस्य पुरः पाषाण बीडकं।
दत्वा द्वारिनिश्ससारस्तावन्म्लेच्छा उपागता॥ ५०८॥ } उ० ग० च०

छोड़ कर पलायमान होने लगी । वीरभद्रने पुनः वहाँ आ कर जनता को विश्वास दिलाया कि आपका और तीर्थ का मैं रक्षण करूंगा । तब म्लेच्छ लोगोंने एकाकी नगर पर धावा करने का निश्चय किया परन्तु वीरभद्र की विद्या के आगे उनकी दाल नहीं गली । वे नगरप्रवेश भी न कर पाये । अतः उपद्रव की सहज ही में शांति हो गई ।

वीरात् ३७३ वर्ष में आचार्य श्री कक्कसूरिने एक सिद्धयंत्र ताम्र-पत्र पर मंत्रयुक्त बनवाया था वह जीर्ण हो गया था । अतः उसका उद्धार सिद्धसूरिने कराया (वि. सं. १२९९) वीरभद्र एक बड़ा ही चमत्कारी, विद्याविज्ञ, साहित्यज्ञ, न्यायी, ज्योतिषी और चिकित्सक विद्वान था जिस के पास अठारहों गच्छों के साधुओंकी ज्ञानाभ्यासार्थ भीड़ लगी रहती थी । विहार के समय में भी वे सब साधु उस के साथ रहते थे और उनके आहार, पानी, वस्त्र और पात्रों की योजना भी वह करवा दिया करता था । पिछली अवस्था में वह सिन्ध प्रांत में अधिकाँश रहता था । इसकी लोक ख्याति इतनी प्रस्तारित थी कि राजा और प्रजा दोनों इसकी मान सत्कार किया करती थी और वीरभद्र को अपना परम गुरु समझती थी । मरुकोट नगर के पार्श्वनाथ जिनालय में एक क्षेत्रपाल था जो नेमीनाथ जिनालय के गोठी को पीड़ा पहुँचाया करता था । वीरभद्रने उसका कष्ट भी नष्ट किया ।

एक बार ये पलहनपुर पधारे । वहाँ की राजसभा में विश्वमल नृपति और विशल मंत्री की संरक्षता में कृष्ण नामक

वेदान्ती से आपने शास्त्रार्थ किया। अन्त में वह वीरभद्रद्वारा बहुत बुरी तरह से पराजित हुआ। इस प्रकार उस नगर में भी जैन धर्मकी पताका अच्छी प्रकार से फहराई। एक दिन वीरभद्रने कहा कि अब मेरी आयु के केवल १९ दिन ही शेष रहे हैं। यह सुनकर संघमें सनसनी छा गई और आप का कथन भी सत्य निकला। ऐसे विजयी पुरुषों का जैन समाज से यकायक विदा हो जाना बहुत असह्य था।

इसी गच्छ में देवगुप्तसूरि के एक शिष्य देवचन्द्र थे। आप को सरस्वती सिद्ध थी अतः आपने अनेकानेक वादियों को शास्त्रार्थ में पराजय कर प्रतिबोध दिया। आप एक बार महाराष्ट्र, तैलंग और करणाटक प्रान्तकी ओर पधारे। उधर जापली नामक नगर में एक धर्मरूचि नामक वादी रहता था जो सप्त छत्रधारी था। उससे शास्त्रार्थ कर देवचंद्रने सातों छत्र छीन लिये। आपने दीगम्बर धर्मकीर्ति आदि अनेकानेक वादियों को भी परास्त किया था।

करणाटक प्रान्तमें धन कुबेर महादेव नामक साहूकार रहता था जिसने देवचन्द्र मुनि की खूब सेवा और भक्ति की। इसके आग्रह से आपने चन्द्रप्रभ नामक काव्य रचा जिसमें २१ सर्ग थे। दूसरे स्थिरचन्द्र नामक मुनि भी काव्यकलाविज्ञ तथा प्रमाणशास्त्र प्रवीण थे। और इनका शिष्य हरिश्चन्द्र भी इतना गुणि था कि गच्छाधिपतिने उसको उपाध्याय की पदवी दी थी। कच्छ प्रान्त का एक राजा जो अपनी कन्याओं को जन्मते ही मार डालता था।

संयोग से वह आप से मिला। आपने उसे युक्तियों द्वारा सत्य मार्ग बताया और उस घातकी मार्ग से बचाया। फिर वह अपनी कन्याओं को नहीं सताया करता था। इनके शिष्य चन्द्रप्रभ उपाध्याय हुए जो बड़े विद्वान और जिन धर्मके प्रचारक थे।

एक समय हरिश्चन्द्र वाचनाचार्य बुलुन्द आवाज से धर्मोपदेश दे रहे थे। व्याख्यानशाला के पास से सारंगदेव नामक राजा सवारी किये जा रहा था। वह मुनिश्री की आवाज को ओजस्वी जान कर थोड़ा ठहर गया। उसे वह उपदेश इतना भाया और सुहाया कि वह वहाँ दो घंटे तक उपदेशामृत पान करता रहा। उसने पीछे जिन धर्मके सिद्धान्तों पर पक्की श्रद्धा भी ठान तथा मान ली।

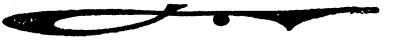
इसी तरह के एक पार्श्व मूर्त्ति नामक साहसी वाचनाचार्य थे। उन्होंने एक अभिग्रह लिया। वह इतना कठिन था कि साधारण मुनि की ऐसी कल्पना तक न हो। वह अभिग्रह यह था जो आपने पहले ही लिख कर एक डिब्बे में डाल दिया था—"मैं उस रोज पारणा करूंगा जिस दिन एक सात वर्ष का क्षत्री नग्न रूपमें रोता हुआ मार्ग में खड़ा अपने हाथ में डोरे में सात बड़े पिरोये हुए मिलेगा।" ऐसा अभिग्रह ले आप दूसरे ग्रामों की ओर विहार कर गये। पूरे ५० दिन बाद अभिग्रह फला।

आचार्यश्री देवगुप्तसूरि भूमंडल में विजयवैजंती लिये विचर रहे थे। आप विहार करते हुए वामनथली (वणथली) पधारे

जहाँ समुद्र नामक धर्म–मर्मज्ञ श्रावक था जिसने मन्दिर भी बनवाया था। वह गच्छ की प्रभावना करने में भी तत्पर था। वहाँ के राजा अर्जुन का कृपापात्र और १२,००० अश्वों का स्वामी कुमारसिंह था वह भी आचार्यश्री के सदुपदेश को सुन कर श्रावक हुआ। वह पराक्रमी वीर योद्धा था उसने गोहाद के राजा को पराजित कर उस का राज्य छीन लिया था। 'रावल' की उपाधि से विभूषित कुमारसिंहने स्तम्भन तीर्थ पर वीर जिनालय बनवा कर सूरिजी से उसकी प्रतिष्ठा करवाई। घृतघठीक नामक नगरी में आचार्यश्री के उपदेश से विजा और रूपलने भी मान्दिर बनवाए। आपके उपदेश के प्रभाव से जैन धर्म के प्रति कई राजपूतों के उच्च भाव हुवे।

कालान्तर में आचार्य ककसूरि तथा उनके पट्ट पर देवगुप्त सूरि महाप्रभाविक हुए। आपकी जीवन गाथा चरित्रकारोंने बहुत उत्तम ढंग से लिखी है। इनके पट्ट पर प्रभाकर सदृश आचार्य श्री सिद्धसूरि हुए जिनके सदुपदेश सें श्रेष्टि–गोत्र–मुकुटमणि देशलशाहने सात वार तीर्थयात्रा कर चौदह क्रोड़ रुपये व्यय किये। आचार्यश्री, शत्रुंजय तीर्थ के पंद्रहवें उद्धारक साधु समरसिंह के धर्मगुरु थे। आप ही के उपदेश से हमारे चरित्रनायकने इस पवित्र कार्य को कर अक्षय पूण्योपार्जन किया। यह वही धीर, वीर और गंभीर नर–सिंह समरसिंह है जिसका जीवनचरित पाठकों को बताने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। चरितनायक

के धर्म गुरु श्री सिद्धसूरिजी आचार्य थे इसी कारण से मैंने इस अध्याय में आचार्यश्रीके गच्छ का संक्षिप्त परिचय पाठकों को कराना उपयुक्त समझा। *



* प्रस्तुत उपकेशगच्छ में आचार्य सिद्धसूरि के पश्चात् भी आज पर्यन्त बड़े बड़े प्रभाविक आचार्योंने जैन शासन का खूब उद्योत किया। हजारों लाखों नये जैनी बनाये हजारों मूर्तियों और सैकड़ों जिन मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा की जिन्हों के संख्याबद्ध शिलालेख आजपर्यन्त मोजूद हैं जिन महर्षियों के बनाये हुए अनेक ग्रन्थ जैन धर्मकी प्रभावना के लिये वर्तमान समय में भी मोजूद हैं। यहाँ समरसिंह के सम्बन्ध का विषय आचार्य सिद्धसूरि के साथ होने से हमने यहां पर चौदहवीं शताब्दी तक का ही संक्षिप्त परिचय करवाया है विस्तार के लिये समय मिलने पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखनेकी मेरी भावना है। शासनदेव इसको शीघ्र सफल करे।

[अवशिष्ट संख्या १]

श्री उपकेशगच्छ चरित्रान्तर्गत आचार्यों की

शुभनामावली.

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा ।

|

शुभदत्तगणधर—

|

हरिदत्ताचार्य—जिन्होंने वेदान्ती लोहित्याचार्य को जैन दीक्षा दे
| महाराष्ट्र में अहिंसा धर्म का प्रचार कराया ।

आर्यसमुद्राचार्य—जिन्होंने यज्ञ-हींसा को निर्मूल की ।

|

केशीश्रमणाचार्य—जिन्होंने प्रदेशी राजादि नास्तिकों को जैन धर्म
| की दीक्षा दे अहिंसा का उपासक बनाया ।

स्वयंप्रभसूरि—जिन्होंने श्रीमालनगर व पद्मावती नगरी में राजा
| प्रजा वगैरह लाखों मनुष्यों को मिथ्यात्व से छुड़ा-
कर जैनी बनाये ।

रत्नप्रभसूरि—जिन्होंने उपकेशपुर (ओशियाँ) के राजा व
| प्रजा को वाममार्गियों के-जाल से बचाकर जैनी
बनाया। उसी समूह को एकत्र कर "महाजन वंश"
की स्थापना की । उपकेशपुर तथा कोरटपुर में

महावीर मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई। आपने अपने जीवन में करीबन् दस लक्ष नये जैनी बनाये।

यक्षदेवसूरि—जिन्होंने अंग, बंग, कलिंग, मगध और सिन्धप्रान्त में जैन धर्म का झंडा खूब फहराया। महाराज रूद्राट् और राजकुँवर कक्क को जैन दीक्षा दी।

कक्कसूरि—जिन्होंने मरूधर-सिन्ध और कच्छ प्रान्त में जैन धर्म का प्रचार किया। देवी के बली होते राजकुँवर को प्राणदान दे उसे सपरिवार जैन दीक्षा दी।

देवगुप्तसूरि—जिन्होंने कच्छ और पञ्जाब प्रान्त में भ्रमणकर के लाखों मनुष्यों को नये जैनी बनाये और सिद्धपुत्राचार्य को जैन दीक्षा दी।

सिद्धसूरि—जिन्होंने लाखों मनुष्यों को जैनी बनाकर शासन की खूब प्रभावना की।

रत्नप्रभसूरि—बड़े ही चमत्कारी और शासन प्रभाविक हुए।

यक्षदेवसूरि—आप जैन धर्म के बड़े भारी प्रचारक थे।

कक्कसूरि—जिन्होंने उपकेशपुर में ग्रन्थीछेद-उपद्रव की शान्ति करवाई आप बड़े ही चमत्कारी अध्यात्म योगी थे।

सिद्धसूरि—जिन्होंने वल्लभीनगरी के राजा को प्रतिबोध दे जैनी बनाया।

यक्षदेवसूरि—जिन्होंने दुष्काल के पश्चात् वज्रसेनसूरि की सन्तान को सुव्यवस्थित कर चन्द्रादि चार कुलों की स्थापना की।

देवगुप्तसूरि—जिन्होंने कान्यकुब्ज नरेश चित्रांगद को प्रतिबोध दे कर अनेक मनुष्यों के साथ जैनी बनाया।

यक्षदेवसूरि—जिन्होंने संघ या मन्दिर मूर्त्तियाँ के लिये प्राणार्पण करने को कटिबद्ध हो म्लेच्छों के आक्रमणों से धर्म की रक्षा की।

नन्नप्रभ महत्तर (एक महान् पदवीधर)

यक्षप्रभ महत्तर ,,

कृष्णर्षि महत्तर—जिन्होंने मरुभूमि-सपादलक्ष और नागपुर (नागोर) प्रान्त में जैन धर्म का साम्राज्य स्थापन कर अनेक मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा की—

कक्कसूरि—जिन्होंने उपकोट, मरुकोट, राणकगढ़ और त्रिभुवन-गढ़ के राजा प्रजा को जैन बना के अहिंसाधर्म का प्रचार किया।

कक्कसूरि—जिन्होंने संचेति कुलभूषण कदर्पि के बनाये गये विशाल मन्दिर की बड़ी ही चमत्कारपूर्ण प्रतिष्ठा की।

जम्बूनाग महत्तर—जिन्होंने लोद्रवपुर में ब्राह्मणों
| को पराजित कर भाटी नरेश को जैन
धर्म का अनुयायी बना के वहाँ नये
मन्दिरों की प्रतिष्ठा की ।

देवभद्र महत्तर
|
कनकप्रभ महत्तर
|
जिनभद्र महत्तर
|
पद्मप्रभवाचनाचार्य—आपका पवित्र चरित्र बड़ा ही
| अलौकिक है।

ककसूरि—जिन्होंने डीडवाना के भैंशाशाह को सहायता दी ।
|
देवगुप्तसूरि—जिन्होंने भैंशाशाह की माता के संघ में श्री शत्रुंजय
| की यात्रा की ।

ककसूरि—जिन्होंने बारह वर्ष घोर तपश्चर्या कर अनेक लब्धियें
| प्राप्त कीं । आप राजगुरु के नाम से प्रख्यात थे।
पाटण के चौरासी उपाश्रय में आप नायक थे
आचार्य हेमचन्द्रसूरि तथा कुमारपाल नरेश आप
का बड़ा सन्मान और सत्कार करते थे । आपका

दूसरा नाम कुकुंदाचार्य भी था आप की सन्तान कुकुंद्राचार्य के नाम से विशेष मशहूर थी—

देवगुप्ताचार्य—आप अहिंसा धर्म के बड़े प्रचारक थे। अनेक जैनेतर लोगों को आपने जैनी बना के ओसवंश में वृद्धि की थी।

सिद्धसूरि—जिन्होंने तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय का पंद्रहवा उद्धार श्रेष्ठिवर्य समरसिंह से करवाया।

कक्कसूरि—जिन्होंने नाभिनन्दनोद्धार और उपकेशगच्छ चरित्र नाम के ऐतिहासिक ग्रन्थों का निर्माण कर जैन समाज पर परमोपकार किया।

नोट—यहाँ पर प्रसंगानुसार दानवीर तीर्थोद्धारक श्रेष्ठिवर्य समरसिंह के समय तक के उपकेशाचार्यों का ही संक्षिप्त से परिचय करवाया है। शेष पट्टावली के लिये एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा जा रहा है। शुभम्



[अवशिष्ट संख्या २]

श्रीउपकेशगच्छाचार्योंद्वारा स्थापित किया हुआ

" महाजन संघ "

—→※←—

योंतो उपकेशगच्छ के आचार्योंने अपने जीवन के अधिकाँश भाग अजैनों को जैन बनाने में ही लगाया जिससे जैन संसार की असीम अभिवृद्धि हुई। जैसे आचार्य श्री हरिदत्तसूरिने स्वस्तिक नाम्नी नगरी में लोहित्याचार्य को जैन दीक्षा दे उन्ह महाराष्ट्र प्रान्त में भेजकर हिंसावादियों को पराजित कर जैन धर्म की पताका फहरा सहस्रों जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई। इतिहास का अध्ययन करने से मालूम होता है कि दुष्काल के समय आचार्य श्री भद्रबाहुस्वामी अपने १२००० शिष्यों सहित महाराष्ट्र प्रान्त में जिन मन्दिरों की यात्रार्थ पधारे थे। आचार्य श्री केशीश्रमणने प्रदेशी जैसे परम नास्तिक नृपति को अपने सदोपदेश द्वारा जैनी बनाकर जैनेतरों पर अपनी विशेष धाक जमाई और जनता का असीम उपकार किया। आचार्यश्री स्वयंप्रभसूरिने श्री मालनगर, पद्मावती और चन्द्रावती तथा कोरंटपुर के लाखों अजैनों को जैनी बनाया। आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरिने उपकेशपुर नगर में पधारकर लाखों मनुष्यों को वासक्षेप के विधिविधान से जैनी बनाकर उस समुदाय का नाम 'महाजन संघ' रक्खा। इसके

पूर्व अन्यान्य प्रान्तों में चारों वर्णों के लोग जैनधर्मका पालन करते थे परन्तु मरुभूमि में वाममार्गियों का इतना प्राबल्य हो गया कि एक ऐसी संस्था स्थापित करना अनिवार्य हो गया कि जिससे सब लोग जैनधर्म की उपासना समानरूप से करने के अधिकारी समझे जायँ। वही संस्था आज पर्यंत चली आ रही है जो वर्तमान में ओसवाल के नाम से लोकप्रसिद्ध है।

आचार्यश्री यक्षदेवसूरिने भारतवर्ष के पूर्वीयभाग में सवा-लक्ष जैनी नये बनाये तथा सिन्धप्रान्त में जैनधर्म का बीज वपन करने में अनेकानेक बाधाओं का निर्भीकतापूर्वक सामना किया। आचार्य श्रीकक्कसूरि जो सिन्धाधिपति महाराज रुद्राट् के सुपुत्र थे उन्होंने दीक्षित होने के पश्चात् अपनी जन्मभूमि के उद्धार में ही अपनी सारी शक्ति लगाई जिसके परिणामस्वरूप सिन्ध प्रान्त में जैन साम्राज्य स्थापित होगया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक सिन्धप्रान्त में अकेले उपकेशवंश के ५०० जिनालय विद्यमान थे। आचार्य श्री देवगुप्तसूरि ने कच्छ प्रान्त में असंख्य जैनी बनाये। आचार्य श्रीसिद्धसूरिने पञ्जाब और उसके निकटवर्ती प्रदेशों में परिश्रमपूर्वक लाखों अजैनों को जैनी बनाया।

इनके अतिरिक्त और भी उपकेशगच्छ के आचार्योंने जहाँ जहाँ पदार्पण किया असंख्य अजैनों को जैनी बनाया। जिससे महाजन संघ की असीम अभिवृद्धि और जिनशासन की उत्कट सेवा हुई। विक्रम से चार शताब्दी पूर्व ही शुद्धि और संगठन का

कार्य प्रारम्भ हुआ था। तब से लेकर विक्रम की बारहवीं शताब्दी अर्थात् १६०० वर्ष पर्यंत इस कार्य में उपकेशगच्छ के आचार्योंने ही विशेष सफलता प्राप्त की। ज्यों ज्यों नये नये जैनी बनते गये त्यों त्यों उनके पूर्व गोत्रों के नाम विस्मरण होते गये और जैसे २ कारण मिलते गये वैसे वैसे नये नये गोत्र स्थापित होते गये।

गोत्रों के नामकरण के कई कारण हुए। कई गोत्र गुण के कारण, कई व्यवहारिक कारण से, कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम की स्मृति–हित, कई धार्मिक कार्यों के कारण और कई हँसी दिल्लगी हित पृथक् पृथक् गोत्र और जातियों के नाम से पुकारे जाने लगे। परन्तु ये सब की सब जातियाँ थी उपकेशगच्छोपासक ही। किन्तु बाद में जब समय पलटा, दुष्काल आदि दैवी संयोगों के फलस्वरूप श्रमण संघ में शिथिलता का संचार हुआ तो बहुत से लोग मनमानी करने को ऊतारू हो गये। यहाँ तक कि वह लोग चैत्यावास करने लग गये। जब चैत्यवासियोंने अपना पक्ष खींचना चाहा तो उसमें मुख्य मन्दिरों का ही कारण लिया था। चैत्यवासियोंने अपने अपने मन्दिरों के गोष्टिक (सभासद्) नियुक्त किये। कुछ अर्से बाद चैत्यवासी अपने मन्दिर के गोष्टिकों पर छाप मारने लगे कि तुम हमारे श्रावक हो। यहाँ तक कि दो तीन पीढ़ियां बाद वे यह कहने लगे कि तुम्हारे पूर्वजों को हमारे आचार्योंने मांस मदिरा आदि छुड़ा के जैनी बनाया था अतः तुम हमारे ही श्रावक हो और इसी लिये हमारा तुम्हारे ऊपर पूर्ण अधिकार है।

इस कारण से श्रावक समाज उन्हें अपना गुरु मानने लगी। दान आदि देते समय वे अपने मन्दिरों को (दुगुना) दान देकर उन को अपनाने लगे। बाद में उन्हीं चैत्यवासियों से कइयोंने क्रिया का उद्धार कराया और जिस समूह में से किसीने अमुक कार्य किया वही एक पृथक नाम से पुकारा जाने लगा जिससे समूह का नाम पड़ गया। विक्रम की तेरहवीं सदी में यही समूह पृथक पृथक गच्छ के रूप में परिणत हुए। जैसे वड़ गच्छ, तपा गच्छ, खरतर गच्छ, आंचलिया गच्छ, पूनमिया गच्छ, सार्ध पूनमिया गच्छ, चित्रावल गच्छ इत्यादि श्रावकवर्ग जो चैत्यवासी—समय में गोष्टिक नियुक्त किये हुए थे और वे जिस समूह के उपासक थे उसी गच्छ के उपासक कहलाने लगे।

कई लोग जो पोशाल बद्ध हो गये थे वे अपने गोष्टिकों की वंशावली आदि लिखने लग गये और उन वंशावलियों में उनके पूर्वजों को प्रतिबोध देने की घटनाऐं मन घडंत लिपिबद्ध कर दी। यह कार्य बादमें उनकी आजीविका का आधार हो गया।

महाजन संघ भारत के कोने कोने में प्रसारित हो गया। इनके फैल जाने के ही कारण उपदेशकों का भी विविध प्रान्तों में आना जाना बना रहने लगा। कई स्थान ऐसे भी रहे जहाँ पर गृहस्थों के गच्छ गुरु नहीं पहुंचे थे. अतः उन्हें अन्य गच्छ के गुरुओं के पास आना जाना होने लगा। ऐसी दशा में वे गृहस्थ जिनके गुरु थे उनके पास नहीं पहुँच पाते थे कोई ऐसा कार्य संघ निकालना, प्रतिष्ठा या उजमना करना होता था तो तत्सम्बन्धी क्रिया

के विधान के हित निकटवर्त्ती अन्य गच्छ के गुरुओं के समीप भी जाना पड़ता था। ऐसी वस्तुस्थिति में अपनी स्वार्थसिद्धि के हेतु वे अन्य गच्छ के गुरु यह शर्त उपस्थित करते थे कि यदि तुम हमारे गच्छ के उपासक बनके हमारे गच्छ की क्रिया करना स्वीकार करो तो तुम्हारे साथ चलके हम तुम्हें क्रियाविधान में अवश्य सहायता देंगे अतः गृहस्थों को विवश होकर अपने गच्छ की क्रिया का परित्याग कर अन्य गच्छ को स्वीकार करना पड़ता था अतः गच्छ की शृङ्खला का नियम टूटने लगा। क्रमशः इसका परिणाम यह हुआ कि एक ही गोत्र=जाति पृथक् २ गच्छोपासक बन गई एक प्रान्तमें एक जाति अमुक गच्छोपासक है तो दूसरे प्रान्तमें वही जाति दूसरे ही गच्छ की क्रिया करती है। शुरूसे जिसने अपने गच्छ की क्रिया बदली थी वह बदलनेवाला मूल पुरुष तो यह जानता था कि हमारा गच्छ अमुक है पर इस कारणसे हमने अमुक गच्छ की क्रिया करना स्वीकार किया था पर उन्हके दो तीन या अधिक पीढ़ियां के बाद तो वे अपने प्रतिबोधक आचार्य और गच्छ तक को भूलके कतघ्नी हो उस उपकार के बदलेमें अपकार करने को भी तैयार हो जाते थे तथा आज भी ऐसे कृतघ्नियों की कमी नहीं है। इस विषय को विस्तारपूर्वक लिखने का यहाँ अवकाश नहीं है पर वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने के लिये फिर समय पाकर पाठकों के सामने रक्खूगा।

कभी कभी इस गच्छ भेद के कारण शक्तियों का दुरुपयोग भी होने लगा। यह तो हम कदापि नहीं कह सक्ते कि उपकेशगच्छ के अतिरिक्त अन्य गच्छवालोंने अजैनों से जैनी नहीं बनाये। परन्तु इतना तो हम दावे के साथ कह सकते हैं कि विक्रम से पूर्व चौथी शताब्दी से लेकर विक्रम के बाद की बारहवीं शताब्दी तक महाजन संघ की स्थापना और वृद्धि में जितनी सफलता उपकेशगच्छाचार्यों को मिली उतनी दूसरे गच्छवालों को नहीं मिली थी। बाद में भी उपकेश गच्छाचार्योंने इस पवित्र कार्य में विशेष सफलता प्राप्त की थी और अन्य गच्छवालोंने भी इस कार्य को अवश्य अपनाया था। उपकेशगच्छ के आचार्योंने उपदेश देकर जो गोत्र स्थापित किये उनकी शोध करने से जो पता हम को लगा है वह बहुत कम हैं तथापि उसकी सूची हम यहाँ पाठकों के अवलोकनार्थ देते हैं—यह सूची संक्षिप्त में इस प्रकार है। प्रत्येक गोत्र की शाखाएँ प्रशाखाएँ निकली हैं उनका इतिहास क्रमशः जैन जाति महोदय ग्रंथ के खण्डों में लिखा जावेगा। यहाँ पर केवल नाम मात्र ही देते हैं।

क्रम नं.	राजपूतों से मूल गोत्र,	शाखाएँ प्रतिशाखाएँ	आचार्य	समय	नगर	देवी
१	तातेड़ गोत्र	तोडियाणी आदि २२	पार्श्वनाथ भगवान् के छठे पाट रत्नप्रभसूरि	वीर निर्वाण के ७० वर्ष पश्चात् अर्थात् विक्रम संवत् से ४०० वर्ष पहले (आज से २३८७ वर्ष पहले)	उपकेशपट्टन नगर जिसे वर्तमान में ओसियां कहते हैं	कुलदेवी सचाइका
२	बाफना ,,	नाहटजाघड़ादि ९२				
३	कर्णावट ,,	आच्छादि १४				
४	बलाहा ,,	रांका बांकादि २६				
५	मोरख ,,	पोकराणादि १७				
६	कुलहट ,,	सुरवादि १८				
७	विरहट ,,	भुरंटादि १७				
८	श्रीश्रीमाल ,,	नीलडियादि २२				
९	श्रेष्टी ,,	वेदमुहत्तादि ३०				
१०	संचेती ,,	ढेलडियादि ४४				
११	आदित्यनाग ,,	चोरड़ियादि ८९				
१२	भूरि ,,	भटेवरादि २०				
१३	भद्र ,,	समदड़ियादि २९				
१४	चिंचट ,,	देशरड़ादि १९				
१५	कुंभट ,,	काजलियादि १९				
१६	डिडू ,,	कोचरादि २१				
१७	कन्नोजिया ,,	वटवटादि १९				
१८	लघुश्रेष्टि ,,	वर्द्धमानादि १६				
१	चरड़ गोत्र	कांकरियादि	,,	,,	,,	,,
२	सुघड ,,	संडासियादि	,,	,,	,,	,,
३	लुंग ,,	चेडालियादि	,,	,,	,,	,,
४	गटिया ,,	टीबाणियादि	,,	,,	,,	,,

क्रम संख्या	मूल गोत्र	शाखाएँ	किस नगर में प्रतिबोध दिया	प्रतिबोधक आचार्य	विक्रम संवत्
१	आर्य	लुणावतादि	अहवड़	देवगुप्तसूरि*	६८४
२	छाजेड़	सूरावतादि	शिवगड़	सिद्धसूरि×	९४२
३	राखेचा	पुंगलियादि	कालेर	देवगुप्तसूरि	८७८
४	काग	.....	धामगाँव	कक्कसूरि‡	१०११
५	गरुड	धाडावतादि	मत्यपुर	सिद्धसूरि	१०४३
६	सालेचा	बोहरादि	पाटण	,,	९१२
७	बघारेचा	सोन्यादि	वगारा	कक्कसूरि	१००९
८	कुंकुंम	भूपियादि	कनौज	देवगुप्तसूरि	८८९
९	सफला	बोहरादि	जावलीपुर	सिद्धसूरि	१२२४
१०	नक्षत्र	धीयादि	वटवाडाग्राम	कक्कसूरि	९९४
११	आभड	कांकरेचादि	सांभर	,,	१०७९
१२	छावत	कोणेजादि	धारानगर	सिद्धसूरि	१०७३
१३	तुण्ड	वागमारादि	तुण्डग्राम	,,	९३३
१४	पिछोलिया	पीपलादि	पाल्हणपुर	देवगुप्तसूरि	१२०४
१५	हथुण्डिया	छपनयादि	हथूण्डी	,,	११९१
१६	भंडोवरा	रत्नपुरादि	भंडोर	सिद्धसूरि	९३५
१७	मल	वीतरागादि	खेड़ग्राम	,,	९४९
१८	गुंदेचा	गोगलियादि	पावागढ़	देवसूरि	१०२६

*×‡ इन आचार्योंके नाम के कई आचार्य हुए हैं अर्थात् तीसरे पाट वेही नाम आते हैं।

विशेष दृष्टव्य—इन के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से गोत्र उपकेशगच्छ आचार्योंने बनाये जिन की वंशावलियों आदि आज पर्यंत उपकेश गच्छीय महात्माओं की बहियों में विद्यमान हैं जिस का पूर्ण ब्योरा **जैन जाति महोदय** में दिया जावेगा।

[अवशिष्ट संख्या ३]

श्रीउपकेशगच्छाचार्यों के निर्माण किये हुए ग्रन्थ।

यों तो उपकेशगच्छाचार्योंने अनेकानेक महान् ग्रन्थों की रचना की है जिनमें कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ तो विधर्मियों के अत्याचारों से नष्ट भ्रष्ट हो चुके। शेष रहे हुए कई ग्रन्थरत्न अभी तक भण्डारों को ही सेवन कर रहे हैं। वर्तमान शोध और खोजसे जिन ग्रन्थों की सूची प्रसिद्ध हुई है उनमें से कतिपय ग्रन्थों की नामावली यहां दी जाती है।

सं.	ग्रंथों के नाम.	ग्रंथकर्ताओं के नाम.	रचित संवत	मिलने का स्थान.
१	मुनिपति चरित्र	मुनि जम्बुनाग	१००५	जैसलमेर भं०
२	जिनशतक	,,	१०२५	काव्यमाळागु.
३	चन्द्रदूत काव्य	,,	....	जै० भंडार में
४	धर्मोपदेश लघुवृत्ति	कृष्णर्षि के शिष्य (जयसिंह)	९१९	पाटण भंडारमें
५	नौपद प्रकरण	देवगुप्तसूरि (जिनचन्द्र)	१०७३	,,
६	,, ,, वृति नं १	,,	,,	,,
७	,, ,, ,, नं. २	,,	,,	,,
८	,, ,, ,, नं. ३	कुळचंद उ०	,,	,,

९	,, ,, ,, नं. ४	यशोदेवोपाध्याय	११६९	,,
१०	,, ,, ,, नं. ५	देवेन्द्रोपाध्याय	११८२	,,
११	आराधना पताका	वीरभद्रो पा०	१०७८	जै० भं०
१२	पिण्डविशुद्धि लघु० वृत्ति	देवगुप्तसूरि (यशोदेवोपा०)	११७६	पाटण भं०
१३	पक्षीसूत्रवृति	,, ,,	११८०	,,
१४	प्रमाणांतस्तव	,, ,,	....	जै० भं०
१५	अपौरुषेय देव- निराकरण	,, ,,	....	
१६	प्रत्यक्षानुमानप्रमाण	,, ,,	....	
१७	पंचासक चूर्णि	,, ,,	११७२	पाटण भं०
१८	षोड़षकवृति	,, ,,	....	
१९	षोडशीतिवृति	,, ,,	....	
२०	क्षेत्रसमास वृ०	,, ,,	११९२	पा० भं०
२१	बौद्ध मीमांसा	,, ,,	....	जै० भं०
२२	धर्मोपदेशमाला	,, ,,	....	
२३	चन्द्रप्रभ चरित्र	,, ,,	११७८	जै० भं०
२४	नवतत्व गाथा	देवगुप्तसूरि (जिन	१०७३	
२५	पार्श्वाभ्युदय काव्य	सिद्धसूरि [चंद्र)		बीकानेर भं०
२६	सम्यक्त्व रहस्यस्तव	,,	....	पाटण भं०
२७	श्रावक समाचारी	देवगुप्तसूरि	....	पाटण भं०
२८	द्रव्यतरंगिणी	कक्कसूरि	....	बी० भं० टी
२९	,, लघुवृति	,,	....	,,
३०	श्रावक स० वृति	देवगुप्तसूरि	....	
३१	योग प्रकाश	यक्षमहतर	....	

३२	पंच प्रमाण	कक्कसूरि	....	
३३	,, ,, पंचाशिका	कुकुंदाचार्य	....	
३४	नवतत्व विवरण	देवगुप्तसूरि	११७४	जै० भं०
३५	शांतिनाथ चरित्र	जयसागरो पा०	....	उपकेश०
३६	तीर्थंकर चरित्र	कक्कसूरि	१३९१	
३७	सम्यक्त्व गुण वि०	,,	१३९१	
३८	नाभिनन्दनोद्धार	,,	१३९३	मुद्रित
३९	उपकेशगच्छ चरित्र	,,	१३९३	हस्त लि०
४०	पद्मावती स्तोत्र	कुकुंदाचार्य	....	,,

वि० दृ०—विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के बादमें इसी गच्छ के आचार्योंने विशेष रूप से साहित्य की सेवा कर विश्व पर बड़ा भारी उपकार किया है जिसका विस्तृत वर्णन फिर कभी स्वतंत्र ग्रन्थ में लिखा जावेगा ।



[अवशिष्ट संख्या ४]

श्री उपकेशगच्छाचार्यों द्वारा जिनमन्दिर-मूर्त्तियों की कराई हुई प्रतिष्ठा।

यों तों उपकेशगच्छाचार्योंने हजारों मन्दिरों व लाखों मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी जिसके यत्र तत्र अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। उन प्रमाणों से यह भी पता मिल शक्ता है कि मरूभूमि, सिन्ध, कच्छ और पंजाब वगैरह प्रान्तोंमें परिभ्रमण कर वे जैसे २ अजैनों को जैन बनाते गये वैसे २ उन्होंके आत्म कल्याण निमित्त जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी करवाई। बात भी ठीक है। उस समय की विशाल जनसंख्या के लिये अधिक संख्यामें मन्दिर बनाने की आवश्यक्ता भी थी। अगर कथानक साहित्य का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाय तो ऐसे प्रचुर प्रमाण भी मिल सकेंगे। श्रीमालनगर, पद्मावती, चन्द्रावती, शिवपुरी, उपकेशपुर, कोरंटपुर, शिवनगर, मथुरा, वल्लभीनगरी, कन्याकुब्ज, माधपुर, सोपारपुर, जाबलीपुर, मारोटकोट, राणकगढ़, त्रिभुवनपुर, किराट-कूप, वणथली, देवपाटण, मरूकोट, उच्चकोट, लोद्रवा, पट्टण, जंगालू, पंचासरा, स्थंभनपुर, भरूच, अणहिलपुरपट्टण और अंजारी इत्यादि अनेक नगरों के नृपतियों को प्रतिबोध दे कर उपकेशगच्छाचार्योंने जिनालयों से भूमि विभूषित कर दी थी।

इस ऐतिहासिक युगमें हम उन सब मन्दिरों के शिलालेखों

को ढूंढने को जावें तो सब के सब शिलालेख मिलना तो बहुत ही कठिन है क्योंकि इस के कई कारण हैं। कई मन्दिर–मूर्तियों तो विधर्मियों के अत्याचारों से नष्टभ्रष्ट हो गई जिन के खंडहर भी मिलना दुर्लभ सा हो गया है और पूर्व जमानेमें कई पुराने मन्दिरों के स्मारक कार्य करते समय शिलालेखों या प्राचीनता की दरकार भी नहीं रखी जाती थी। जैसे पुनीत तीर्थ शत्रुंजय पर प्राचीन समय से ही मन्दिरों की बड़ी भारी हरमाल थी पर उन के शिलालेख इतने प्राचीन नहीं मिलते हैं। इसी तरह अन्य मन्दिरों का भी हाल है। पर हम इस विषय में सर्वथा हताश भी नहीं हैं। आज पूर्वीय और पाश्चात्य पूरातत्त्वज्ञों की शोध और खोज से अनेक स्थानों-पर प्राचीन खंडहर और शिलालेख उपलब्ध हुए हैं। उडीसा प्रान्त की खण्डगिरि और उदयगिरि, प्राचीन पहाडियों की गुफाओं में प्राचीन मूर्त्तियों और शिलालेख तथा मथुरा का कंकालीटीला के खोदकाम सें अनेक प्राचीन मूर्त्तियों और शिलालेख उपलब्ध हुए हैं। देवगिरि (दौलताबाद) के किलों में सेंकड़ों मूर्तियों निकल चूकी हैं। वे शिलालेख वगैरह दो हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन हैं फिर भी हम आशा रखते हैं कि जैसे २ अधिकाधिक शोध और खोज होती रहेगी वैसे २ इस विषयपर भी खूब प्रकाश पड़ता जायगा। यह निसंदेह है कि जैनाचार्यों के उपदेश से जैन राजा महाराजा और सेठ साहूकारोंने असंख्य द्रव्य व्यय कर जैन मन्दिरों से मेदिनि–भूषित कर दी थी।

वर्तमान के उपलब्ध शिलालेख जिनमें से कई मुद्रित भी

हो चुके हैं उनमें भी उपकेशगच्छाचार्यों के प्रतिष्ठा करवाये हुए मान्दिर मूर्त्तियों के शिलालेख भी कम नहीं है पर हमारे चरित नायक, आचार्य सिद्धसूरि के परमोपासक, समरसिंह के समय के पूर्व के शिलालेख बहुत कम हैं और उन के पश्चात् के शिलालेख अधिक संख्या में हैं। यहाँ पर हम कतिपय शिलालेख समरसिंह के पूर्व समय के दे कर उपकेशगच्छाचार्यों के प्रतिष्ठा का संक्षिप्त से परिचय करवा देना चाहते हैं।

(१)

सं० १–२५ वर्षे वैशाख शुदि १०.....श्रीमालि० साल्हण भा०.....ल्णह....निमित्तं .....पंचतीर्थी बिंबं प्र० उ० श्रीमुनिचंद्रसूरिभिः ॥ मांतर–सुमति. जिना०

(२)

सं० ११७२ फाल्गुन शुदि ७ सोमे श्री ऊकेशीयसावदेव-पत्न्याआम्रदेव्याकारिता ककुदाचार्यैः प्रतिष्ठिता ॥

शकोपुर–माणेकचोक श्री पार्श्वनाथ जिनालय.

(३)

सं० १२०२ आषाढ़ सुदि ६ सोमे श्री प्राग्वटवंशे आसदेव देवकी सुताः महं० बहुदेव धनदेव सूमदेव जसवु रामणाख्या [बन्ध] वः महं धनदेव श्रेयोऽर्थ तत्सुत [वालण] धवलाभ्यां धर्मनाथ प्रतिमा कारिता श्री ककुदाचार्यैः प्रतिष्ठिताः। शत्रुंजय—

१ उ० उपकेशगच्छाचार्य का संक्षिप्तरूप है।

(४)

सं० १२०२ आषाढ़ सुदि ६ सोमे सूत्र० सोढा साई सुत सुत्र० केला वोल्हा सहव लोयपा वागदेव्यादिभिः श्री विमल-वसतिका तीर्थे श्री कुंथुनाथ प्रतिमा कारिता श्री ककुदाचार्यैः प्रतिष्ठिताः ॥ मंगल महाश्री। छ। शत्रुंजय.

(५)

सं० १२०२ आषाढ सुदि ६ सोमे श्री उ० अमरसेन सुत महं ताज....स्वपितृ श्रेयोऽर्थं प्रतिमा कारिता श्री ककुदाचार्यैः प्रतिष्ठिता। मंगल महाश्री। शत्रुंजय.

(६)

सं० १२०२ आषाढ सुदि ६ भोमे श्री ऋषभनाथ बिंबं प्रतिष्ठितं श्री ककुदाचार्यैः ठ० जसराकेन स्वपितृ ठ० बबलुश्रेयोऽर्थं प्रतिमा कारिताः। शत्रुंजय.

(७)

सं० १२६१ वर्षे ज्येष्ठ शुदि १२ श्रिमदुकेशगच्छे श्रे० महाराज श्रे० महिसतयोः श्रेयोर्थं श्रीपार्श्वनाथबिंबं का० प्र० श्री सिद्धसूरिभिः ॥ ईडर—

(८)

सं० १३....वर्षे आषाढ़ शुदि ३ ऊकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य-संताने श्री..... श्रीशांतिनाथबिंबं का० प्र० श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ॥

—बडोदरा—नरसिंहजीकी पोल दादापार्श्वजिना०

(९)

सं० १३१४ वर्षे फागुण सुदि ३ शुक्रे श्रीसदूके भार्यापन्नदे आल्ह भार्या अभयसिरिपुत्र गणदेव जारव देवाभ्यां पितृमातृश्रेयोर्थं श्रीनेमिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ॥ जैसलमेर

(१०)

सं० १३१९ वर्षे फागुण सुदि ४ शुक्रे । श्रे० धामदेवपुत्र रणदेव धारण भा० आसलदे श्रे० रामश्री पार्श्वनाथबिंम्बंकारितं [प्र] श्रीकक्कसूरिभिः । —उदयपुर शीतलजिन० ।

(११)

संवत् १३१९ (।) वर्षे वैशाख वदि ७ गरौ (।) श्रीमदुपकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य संताने श्रीवरदेवसुत शभचन्द्रेण श्री[सिद्धसूरीणां मूर्त्तिः कारिता श्रीकक्कसूरि (भिः) प्रतिष्ठिता । पालनपुर—

(१२)

सं० १३२३ माघशुदि ६.... ....श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ॥ शत्रुंजय—

(१३)

(१) ॐ सं० १३३७ फा०२ श्री मामा मणोरथ मंदिर योगे श्रीदेव (२) गुप्ताचार्य शिष्येण समस्त गोष्ठिवचनेन पं० पद्मचंद्रेण (३) अजमेरु दुर्गे गत्वा द्विपंचासत जिन बिंबानि सचिकादेविग (४) (ण) पति सहितानिकारितानि प्रतिष्ठितानि....सूरिणा ॥ लोद्रवा—

(१४)

सं० १३४९ श्रीउपकेश गच्छे श्रीककुदाचार्य संताने नाहड़ सु० अरसीहश्रेयसे पुत्र्या पुपादभ (१) पंचभि ( ) श्री शांतिनाथः का० प्र० श्रीसिद्धसूरिभिः ॥ जैसलमेर—

(१५)

सं० १३४६ वर्षे पोरवाड पहुंदेव भार्या देवसिरिश्रेयसे पुत्रैवुल्हरभांभणकागडादिभिः श्रीआदिनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीउव० श्रीसिद्धसूरिभिः ॥ जैसलमेर—

(१६)

संवत् १३४७ वर्षे वैशाखसुदि १५ रवौ श्रीऊकेशगोत्रेश्री सिद्धाचार्य संताने श्रे० वेल्हू भा० देसलतत्पुत्रश्रे जनसोहेन सकुटुम्बेन आत्मश्रेयंसे पार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्र० श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ॥ जूनावेड़ा (मारवाड़)—

(१७)

सं० १३५६ ज्येष्ठ व० ८ श्रीउकेशगच्छे श्रीककसूरिसंताने सा० साल्हण भा० सुहवदेवि पुत्र पाल्हणेन श्री शांतिनाथबिंबं कारितं पित्रोः श्रे० प्रति० श्रीसिद्धसूरिभिः ॥ खारवाडा पार्श्व० जिना०

(१८)

सं० १३५६ श्री शांतिनाथ बिंबं कारितं श्रीककसूरिभिः प्रतिष्ठितं । करेडा पार्श्व०—

(१९)

सं० १३६८ वर्षे ज्ये० वदि १३ शनौ श्री श्रीमाल ज्ञा०

सोवीर संताने महं–साहण पु० आदा आंवड भा० प्रीमलश्रेयसे श्रीआदिनाथबिंबं पु० देवडेन का० प्र० पिप्पलाचार्य श्रीकक्कसूरिभिः॥

अहमदाबाद. शांति० जिना०—

(२०)

सं० १३७३ वर्षे श्री उपकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य संताने वैद्य शाखायां सा० हसल अरसीह श्रेयसे हसल पुत्र जवात भा० वामदेवाभ्यां श्रीशांतिनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीसिद्धसूरिभिः ॥

बड़ोदा पीपलाशेरी चिन्तामणी पार्श्व०—

(२१)

सं० १३७३ हरपाल जगपाल पूतानिमित्तं सिंहांकित (महावीर) बिंबं का० प्र०.....गच्छी (उपकेशगच्छीय) देवेन्द्रसूरिभिः ॥

डभोई श्री शामळापार्श्वजिना०—

जिनविजय संपादित भा० २

(२२)

सं० १३७८ वर्षे ज्येष्ठ वदि ९ सोमे श्री उपकेशिगच्छे श्रीककुदाचार्य सन्ताने मेहडा ज्ञाति (य) सा० लाहडान्वये सा० धांधलपुत्र सा. छाजु भोपति भोजा भरह....प्रभृति श्री आदिनाथ कारितः प्रतिष्ठाः श्री कक्कसूरिभिः ।

शत्रुंजय—

(२३)

सं० १३७९ वर्षे आषाढ़ वदि ८ श्रीउपकेश गच्छे व्य० जगपाल भा० जासलदे पु० भीम भा० माणल पु० जालाजगसीह नयतायुतेन कुटुंब श्रेयसे चतुर्विंशतिपट्टः कारितः ॥ प्र० श्रीककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥

पाटण.

(२४)

सं० १३८० वर्षे माह शुदि ६ सोमे श्री उपकेश गच्छे वेसटगोत्रे सा० गोसलव्य० जेसंग भा० आसधर श्रे० भ्रातृसंव० श्रा० देसलतत्पुत्र सा० सहजपाल सा० साहण सा० समरसिंह पितृव्य सा० लूणा तत्पुत्र सा० सागत सांगण प्रमुखैश्चतुर्विंशति-पट्टः का० प्र० श्रीककुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ॥

खंभात चिन्तामणि पार्श्व० जिना०

(२५)

सं० १३८० महा शुदि ६ भौमे ऊकेशगच्छे आदित्यनाग गोत्रे सा० षिरदेवात्मज स० भंटुक भा० मोषाहि पुत्र रुद्रपाल भा० लक्ष्मणा भ्रातृधणसिंह देवसिंह पासचन्द्र पूनसिंह सहिताभ्यां कटुंब श्रेयार्थं श्रीशांतिनाथ बिंबं का० प्र० श्रीककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥

पेथापुर.

(२६)

सं० १३८० ज्येष्ठ सु० १४ श्रीउएसगच्छे श्रे० म....लाभा० मोषलदे पु० देहा कमा पितृमातृ श्रेयसे श्रीआदिनाथ बिंबं कारितं प्र० श्री श्रीककुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ।

चुरू (बीकानेर) शांति०—

(२७)

सं० १३८९ वर्षे फागुण सुदि.....श्रीपार्श्वनाथ बिम्बं कारिता प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरिभिः । उदयपुर मेवाड़ शीतल०—

(२८)

ॐ ॥ सं० १३८६ वर्षे ज्येष्ठ व० ९ सोमे श्रीऊएसगच्छे वप्पनामगोत्रे गोल्हा भार्या गुणादे पुत्र मोखटेन मातृपित्रोः श्रेयसे सुमतिनाथ बिंबं कारितं प्र० श्रीककुदाचार्य सं० श्रीकक्कसूरिभिः ॥

जैसलमेर—चंद्रप्रभ०

(२९)

सं० १३८७ वर्षे माघ शुदि १० शनौ श्रीउपकेशगच्छे खुरियागोत्रे सा० धीरात्मज सा० झांझण भार्या जयतलदेसुत छाडा आसाभ्यां मातृपित्रोः श्रे० श्रीअजितनाथ बिंबं का० प्र० श्रीककुदाचार्य संताने प्रभुश्री कक्कसूरिभिः ॥

वड़ोदरा—जानिशेरी चन्द्रप्रभ—जिना०

(३०)

सं० १३८८ वर्षे माघ शुदि ६ सोमे ऊकेशगच्छे आदिनागगोत्रे शा खीरदेवात्मज शा भडुंक भा० मुखाहि पुत्र ऋदपाल लक्ष्मणाभ्याम् भ्रातृ धनसिंह देउसिंह पासचंद्र पुनसी सहिताभ्य कटुम्ब श्रे० शांतिनाथ बिंबं का० प्र० ककुदाचार्य संताने श्रीकक्कसूरिभिः ॥

पेथापुर.

(३१)

सं० १३९१ श्रीऊकेशगच्छे श्रीककुदाचार्य संताने सोमदेव भार्या लोहिणा आत्मार्थं श्रीसुमति बिंबं कारितं प्र० श्रीकक्कसूरिभि॥

जैसलमेर—चन्द्रप्रभ०—



चतुर्थ अध्याय.

शत्रुञ्जय तीर्थ के उद्धार का फरमान.



विक्रम की चौदहवीं शताब्दि का जिक्र है कि गुर्जर प्रान्त में अणहिलपुर–पट्टण नामक नगर बड़ी उन्नत अवस्था में था। यह नगर वि. सं. ८०२ की अक्षय तृतीया को जैनाचार्य श्री शीलगुण सूरि के परमोपासक वनराज चाँवड़ाने आबाद किया था। तबसे वह नगर चाँवड़ा वंश के ७ राजाओं के आधिपत्य में १९७ वर्ष पर्यंत रहा। तत्पश्चात् चौलुक्य वंशीय नरेशों के आधिपत्य में रहा। इस वंश वालोंने भी इस नगर की खूब उन्नति की। पट्टण नगरी स्वर्ग के सदृश गिनी जाने लगी। यह नगर धन धान्य से समृद्ध व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था। इस नगरी में चौरासी चौहट्टे, बावन बाज़ार और निनानवे मण्डियों के अतिरिक्त अनेकानेक बाग, बगीचे, कूए--तालाब, पथिकाश्रम और दानशालाएँ

थीं। बड़े बड़े विद्यालयों के भवन तथा ऊंचे ऊंचे शिखर एवं सोने क कलशों वाले देवस्थान नगर की शोभा की विशेष अभिवृद्धि करते थे। धर्म–साधन करने के इतने स्थान (पोषधशाला) थे कि प्रसिद्ध चौरासी गच्छ के अलग अलग उपाश्रय विद्यमान थे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि उस समय पाटण में जैनों का साम्राज्य था। क्योंकि जिस प्रकार जैनियों का व्यापार में हाथ था उसी भाँति राज्य के उच्च उच्च पदोंपर भी जैनी ही नियुक्त थे जो अपने उत्तरदायित्व का पूर्णरूप से पालन कर जन साधारण की भलाई को पहले स्थान देते थे।

पाटणनगर के जैन लक्ष्मीपात्र थे। 'उपकेशे द्रव्य बाहुल्यं' का वरदान सोलह आना सिद्ध था। न्यायोपार्जित द्रव्य को जैनियोंने उदारता पूर्वक धार्मिक कार्यों में व्यय किया। बौद्धिक बलके साथ ही बाहुबल में भी जैनी आगे थे। इस बात का प्रमाण वे ऐतिहासिक बातें दे रही हैं जो चांपाशाह, विमलशाह, उदायन, वाग्भट, आम्रभट, शान्तुमहता, आभूमहता, मुजालमंत्री वस्तुपाल और तेजपाल के सम्बन्ध यत्रतत्र सुवर्णाक्षरों में अंकित हैं।

वि. सं. १३५७ में गुजरात का राज्य करणवाघेला से छीन कर अलाउद्दीन खिलजीने ले लिया और उसने अपनी ओर से पाटण में अलपखान[1] को सूबादार बना के भेज दिया था। यद्यपि

१ इनके राज्यकाल में जेसलशाहने शत्रुंजय का बड़ा भारी संघ निकाला। इस यात्रा में जेसलशाहने खंभात में पौशधशाला सहित अजितनाथस्वामी का मन्दिर बनवाया था। (प्रा० गु० काव्य का परिशिष्ट देखिये)

अलपखान मुसलमान राजा था परन्तु वह अपनी हिन्दू-प्रजा के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता था तथा राज्य के उच्च उच्च पद योग्य हिन्दुओं को भी निष्पक्ष हो कर दिया करता था।

पाठकों को यह बात तो पहले ही बतलाई जा चूकी है कि श्रीमान् देशलशाह के जेष्ठ पुत्र सहजपाल दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रचुरता से प्रचार कर रहे थे। जिन्होंने देवगिरि (दौलताबाद) में चौबीस तीर्थंकरों की चौबीस देवकुलिकाएँ और पार्श्वनाथस्वामी का मन्दिर बनवा के धर्म का बीज उस उर्वराभूमि (क्षेत्र) में वपन किया था। देशलशाह के दूसरे पुत्र सहणपाल खंभात नगर में रहते थे तथा वे धार्मिक कार्यों में प्रमुख भाग लेते थे। उस समय देशलशाह के तीसरे पुत्र वीरवर श्री समरसिंह जो हमारे चरितनायक हैं पाटणनगर में अपने पिताश्री की सेवा में रहते हुए अनेक सत्कार्यों में सदा लगे रहते थे। इनकी कीर्ति रूपी सुरभि चहुं दिशाओं में लहलहा रही थी। श्रेष्ठिकुल तिलक देशलशाह पाटणनगर के प्रमुख व्यापारी थे। आप जवाहरात के व्यापार में विशेषज्ञ थे। सिद्धसूरिजी महाराज की आप पर पूर्ण दया थी। आपने व्यापार द्वारा इतना प्रचुर द्रव्य उपार्जन किया कि जिसकी गिनती करना भी अशक्य था। उधर हमारे चरितनायक स्वनाम-धन्य वीर साहसी समरसिंह अपने बुद्धिबल से अलपखान को अपनी ओर आकर्षित किये हुए थे। अलपखान सदैव समरसिंह से प्रसन्न चित्त होकर सलाह मसवरा आदि किया करते थे। समरसिंह राज्य के उत्तरदायी पद पर कार्य

करते हुए अलपखान को असीम सहायता पहुंचा रहे थे। अतः राज्य भर में ही नहीं वरन् अन्य प्रान्तों में भी समरसिंह की कीर्त्ति कौमुदी प्रस्तारित हो रही थी।

वि. सं. १३६९ के दुखमय वर्तमान का उल्लेख करते हुए लेखनी सहसा रुक जाती है। हाथ थर थर कांपने लगते हैं। नेत्रों से आंसुओं की अविरल धारा निकलती है। हृदय टूक टूक होता है उस समय अलाउद्दीन खिलजी की सेनाने लग्गा लगा कर हमारे परम पुनीत तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय गिरि पर धावा बोल दिया। इस आक्रमण से अतुल क्षति हुई। अनेकानेक भव्य मन्दिर और मूर्त्तियां ध्वंस कर दीगई, उनका अत्याचार यहां तक हुआ कि मूलनायक श्री युगादीश्वरजी की मूर्तीपर भी हाथ मारा गया। यह मंजुल मूर्त्ति खण्डित कर दी गई। यह मूर्त्ति वि. सं. १०८ में जावड़शाहने आचार्यश्री वज्रस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित कराई थी।

यह दुखप्रद समाचार बिजली की तरह बात ही बात में चहुँ ओर फैल गये। जैन समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय पर गहरा आघात पहुँचा। शोकातुर समाज दुःख सागर में निमग्न हो गई। विषाद का पारावार न रहा। जैन वायु मंडल में यह समाचार काले बादलों की तरह छा गये। जिस प्रकार वि. सं. १०८० में महमूदगजनीने सोमनाथ के मन्दिर को ध्वंस कर चहुं ओर हाहाकार मचा दी थी वही हाल इस समय इस घटना से हुआ।

जब ये समाचार पाटण पहुंचे तो महामना देशलशाह इन अनिष्ट समाचारों को सुन सहसा मूर्छित हो त्वरित धराशायी हुए। चूंकि आप लोकमान्य थे अतः आपकी इस दशा पर जैन संघ में तबाही मच गई। सब की चिन्ता द्विगुणित होगई। शीतल जल के सिंचन तथा शीतल वायु के सञ्चार से स्वल्प समय पश्चात् देशलशाह सावधान होने लगे। अपने गृह से विदा हो आपने अपने गच्छनायक आचार्य श्री सिद्धसूरि के समक्ष उपस्थित हो सारा वृत्तान्त सविस्तार सुनाया। उनकी गाथा सुनकर सामुद्रिक शास्त्र के पारगामी, महा विचक्षण, धुरंधर विद्वान आचार्य श्रीने देशलशाह को सम्बोधन कर कहा कि हे श्रेष्ठिवर, आर्त-ध्यान और चिंता करना ज्ञानियों का काम नहीं है। ऐसा कौन है जो भवितव्यता को टाल सकने में समर्थ हो सके। संसार के सर्व पदार्थ क्षणिक तथा भंगुर हैं। जहां उत्पत्ति है वहाँ व्यय अवश्य है।

इस पवित्र तीर्थ के पहले भी कई उद्धार हो चूके हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल में भी असंख्य उद्धार हो चूके हैं। भरत-सागर सदृश चक्रवर्ती, पाण्डवों जैसे प्रबल पराक्रमी तथा जावड़शाह और बाग्भट जैसे धनकुबेरों के हाथ इस तीर्थ के उद्धार हुए हैं। वह समय ऐसा अनुकूल था कि उद्धार करने में सर्व प्रकार की सरलता थी परन्तु इस समय ऐसा कार्य करना सचमुच टेडी खीर है। यह तो किसी असाधारण भाग्यशाली नर पुरुष की ही शक्ति है जो इस महान् आवश्यक कार्य को सम्यक्

प्रकार से सम्पादन करा सके। अतः इस समय चिंता करना न्यायसंगत नहीं क्योंकि इस से कुछ फल सिद्ध नहीं हो सकेगा। अब तो धर्म–मर्मज्ञ व्यक्तियां का यही प्रथम और प्रमुख कर्त्तव्य है कि इस तीर्थ के उद्धार के उपाय का अनुसंधान करे। इसी विचार में जिनशासन का श्रेय है। सूरिजी के इस सारगर्भित, मार्मिक और हृदयस्पर्शी उपदेश का प्रभाव इतना अच्छा पड़ा कि देशलशाह के अन्तस्तल में उद्धार कराने के विचाररूपी अंकुर सत्वर प्रस्फुटित हुए।

देशलशाहने सूरिजी से अर्ज़ किया कि यद्यपि मेरे पास भुजबल, पुत्रबल, धनबल, मित्रबल और राजबल तक विद्यमान है परंतु इतनी सामग्री के होते हुए भी ऐसे महान् कार्य को सिद्ध करने के लिये गुरुकृपा की भी आवश्यक्ता अवश्य रहती है। यदि आप सदृश महात्माओं की मुझ पर शुभ दृष्टि हो तो मैं विश्वास दिला सकता हूँ कि उद्धार का कार्य कराने में मैं अवश्य लाभ का भागी हो कृतकृत्य हूँगा।

सूरिजीने देशलशाह की ऐसी प्रबल उत्कंठा दृष्टिगोचर कर उत्साहप्रद वाक्यों में यह प्रत्युत्तर दिया कि यद्यपि आप के पास इतनी प्रचुर सामग्री है तथापि इस कार्य के लिये शीघ्रता करनी परम आवश्यक होगी। वास्तव में आप परम सौभाग्यशाली व्यक्ति हैं जिस के हाथों ऐसा शुभ कृत्य हो। देशलशाह गुरुवर्य की ऐसी प्रेमभरी बातों को सुन मन ही मन मुदित हो वंदना कर

अपने भवन को पधारे। घर पर पधार कर आपने सारा वृत्तान्त अपने पुत्र समरसिंह से कहा। समरसिंहने पिताश्री के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि मैं आपके चरणों को स्पर्श कर शपथपूर्वक यह प्रण करता हूँ कि जहाँ तक मेरे शरीर में शोणित का एक बूँद रहेगा वहाँ तक मैं सहस्रों और लाखों बाधाओं के उपस्थित रहते हुए भी भक्तिपूर्वक तीर्थ के उद्धार को कराऊँगा। पश्चात् वे आचार्य श्री सिद्धसूरिजी के समक्ष उपस्थित हुए और अपने पिताश्री के प्रस्ताव का हृदय से समर्थन कर अनुमोदना को दृढ़ प्रमाणित करने के लिये हमारे चरितनायकने प्रतीज्ञा की कि जब तक हमारे द्वारा इस तीर्थ का उद्धार न होगा तब तक मैं—

(१) ब्रह्मचर्य व्रत का अविरल पालन करूँगा।

(२) भूमिपर शय्या बिछा कर लेटूँगा। खाट या पलंग का प्रयोग न करूँगा।

(३) दिन में केवल एकबार ही भोजन करूँगा।

(४) छ विगय में से प्रतिदिन केवल एक विगय का ही सेवन करूँगा।

(५) शृङ्गार के लिये उबटन और तेल मर्दन कर के स्नान नहीं करूँगा।

हमारे चरितनायकने गुरुवर्य के सम्मुख उपरोक्त भीष्म प्रतिज्ञाओं को लिया। इस प्रकार इन की दृढ़ता को देखकर

गुरुराजने समरसिंह के साहस और धर्मस्नेह की अनुमोदना कर उचित सलाह आदि दी। वहाँ से चल कर हमारे चरितनायक जिन मन्दिर में पधारें जहाँ इन के पिताश्री प्रभु पूजा में निमग्न थे। सारी वार्ता उन के सामने वर्णन कर आपने निवेदन किया कि यदि आप की आज्ञा हो तो मैं तीर्थोद्धार के लिये 'अलप-खान' से आज्ञापत्र लिखवा लाऊं। इस से यह सुविधा रहेगी कि इस कार्य में किसी भी प्रकार की आपत्ति उपस्थित नहीं होगी। देशलशाहने अनुमति दे दी।

हमारे चरितनायक राजनीति-कुशल थे। इस कार्य को शीघ्रतया सम्पादित कराने के उद्देश से उस समय की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए आपने राज्य की सहायता लेना सर्वथा उपयुक्त और उचित समझा। अतः बहुमूल्य वस्तुओं को लेकर आप अलपखान की राज्यसभा में उपस्थित हुए। नम्रतापूर्वक भेंट के पदार्थों को खान के सम्मुख रख आपने यथाविधि अभि-वादन किया।

अलपखान भी योग्य आदमी की कद्र करना खूब जानते थे। अतः खानने आप का यथोचित सत्कार किया और पूजा कि क्या वजह है कि आज आप भेंट सहित पधारे हैं। वैसे यह आप का घर है। मेरे योग्य कोई कार्य हो तो अवश्य कहिये मैं यथासाध्य उस कार्य को शीघ्र ही करूँगा। इस पर आपने श्री शत्रुंजय तीर्थ पर किये गये यवनों के आक्रमण का वृतान्त सवि-

स्तार से सुनाया और इस बात की ओर खान का ध्यान आकर्षित किया कि इस घटना के फल-स्वरूप आज सारी जैन समाज के हृदय में संताप के श्याम बदल छाए हुए हैं। हमारी धार्मिक स्वतंत्रता पर इस आघात से अत्यधिक हानि पहुँच रही है। यदि आप की दया-दृष्टि रहे तो मैं इस तीर्थ का पुनरोद्धार कराने का कार्य हाथ में लूँ।

तुझ पर मोटी आश, ध्वंस हज्ज हिन्दू हुई।
जनता हुई निराश, बात कही विश्वास कर॥

यह सोरठा सुनकर खानने कहा भाई समर! यदि ऐसी ही वस्तुस्थिति है तो मेरी आज्ञा है-जाओ तुम प्रसन्नतापूर्वक उद्धार कार्य कराओ। मेरे राज्य के सब के सब राज्य कर्मचारी आप की सहायता करेंगे। इतना ही नहीं खानने अपने प्रथम प्रधान बहिरम को आज्ञा दी कि समरसिंह के नाम तीर्थोद्धार करने का शाही फरमान लिख दो। बस-फिर क्या विलम्ब था। बहिरम तो आप के परम सुहृद थे ही। अतः उसने यह आदेश पाते ही अपने कार्य-सदन में जा कर समरसिंह के नाम बहुमानपूर्वक महत्व का परवाना लिख दिया। जब यह परवाना लिखा हुआ खान के पास हस्ताक्षर के लिये पहुँचा तो खान ने प्रथम प्रधान बहिरम को कहा कि समरसिंह इस राज्य के विशेष सम्मानपात्र हैं अतः अपने खजाने में से मस्तक के टोप सहित एक सोने की तसरीफ जो मणियों और मोतियों से जड़ी हुई है, लाओ।

बहरिमने यह कार्य तनिकसी बेर में कर डाला। बाद में खान ने अपने हाथ से पान, तसरीफ और फरमान बड़े ही सम्मानपूर्वक हमारे चरितनायक को अर्पित किया और कहा कि आप अपने मनोच्छित कार्यों को पूर्ण करिये। इस के अतिरिक्त और भी कोई कार्य हो तो मुझे निःसंकोचपूर्वक कहियेगा मैं अवश्य सहायता दूँगा। फिर खान की आज्ञा से बहिरमने आप को एक अश्व दिया और पहुँचाने के लिये आप के घर तक साथ आया। क्यों न हो—खान को यह बात निश्चयपूर्वक मालूम थी कि समरसिंह परोपकारपरायण, गुणी, राज्यभक्त और सम्मान करने योग्य उत्तम पुरुष हैं। खान की ऐसी श्रद्धा के कारण ही एक दुःसाध्य कार्य सुलभसाध्य हो गया।

साधु समरसिंह खान के दिये हुए पान, मान फरमान और तसरीफ ले अश्वारूढ़ हुए। बहिरम साहित जिस समय पाटण के बाज़ार के मध्य में पहुँचे तो उन के स्वागत के लिये बात ही बात में सहस्रों जनों की भीड़ एकत्रित हो गई। आप तुरन्त अश्व से उतर पैदल चल कर भीड़ में होते हुए बहुत कठिनाई से घरपर पहुँचे। संघ के अग्रेसर और नागरिक भी रास्ते से साथ हो कर समरसिंह क घर पर पधारे। बहिरम को बहुमूल्य सुन्दर वस्तुओं से तोषित कर विदा किया। आपने अपने पिताश्री के चरणकमलों में बर्त्तास सहित फरमान को रख दिया।

देशलशाहने इस कार्य की सफलता को देखकर विचार

किया कि गुरुकृपा से हमारे भाग्य का सतारा भी तेज है कि जिससे यह दूभर कार्य बिना परिश्रम के इतना सरल हो गया। प्रिय पुत्र समर! तू वास्तव में पूर्ण सौभाग्यशाली और पूण्यवान है। इस के अतिरिक्त नगर के अन्य जन भी अति हर्षित हुए। सब को विदाकर हमारे चरितनायक पौषधालय में पधारे। वहाँ आचार्य श्री सिद्धसूरि विराजमान थे। समरसिंहने विधिपूर्वक वंदना कर फरमान प्राप्त होने की सूचना सूरिजी को की। यह समाचार सुन कर सूरिजी तथा अन्य श्रोता बहुत प्रसन्न हुए। सूरिजी को विशेष प्रसन्नता इस कारण हुई कि खान यद्यपि देवद्वेषी है तथापि उसने समरसिंह के लिये इतनी उदारता प्रदर्शित की है। सूरिजीने इस घटना से यह निष्कर्ष निकाला कि हमारे भाग्य इस समय अभ्युदय की ओर हैं। सूरिजी प्रशंसायुक्त वाक्योंद्वारा सारगर्भित विवेचन कर समरसिंह को विशेष प्रोत्साहित किया। नगर में जहाँ तहाँ समरसिंह के बुद्धिचातुर्य की प्रशंसा होने लगी।

समरसिंहने सूरिजीसे सम्मति मांगी कि मंत्रीश्वर वस्तुपालने लाकर भोंयरे में एक अक्षतांग मम्माणशैल फलहीं[1] रखी है

---

१ मंत्रीश्वर वस्तुपालने मम्माण शैल फलही को इस प्रकार प्राप्त किया था :—

"नागपुर (नागौर) नगर में पूनड़ नाम का श्रावक रहता था जो शाह देल्हा का पुत्र था। उस समय के यवन सम्राट् मौज़दीन सुलतान की बीबी प्रेमकमला (कला) पूनड़ को अपने भाई की तरह समझती थी। पूनड़शाह राज्य की अश्व और गजों की सेनाओं के नायकों तथा राजाओं से आदर की दृष्टि से देखा जाता था। पूनड़शाहने वि. सं. १२७३ में बिंबेरपुर से श्री

और जो अब तक उसी रूप में विद्यमान है। मैं चाहता हूँ कि उस मम्माण शैल फलही से आदीश्वर भगवान् की मूर्त्ति बनवाई जाय। सूरिजीने देसलशाह आदि के समक्ष ही यह सूचना दी कि यह

शत्रुंजय तीर्थ की प्रथम यात्रा की थी। सुलतान के आदेश से पूनड़शाहने नागपुर (नागौर) से शत्रुंजय तीर्थ की दूसरी यात्रा करना निश्चय किया। यह घटना वि. सं. १२८६ की है। इस संघ में १८०० गाडियाँ थीं। इस संघ में अनेक महीधर भी अपने परिवार सहित सम्मिलित हुए थे। संघ चलता हुआ मांडलि (मांडल) गाँव में पहुँचा। यह समाचार पाते ही मंत्री तेजपाल आए और पूनड़शाह को अपने साथ धोलका ग्राम में ले गए। मंत्री वस्तुपाल भी अगवानी करने को सामने आए। संघपति की इच्छा थी कि जिस ओर श्री संघ की पदरज वायुके कारण उड़े उसी दिशा की ओर श्री संघ चलता रहे। संघपति और मंत्री वस्तुपाल के परस्पर बहुत समय तक वार्तालाप होता रहा। मंत्रीश्वरने बातों ही बातों में यह भी कहा कि वास्तव में श्री संघ की चरणरज महान् पवित्र है। इस के स्पर्श से पापरूपी पुंज तुरन्त दूर हो जाते हैं।

वस्तुपालने पूनड़शाह और संघ को प्रीतिभोजन दिया और आप स्वयं साथ हो लिया। इस प्रकार संघ अंत में श्री शत्रुंजयगिरि के निकट पहुँचा। वस्तुपाल मंत्री पूनड़शाह के साथ पर्वतराज पर पहुँच कर श्री आदीश्वर भगवान् को वंदना की। एक पूजारीने यह सोच कर कि स्नात्र के कलश से प्रभु की नासिका को बाधा न पहुँचे अतः नासिका को फूलों से ढक दिया। उस समय मंत्रीश्वर वस्तुपाल के मस्तिष्क में एक विचार हुआ कि कदाचित कलश अथवा परचक्र आदि से देवाधिदेव का अकथनीय अमंगल हो जाय तो संघ की क्या दशा होगी। दूरदर्शी विचारवान वस्तुपालने पूनड़शाह को सम्बोधित करते हुए कहा—"मेरी इच्छा हुई है कि 'मम्माणी' पाषाण से

फलही मंत्रीश्वरने श्री संघ के अधिकार में रखी है अतएव तीर्थपति आदीश्वर भगवान् की मूर्त्ति बनवाने के सम्बन्ध में चतुर्विध संघ की अनुमति लेना उचित होगा। अहो यह कैसी दूरदर्शिता और कैसा संघ का मान !

यदि एक जिनबिम्ब और भी इसी भाँति का तैयार करवा कर रखा जाय तो बहुत उत्तम हो। मुझे आशा है आप से अवश्य इस कार्य में सहायता मिलेगी। कारण कि आप मौज़दीन सुलतान के मित्र हैं। यदि आप प्रयत्न करेंगे तो सब कुछ बन सकेगा। इस कार्य का होना केवल आप की सहायता पर ही निर्भर है।" पूनड़शाहने उत्तर दिया कि पीछा लौटकर इस सम्बन्धी विचार करूंगा। फिर उन दोनोंने वहाँ से रेवतगिरि (गिरनार) की ओर पर्यटन कर श्री नेमिनाथ स्वामी को वंदन किया। यात्रा आनंदपूर्वक कर दोनों अपने नगरों की ओर वापस लौटे। पूनड़शाह नागपुर (नागौर) पहुँचा और वस्तुपाल स्तम्भतीर्थ (खंभात) में राज्य कार्य करने लगे।

उधर सुलतान मौज़दीन की वृद्धमाता हज्ज करने के लिये रवाना हुई। वह जब खंभात में पहुँची तो एक नाविक (खारवा-खलासी) के यहाँ अतिथि की तरह आकर रही। यह समाचार जासूसों द्वारा तुरन्त मंत्री के कानों तक पहुँचे। मंत्रीने जासूसों को आज्ञा दी कि जब यह बुढ़िया जलमार्ग से जाने को तैयार हो तब मुझे फिर सूचित करना। जब वह बुढ़िया जाने लगी तो जासूसोंने तुरन्त मंत्रीश्वर वस्तुपाल के पास समाचार पहुँचाए। मंत्रीश्वरने अपने कोलियों को हुक्म दिया कि जाकर खलासियों के घर से अच्छी और कीमती वस्तुओं उठा लाओ। कोली लोगोंने तदनुसार डाका डाला।

खलासी लोग दौड़ कर मंत्री के पास पहुँच कर पुकारने लगे—"हमारे झोंपडों में एक बुढ़िया जो हज्ज यात्रा के लिये जाती हुई ठहरी है उसे डाकुओंने लूट लिया है।" मंत्रीश्वरने पूछा—"वह बुढ़िया कौन है ?"

आचार्यश्री की सलाह के अनुसार हमारे चरितनायकने अरिष्टनेमी के मन्दिर में एक सभा एकत्रित की जिस में आचार्य-गण, संघ के मुख्य मुख्य श्रावक आदि उपस्थित थे। हमारे चरित-

---

उन्होंने उत्तर दिया--"स्वामी ! क्या पूछते हो ? वह बुढ़िया सुलतान मौजदीन की माता है।" मंत्रीश्वरने कहा बुढ़िया को अपने यहाँ और ठहराओ मैं लूटे हुए माल को सोध कर मंगवाने का प्रबंध अभी करता हूँ।

दो दिन पीछे मंत्रीश्वरने बुढ़िया की सारी चीज वापस पहुँचवादीं। मंत्रीश्वरने बुढ़िया को अपने घर पर बुलवा कर विविध आतिथ्य कर पूछा, "क्या आप हज्ज की यात्रा करना चाहती हैं ?" बुढ़ियाने कहा, "हाँ" तब मंत्रीश्वरने उत्तर दिया कि आप थोड़ा बिलम्ब और करें। बुढ़िया मंत्रीश्वरका कथन मानकर चलने की प्रतिज्ञा करने लगी इतने समय में आरस पत्थर का एक तोरण घड़ाकर तैयार करवा लिया गया। तोरण को जोड़ कर देख लिया जब फबता हुआ मालूम हुआ तो वापस टुकडों को अलग अलग करके रूईके पट देकर बांध लिया। हज्जकी यात्राके तीन मार्ग थे १ जलमार्ग (समुद्र) २ ऊँटकी सवारी से जानेका मार्ग (रेगीस्तान) ३ घोड़ेपर सवारी करके जाने का मार्ग (पठार)

इसमें से जो मार्ग राजाओं के योग्य था वही अंतिम तय किया गया। रास्ते में राजाओं को भेट देने के लिये तरह तरह के अमूल्य और अनोखे पदार्थ भी साथ ले लिये गये। इस प्रकार मंत्रीश्वरने साथ जाकर बुढ़िया को हज्ज तक पहुँचाया। मसजिद के द्वारपर तोरण सजवाया गया। वहाँ के राजा द्वारा इस तोरण की स्थापना कर मंत्रीश्वरने बहुतसा धन दानमें व्यय किया, इससे चारों ओर मंत्रीश्वर की भूरि भूरि प्रशंसा सुनाई देने लगी। बुढ़िया हज्जकर वापस लौटी। वह मंत्रीश्वर सहित खंभात आ पहुँची। मंत्री-श्वरने बुढ़िया का प्रवेश महोत्सव बड़े समारोह से कराया। स्वयं मंत्रीश्वरने

नायकने सर्व संघ के समक्ष यह विनती की, "इस दूषमकाल में अत्याचारी यवनोंने श्री तीर्थराज शत्रुंजय का उच्छेदन किया है। तीर्थनायक के उच्छेदित होनेसे सारे श्रावकों के हृदयपर बड़ा

बुढ़ियाके पैर धोए । दस दिनतक बुढ़िया मंत्रीश्वर के घर ठहरी । आतिथ्य सत्कार में मंत्रीश्वरने किसी भी प्रकार की कमी नहीं रखी । दस दिनों में मंत्रीश्वरने ५०० घोड़े एकत्रित करलिये । इसके अतिरिक्त गंध श्रेष्ठ कर्पूर और बहु मूल्य वस्त्र आदि भी संग्रह किये । मंत्रीश्वरने पूछा, " मा, आप अब जा रही हैं यदि आपकी इच्छा हो और सभ्यता पूर्वक मेरा खानसे समागम हो तो मैं भी तुझे पहुँचाने चल सकता हूँ।" बुढ़ियाने उत्तर दिया, " वहाँ तो सब प्रकारसे मेरा ही आधिपत्य है । स्वेच्छा से हर्ष पूर्वक चलिये । आपका यथायोग्य आदर सत्कार भी किया जावेगा अतः जरूर चलिये ।"

इस सम्बन्ध में मंत्रीश्वरने राजा विरधवल की अनुमति भी लेली । मंत्रीश्वरने राजमाता के साथ जाना स्थिर किया । राजमाताने खंभात से मंत्रीश्वर सहित प्रस्थान किया । जब दिल्ली केवल ४ मील दूर रही तो सुलतान मौजदीन अपनी माता को लेने के लिये सामने आया । मौजदीनने माके चरण छूए और विनयपूर्वक सलाम कर पूछा, " कहो माता ! यात्रा तो सुखपूर्वक हुई !" माताने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, " मुझे यात्रा में सबतरह की सुविधा और सुख क्यों न हो जब कि मेरा पुत्र तो दिल्लीश्वर है और गुजरात में वस्तुपाल जैसे पुरुष सिंह मौजूद हैं।" मौजदीन ने आश्चर्य चकित हो कर पूछा, " वस्तुपाल कौन है ?" माताने वस्तुपाल की कृतज्ञता को विस्तार पूर्वक प्रकट कर सारा वृतान्त मंत्रश्वर की उदारता का कह सुनाया । मौजदीन सुलतानने पूछा–" माजी; ऐसे पुरुष को यहाँ क्यों नही लाईं ?" माताने उत्तर दिया, " क्यों नहीं, मैं उसे साथ में ले आई हूँ। अभी घुड़सवार भेज कर इस स्थानपर बुलवाती हूँ !" वस्तुपाल आए और सुलतान से मिले । मंत्रीश्वरने विपुल सामग्री जो खंभात से एकत्रित कर लाई हुई थी भेंट में

आघात हुआ है। तीर्थ के अभाव में यह कैसे संभव होगा कि द्रव्यस्तव के अधिकारी श्रावकों को द्रव्यस्तव का आराधन हो। धर्म आराधन के केवल चार रास्ते हैं उनमें से सर्वोत्तम पथ

सुलतान को दी। सुलतानने कहा, "मंत्रीजी, आपने मेरी माता की पुत्रवत् सेवा की है अतः मैं आपको अपना भाई समझता हूँ। मेरी माताने आपकी बहुत तारीफ की है। आपसे भद्र पुरुषसे मिलकर म अपने आपको अहोभागी समझता हूँ।" सुलतान मौजदीनने वस्तुपाल को दिल्ली प्रवेश कराते समय सबसे आगे रखा। वस्तुपाल को ठहराने के लिए पूनड़शाह का भवन ही देवयोगसे निश्चित हुआ। सुलतानने पूनड़शाह को बुलाकर कहा कि ये तुम्हारे साधर्म्मी भाई हैं अतएव इनके भोजन का प्रबंध अपने यहाँ ही करो और भोजन कराके इन्हें मेरे महल में ले आओ। पूनड़शाहसे मिलकर वस्तुपालने बहुत प्रसन्नता प्रकट की।

जब वस्तुपाल सुलतानके महल म पहुँचे तो भली प्रकारसे सन्मानित किए गये। सुलतानने विनयपूर्वक आदर किया तथा मधुर वार्तालाप के पश्चात् एक करोड सुवर्ण मुद्राएँ अर्पण कीं। सुलतानने पूछा, "भाई, और क्या चाहते हो।" मंत्रीश्वरने उत्तर दिया, "गुजरात प्रान्त के साथ आप की यावज्जीवन संधि होनी चाहिये और मुझे मम्माण खानमें से केवल पांच बढ़िया पाषाण चाहिये।" सुलतानने तुरन्त स्वीकृति दे दी।

इस प्रकार ये पांचों फलही प्राप्त कर मंत्रीश्वरने शत्रुंजय तीर्थपर भेज दीं। उस में से एक–ऋषभदेव फलही, दूसरी–पुण्डरीक फलही, तीसरी कपर्दियक्ष की फलही, चतुर्थ चक्रेश्वरी की फलही और पाँचवी तेजलपुर में श्रीपार्श्वनाथ की फलही है। मंत्रीश्वर दिल्लीसे लौटकर खंभात पधारे।

वि. सं. १४०५ में श्रीराजशेखरसूरि रचित प्रबंधकोष (वस्तुपालप्रबंध) सेठ हेमचन्द्राचार्य ग्रंथावली पाटणद्वारा प्रकाशित हुआ है।

'भाव' का है। भावना द्वारा किसी जीवधारी को सर्वोत्कृष्ट सुधार की प्राप्ती हो सकती है तथा इससे श्रेयस्करी प्रभावना होना सम्भव है। यही अनुपम भावना तीर्थयात्रा करते समय उत्पन्न होती है। सो यदि तीर्थपति का अभाव होगा तो हमें इस प्रकार गहरी हानि उठानी पड़ेगी। अतएव यदि संघ मुझे आज्ञा प्रदान करे तो मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं तीर्थाधिपति की प्रतिमा बनवाऊं। साधन भी इस समय उपलब्ध हैं। मंत्रीश्वर वस्तुपाल जो मम्माण पाषाण की फलही लाए थे वह अभी तक अक्षतरूप में भोयरे में मौजूद है। वह फलही संघ के अधिकार में है इसी कारण मैंने आप लोगा को आज यहाँ एकत्रित किया है। यदि संघ की आज्ञा हो जाय तो बहुत ठीक अन्यथा मुझे कोई दूसरी फलही खोजनी पड़ेगी।"

श्री संघने हमारे चरितनायक तथा इनके पिता श्री देसल की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए कहा, "मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल तो जिनशासन के उज्ज्वल श्रावक-रत्न थे। वे दोनों षड्दर्शन के ज्ञाता और धर्म के दो निर्मल चक्षुओं की तरह थे। उन्होंने विपुलद्रव्य व्यय कर यह फलही प्राप्त की थी। अब दुषमकाल का समय है। किसी का भी विश्वास नहीं किया जा सकता। यहँ फलही तो श्रेष्ठ रत्नभूत है अतएव आप को दूसरी फलही, जो आरासण पाषाण की हो, प्राप्त करके तीर्थनायक की मूर्त्ति का निर्माण शीघ्र करवाना चाहिये।"

समरसिंहने नम्रतापूर्वक कहा कि श्री संघ की आज्ञा मुझे मान्य है क्योंकि श्री संघ के आदेश को तीर्थंकर भी मान्य समझते हैं तत्पश्चात् श्री संघ के आदेश को शिरोधार्य कर हमारे चरितनायकने घर आकर सारा वृत्तान्त अपने पूज्य पिता श्री देसलशाह को सुनाया। धर्मिष्ठ देसलशाह अपने सुपुत्र समरसिंह सहित श्री सिद्धसूरिजी के सम्मुख पहुँचे और विधिपूर्वक वंदना कर प्रार्थना की कि, "आप की कृपा से हमारे बहुत से मनोरथ सफल हुए हैं। हमारी इच्छा है कि श्री तीर्थाधिराज शत्रुंजय का उद्धार हमारे हाथ से शीघ्र हो जावे। हमारी अभिलाषा है कि आप एक मुनि को हमारे कार्य को विधिपूर्वक सम्पादन कराने के लिये सहायक की तरह कृपाकर अवश्य भेजिये"

श्री सिद्धसूरि के शिष्यरत्न पं. मदनमुनि गुरु वचन को शिरोधार्य कर शीघ्र आरासण पहुँच गये। श्री देशलशाह की आज्ञा से हमारे चरितनायकने अपने सेवकों को एक पत्र देकर खान के मालिक के पास इस लिये भेजा कि वे खान के पति की आज्ञा पाकर खान में से एक फलही जिनबिम्ब बनाने के लिये ले आवें।[1]



१ श्री आत्मानंद सभा भावनगरसे प्रकाशित श्री जिनविजयजी विरचित 'शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबंध' नामक ग्रंथ में उपोद्घात के पृष्ट ३२ में उल्लेख है कि, "बादशाह के अधिकार में मम्माण संगमर्मर पाषाण की खानें थी जिनमें से बहुत बढ़िया भाँति का पत्थर निकलता था। समराशाहने वहाँसे पत्थर लेने

पंचम अध्याय.

फलही और मूर्ति।



स समय आरासणखान का अधिकारी राणा महीपालदेव था जो त्रिसंगमपुर में राज्य करता था। ग्रंथकर्त्ता उल्लेख करते हैं—" यह महीपाल राणा जन्म ही से निरामिष भोजी था तथा मदिरा का सेवन भी नहीं करता था। इस के अतिरिक्त वह दूसरों को भी मांस और मदिरा का पान नहीं करने देता था। वह त्रस जीवों की हिंसा भी नहीं करता था। उस के राज्य में शिकारियों को कोई अधिकार नहीं दिया जाता था। छोटे बकरे या भैंसे को भी कोई नहीं मार सकता था। जूआ या खेल खेलते हुए भी कोई " मारता हूँ " ऐसा उच्चारण

की आज्ञा मांगी तो बादशाहने खुशी से पत्थर लेने दिया।" परन्तु यह ठीक नहीं। समराशाहने तो महीपाल नरेश के अधिकारवाली आरासण खान से पाषाण की फलही मंगवाई थी-ऐसा उल्लेख रास-या प्रबंध में स्पष्ट है तथा इसी रास-प्रबंध की टिप्पणी में लिखा हुआ है-" मम्माण कहाँपर है, इस का पता नहीं लगा।" किन्तु जहां तक हमारा विचार है मम्माण पत्थर की खान नागपुर (नागोर) के पास थी क्योंकि इस बात का उल्लेख प्रबंध कोष आदि ग्रंथों में देखा जाता है।

नोट—पवित्र तिर्थाधिराज के उद्धार कर्ता श्रेष्ठि कुलभूषण हमारे मरूभूमि के एक वीर पुरुष हैं। और मूलनायक आदीश्वर भगवान् की मूर्ति भी हमारे मरूभूमि की उत्तम फलही से बनी हुई है। अतः इस गौरव से भारवाड़ प्रान्त का सर क्यों न उन्नत रहे।

नहीं कर सकता था। इस के घोड़ों को भी गरणे से छान कर पानी पिलाया जाता था। यद्यपि वह राजा था तथापि जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धा रखने के कारण दिन ही में भोजन कर लेता था।" महीपाल का इसी तरह का वर्णन नाभिनंदनोद्धार प्रबंध के प्रस्ताव चतुर्थ के श्लोक नं० ३४१ से ३४७ वें तक किया हुआ है।

इस धर्मिष्ठ राणा महीपाल का जो मंत्री था वह भी तदनुरूप ही था। उस श्रेष्ट मंत्री का नाम पाताशाह था। पाताशाहने भी राजा की इस प्रवृत्ति का बहुत सदुपयोग किया। पाताशाह के द्वारा भी जिनशासन की प्रभावना के अनेक कार्य किये गये।

समरसिंह के भेजे हुए सेवक बहु मूल्य भेंट और पत्र ले कर राणा महीपालदेव के सम्मुख पहुँचे। राणा की आज्ञा से मंत्री पाताशाहने समरसिंह का पत्र भरी सभा में पढ़ कर सुनाया। समरसिंह के पत्र के विचारों को जान कर राणा महीपालदेवने कहा, "इस समरसिंह को धन्यवाद है। इस कलिकाल में भी इस का जन्म लेना सफल है जब कि इस के विचार सतयुग के जीवोंकेसे हैं। मेरा भी परम सौभाग्य है कि आरासण पाषाण की खानें मेरे अधिकार में हैं। अन्यथा मैं इस पुनीत कार्य में हाथ कैसे बँटाता। पाताशाह ? समरसिंहने जो भेंट भेजी है वह सधन्यवाद वापस लौटादो। पुण्य कार्य के लिए जाती हुई फलही के दाम लेना मेरे लिये परम कलंक की बात होगी। भाग्यशाली नर तो धन, जन और तन का सर्वस्व अर्पण कर के भी

पुण्योपार्जन करते हैं तो मैं सिर्फ धन के कारण ही किस प्रकार इस सुकृत कार्य से हाथ धो बैठूँ ? मेरी अब यह हार्दिक इच्छा हुई है कि देव बिम्ब बनवाने के लिये यदि कोई भी आरासण खान से पत्थर ले जावे तो उस से भविष्य में किसी भी प्रकार का राजकीय कर नहीं लिया जाय। इस प्रकार मुझे भी सुकृत कार्य का लाभ कुछ अंश में अवश्य मिला करेगा।"

इस प्रकार राणा महीपालदेव प्रसन्नचित्त हो कर समरसिंह के सेवकों को ले कर अपने मुख्य मुख्य राज्य कर्मचारियों की मंडली सहित स्वयं आरासण पाषाण की खान पर गया। राणाने खान में काम करते हुए सब सूत्रधारों को बुलाया और उन के परामर्श से जिन-बिंब की कृति के लिये फलही का हिसाब लगाया। सूत्रधारों के कथनानुसार से भी अधिक आकार की फलही निकालने की राणाजीने आज्ञा प्रदान की। फलही निकालने का कार्य महोत्सवपूर्वक शुभ मुहूर्त्त में प्रारम्भ किया गया। समरसिंह के सेवकोंने भी सूत्रधारों का सोनेके आभूषण, वस्त्र, भोजन और ताम्बूल से विधिपूर्वक सम्मान किया। इस अवसर पर कुछ दान भी दिया गया था। सत्रागार भोजनशाला खोल दी गई थी।

राणा महीपालदेवने अपने सुयोग्य मंत्री पाताशाह को खान पर फलही के निरीक्षण के लिये नियुक्त कर दिया और आप त्रिसंगमपुर लौट आए। अहा ! भारत की भूमिपर भी कैसे

कैसे धर्मप्रेमी दयालु नरेश हो गये हैं। हमारी कामना है कि फिर ऐसे दानी और दयालु धर्मी नरेश भारत भूमिपर जन्म ले कर भारत भूमि के पराधीनता के पाशों को ढीला कर सुकृत की सरिता बहा कर फैले हुए हिंसा रूपी मलों को दूर करने में समर्थ हों।

इस प्रकार खान में काम हो रहा था। राणा महीपालदेव आते जाते हुए मनुष्यों के साथ समाचार भेजता रहता था। थोड़े दिनों के बाद फलही निकाली गई। बाहर निकाल कर फलही को धोया तो मालूम हुआ कि फलही के बीच एक रेखा है। फलही अखंड नहीं रही। जब यह समाचार हमारे चरित नायक के पास पहुँचा तो तुरन्त इन्होंने राणा महीपाल को लिखा कि खण्डित फलही दूषित है अतएव दूसरी फलही निकलवाना आवश्यक है।

काम फिरसे आरम्भ किया गया। उधर उस खंडित फलही के दो टुकड़े होगये। यह देखकर राणा और उसके सूत्रधार आदि कर्मचारी व अधिकारी सब चिंतातुर हुए। समरसिंह के अधिकारियोंने जो फलही के पास नियुक्त थे उन्होंने अष्टम तप कर डाभ का संथारा पर आसन लगाके ध्यान किया। तीसरे दिन रात को साक्षात् शासनदेवी और कपर्दी यक्ष प्रकट हुए और मंत्री को सम्बोधन करते हुए ललकारा, "मंत्रीश्वर! आप श्रावकों में शिरोमणी और जैनधर्म के विशेष ज्ञाता हो। किन्तु आपने यह काम एक अनभिज्ञ व्यक्ति की तरह कैसे प्रारम्भ किया? कार्य के प्रारम्भ में हमारा स्मरण

करना भी भूल गये ? क्या ऐसा करना तुम्हें उचित लगा ? सुनो, समरसिंह के सौभाग्य से अब तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जायगा। खान के अमुक हिस्से में से जिनबिम्बके लिये अनुपम और उपयुक्त फलही प्राप्त होगी। उन्ह लोगोंने अपनी भुल कबुल की और देवी का सन्मान किया। फिर तो देरी ही क्या थी" शासनदेवी की बानी फली। थोड़े ही परिश्रम और प्रयत्न से स्फटिक रत्नके सदृश एक निर्दोष फलही तुरन्त उपलब्ध हो गई।

राणा महीपाल के चतुर मंत्री पाताशाहने यह समाचार समरसिंह के पास पाटण भेजे। देसलशाह इस समाचार को पाते ही आह्लादित हुए और समरसिंह को कहा कि जो व्यक्ति यह समाचार लाया है उसे दो उत्तम पोशाकें और सोनेकी जिह्वा दाँतों सहित बनाकर दो। हमारे चरित नायकजीने वैसा ही किया। पाटणनगर में एक महोत्सव मनाया गया जिसमें आचार्यगण, साधुसमुदाय और श्रावकवर्ग एकत्रित हुए। पहले संघ की पूजा हुई फिर दान आदि देनेके पश्चात् देसलशाहने सविनय दोनों हाथ जोड़कर संघके समक्ष प्रार्थना की, "संघके प्रताप और आशीर्वादसे फलही जिनबिंब बनाने के लिए दूषण रहित तैयार हो गई है। यदि संघ की आज्ञा हो तो इसी फलही से जिनबिंब बनवाऊँ अथवा उस फलही से जो वस्तुपाल मंत्रीश्वरने प्राप्त की थी।" संघ की ओरसे विचार कर उत्तर दिया गया कि "आरासण पाषाण की फलही जो हाल ही में आपने प्राप्त की है जिनबिंब बनवाने के काम में लाई जाय।"

उस समय श्री संघकी ओरसे यह भी कहा गया कि देव-मन्दिर परव (?) आदि भी करवा दिये जाय तो उत्तम हो। क्यों कि म्लेच्छोंने मुख्य भवन का भी विनाश किया है[1]। इसके अतिरिक्त यवनों ने देवकुलिकाएँ (देहरी) भी गिरादी हैं। ये कार्य होने भी बहुत आवश्यक हैं। यह सुनकर एक पुण्यशाली श्रावकने संघसे विनती की कि मुख्य प्रासाद का उद्धार मेरी ओर से होने का आदेश मिलना चाहिये। संघने प्रत्युत्तर दिया कि आपका उत्साह तो सराहनीय है पर जो व्यक्ति जिनबिंबका उद्धार कराता है उसही के द्वारा यदि मुख्य प्रासादका उद्धार हो तो सोने में सुगंध सदृश शोभा और उत्साहमें अभिवृद्धि होंगे। जिसके यहाँ का भोजन हो उसीके यहाँ का ताम्बूल होता है। इस प्रकार श्री संघने समरसिंहको इष्ट आदेश दे दिया और शेष देवकुलिकाएँ वगेरह के लिये अन्यान्य सद्गृहस्थों को आदेश दिया गया था। तत्पश्चात् सब सभासद प्रसन्नचित्त हो अपने अपने घर गए।

---

१ साक्षर श्रीजिनविजयजीने अपने सम्पादित "शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबंध" के उपोद्घात के पृष्ठ २८ वें में लिखा है—"वर्तमान में जो मुख्य मन्दिर है और जिसका चित्र इस प्रबंध के प्रारम्भ में दिया गया है वह, विश्वस्त प्रमाणों से मालूम होता है, गुर्जर महामात्य बाहड़ (संस्कृत में वाग्भट) से उद्धरित हुआ है। किन्तु प्रबंधकारके कथनानुसार बाहड़मंत्रीद्वारा उद्धरित मुख्य मन्दिर का भी म्लेच्छोंने विध्वंस किया था। जिस स्थानसे यह मन्दिर भंग हुआ था उस जगहसे कलश पर्यंत मुख्य भवन के शिखर का उद्धार पीछेसे देसलशाह और समरसिंहने कराया था। ऐसा प्रबंध में आगे उल्लेखित है।

आदेश मिलजाने के कारण देसलशाह और हमारे चरित-नायक बहुत प्रसन्नचित्त हुए। उनका उत्साह परिवर्द्धित हुआ। राणा के नगर को अधिक धन और मनुष्य और भेजे गये। मंत्री पाताशाहने भी शिला के निकलने पर सूत्रधारों को सुवर्ण आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र प्रदान किये थे। यह समाचार सुनकर स्वयं राणा महीपालदेव भी आरासण पाषाण की खानपर पहुँचे और खान से निकली हुई फलही को प्रत्यक्ष जिनबिंब समझकर कालेच, कस्तूरी, घनसार, कर्पूर और पुष्पों से श्रद्धा और भक्ति-सहित विधिपूर्वक पूजा की। राणाने फलही की पूजा के उपलक्ष में बहुतसा द्रव्य दान में दिया। इस प्रकार यह उत्सव भी धूम-धाम से मनाया गया।

सूत्रधारोंने प्रस्तुत फलही को पर्वतपर से नीचे बहुत यत्न-पूर्वक उतारी। वह शिला आरासण नगर में महोत्सवद्वारा प्रविष्ट की गई। आरासण ग्राम के श्रावक भी फलही की अगवानी करने के लिए आए और उन्होंने श्रद्धासहित फूल और कर्पूर आदि सुगंधित द्रव्यों से पूजा की। उस समय गीत, गायन, बाजों और हर्ष का चारों ओर कोलाहल सुनाई देता था। ऐसी ध्वनि सुननेवाले वास्तव में परम सौभाग्यशाली थे। वहाँ स राणाजी महीपालदेव अपने चतुरमंत्री पाताशाह को तत्सम्बन्धी उपयुक्त सूचनाएँ देकर अपने नगर की ओर पधारे।

इस शिला को पहाड़ी भूमि में से लाने के लिए मंत्रीश्वरने

यह प्रबंध किया कि उस फलही को एक मजबूत रथ में रखा दी गई। रथ के आगे और पीछेसे फलही मजबूत रस्सों से बांध दी गई। रथ को खींचने के लिए बलवान धवल-बैल रथ में जोते गए थे। रथ के चलते समय पहियों पर तेल की धारें प्रवाहित हो रही थीं। पहाड़ो का रास्ता ऊँचा नीचा था जिसे मज़दूर साफ़ कर रहे थे। इस प्रकार प्रबल प्रयत्न से फलही पहाड़ी भूमि को पारकर मैदान में लाई गई। कुमारसेना नामक ग्राम के निकट जो समभूमि है वहाँ पर रथ ठहराया गया तो त्रिसंगमपुर के लोग फलही को देखने के लिए ठट्ठ के ठट्ठ आने लगे। इस प्रकार एक बड़ा समारोह हो गया। पाताशाहने समरसिंह को संदेश भेजने के लिए पाटण को आदमी भेजे। आदमियोंने जाकर हमारे चरित-नायक को वे समाचार सुनाए जिसकी कि वे प्रतीक्षा कर रहे थे। यह सुनकर कि फलही कुमारसेना ग्राम के पास पहुँच गई है वे परम प्रसन्न हुए।

हमारे चरितनायकने बलवान बैलों की खोज करवाई लोगोंने देसलशाह और समरसिंह को सहायता करने के लिए बैल बिना किराए ही दे दिये। क्योंकि इन्होंने अपने अलौकिक गुणों द्वारा सब के हृदय में विशेष स्थान कर रखा था। समरसिंहने आए हुए बैलों में से १० बैल जो सर्वोत्तम थे चुने। जिन लोगों के बैल समरसिंहने पसंद नहीं किये थे वे अप्रसन्न हुए। किन्तु समरसिंहने उन्हें मधुरवाणी से समझाया कि मैं बिना जरूरत सब बैलों को तकलीफ देकर क्या करूं। बैल एक

मजबूत गाडी सहित कुमारसेना नगर को भेज दिये गये। साथ में ऐसे सावधान और कायकुशल लोगों को भी भेजा जो फलही को बड़ी आसानी से निर्विघ्नतया ले आ सकें। फलही में इतना भार था कि लोह की मँढी गाडी भी टूटकर चकनाचूर हो गई। मंत्रीश्वर पाताशाहने समरसिंह के पास आदमी भेजकर दूसरी गाडी मंगवाई। शुभकार्य में यह विघ्न देखकर हमारे चरित-नायक चिंता सागर में निमग्न हो गए। अंत में समरसिंहने शासनदेवी का स्मरण तथा आराधन किया। शासनदेवीने आकर तुरन्त आश्वासनपूर्वक सर्वयुक्ति बतला दी। तदनुसार समरसिंहने जंजाग्राम से देवाधिष्ठित रथ मंगवा के बलवान् बैलों और चतुर मनुष्यों को कुमारसेना नामक ग्राम भेजा। बस, सब विघ्न दूर हो गये और मंत्रीश्वर पाताशाहने बड़ी खूबी से उस शिला को गाडीपर चढ़ा के रवाना की। ग्राम ग्राम के लोग कदम कदमपर उस भावी मूर्त्ति की पुष्प, चन्दन, कर्पूर और पुष्पों से पूजन करते थे क्रमशः सब खेरालुपुर आ पहुँचे। वहाँ के संघने भी भक्ति-पूर्वक उस फलही का द्रव्यभाव से पूजन कर नगर प्रवेश कराया[1]।

खेरालुपर से रवाना हो पगपग पूजित होती हुई कितने ही दिनों बाद फलही भाडूँ नामक ग्राम में पहूँची। उस समय फलही के दर्शन की उत्कंठा से देसलशाह अपने पूज्य आचार्य श्री

---

१ समरारासकारने इस विषय को संक्षिप्त से लिखा है परन्तु प्रबन्धकारने इस को खूब विस्तृतरूप से उल्लेख किया है क्योंकि प्रबन्धकारने यह बातें सब अपनी आंखों से देखी थीं।

सिद्धसूरि तथा पाटण के कई धनी मानी अपने इष्टमित्रों तथा कुटुम्बियों को ले कर भाडू ग्राम में पहुंचे। वहां जा देसलशाहने फलही की पूजा कर चित्त में परम प्रसन्नता प्राप्त की। सहस्रों गवैये और विरदावली कहनेवाले भाट आदि उस जगह एकत्रित हुए जिन के निनाद से आकाश गुंज उठा था। हमारे चरितनायक ने अपने पिताश्री के आदेशानुसार सब याचकों को वस्त्र आदि दे कर संतुष्ट किया। सब लोगोंने भी आदर पूर्वक फलही का पूजन किया। देसलशाह की महिमा सब ओर से सुनाई पड़ती थी। स्वामिवात्सल्य का प्रीति भोजन भी हुआ था। जगह जगह रास और गायन हुए तथा योग्य व्यक्तियों को विपुल द्रव्य पारितोषिक में दिया गया।

फिर देसलशाहने फलही को आगे चलने दिया, और आप पीछे पैदल चलने लगे। इस प्रकार देसलशाह अपने घर पहुंचे।

फलही जब पाटणनगर के द्वार पर पहुंची तो श्रीसंघने उसे बहुत मोद और परम उत्साह से बधाया। स्वागत की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत थी। बालचन्द्र मुनिवर्य से शीघ्र ही श्रेष्ट कर्म कराया था। स्वामी की मूर्त्ति जो प्रकट हुई थी ऐसी मालूम देती थी मानो कर्पूर अथवा क्षीरसागर के सार से ही देह बनाई गई होगी। यह भव्य मूर्त्ति संसार के लोगों पर परम कृपा प्रकट कर रही है ऐसा भासित होता था। आनंद जो अपूर्व और वास्तव में अलौकिक था लोगों के उर में समाता नहीं था। उत्साह दर्शकों की पसलिऐं तोड़ डाल रहा था। देशलपुत्र श्रीसमरसिंह का चरित्र देख

कर सब मंत्रमुग्ध थे। हमारे चरितनायक के उत्साह, उमंग और सौजन्य की भूरि भूरि प्रशंसा सब ओर से सुनाई दे रही थी।

ग्रामों और नगरों के संघोंसे विविध प्रकार पूजा सत्कार पाती हुई फल ही अनुक्रम से पुंडरिक गिरि के नीचे पहुँची। पादलिप्त (पालीताणा) के श्रीसंघने पुनः उत्साह से फलही का आगमनोत्सव धूमधाम पूर्वक मनाया। शत्रुंजयगिरि पहुँच जाने के समाचार हमारे चरितनायक को मिले तो आपने वधाई लानेवाले को प्रचुर द्रव्य दे कर निहाल किया। उन लोगों को आपने हिदायत की कि पर्वतपर चढ़ाते समय उन उन बातोंपर विशेष ध्यान रखा जाय कि जिस के कारण कार्य निर्विघ्नतया सम्पादित हो। पाटणनगर के विशेषज्ञ १६ सूत्रधारों को बुला कर मूर्त्ति घड़ने के लिये शत्रुंजय पर्वतपर भेजने के लिये नियुक्त किया। नूतन सौराष्ट्र नरेश मंडलिक जिन मुनिवर्य को सदा पितृव्य (चाचा) के नाम से सम्बोधित करता था ऐसे राजमान्य मुनिवर्य जिन का नाम बालचन्द्र था और जो उस समय जूनागढ़ में विराजमान थे, उनको श्री शत्रुंजय गिरि पर शीघ्र बुलाया गया था।[1] बालचंद्रमुनिने शत्रुंजयगिरि पर पहुँच फलही की गाड़ी में से सूत्रधारोंद्वारा नीचे

---

१ तथा श्री जीर्णप्राकारात् मण्डलीक महाभुजा।
नवङ्ख्य सुराष्ट्राणामधिपेन य उच्यते॥
पितृत्य इति तं साधुर्बालचन्द्राभिधं मुनिम्।
आनाययन्नरान् प्रेष्य शीघ्रं शत्रुंजये गिरौ।
—नाभिनंदनोद्धार प्रबंध प्रस्ताव ४ थ श्लोक १७

उतरवाई और उस फलही को छोटी इस हेतु करवाई कि पर्वतपर चढ़ाते समय भार कुछ हलका हो। इतना करनेपर भी उस फलही को ८४ श्रमजीवियोंने पर्वत के ऊपर ६ दिनमें पहुँचाई। उन स्कंधवाहन श्रमजीवियों का भोजन सत्कार आदि भली भाँति किया गया था। कहते हैं कि जावड़शाहने इतनी ही भारी फलही पहले इस पर्वतपर ६ महीने में चढ़वा पाई थी।

प्रस्तुत फलही प्रमुख देवमन्दिर के मुख्य द्वारके तोरण के सामने रखी गई। उसको घड़ने के लिये शिल्पविज्ञान विज्ञ पुरुष विद्यमान थे। उन्होंने मूर्त्ति बनाना प्रारम्भ किया। फिर मुनि बालचंद्र की आज्ञानुसार वह सुघटित बिंब मुख्य स्थानपर लाया गया। इस अवसर पर कुछ विघ्न संतोषियोंने उपद्रव करना चाहा परन्तु प्रभावशाली आचार्यश्री सिद्ध सूरीश्वरजी और विमलमति देसलशाहके पुण्य प्रतापसे, साहसिक शाहणपाल की प्रखर बुद्धिमानीसे तथा पुरुषसिंह श्री समरसिंह के ओजसे दुर्जन लोग दुष्टता त्यागकर कार्य करनेवाले हो गये। मुनिवर्य बालचंद्रजीने बिंबको मूल स्थान पर पधराकर देसलशाहको समाचार भेजे। यह संदेश सुनकर देसलशाहने अपनी इच्छा प्रकट की कि अब मैं चतुर्विध संघ सहित तीर्थाधिराज की यात्रा कर तीर्थनायक के बिंबकी प्रतिष्ठा कर अपने मानवजीवनको सफल करूँगा।



छट्ठा अध्याय ।

प्रतिष्ठा ।



यह सुनकर हमारे चरितनायक अपने पिताश्री सहित आचार्य श्री सिद्धसूरिजी को वन्दन करने के लिये पोषधशाला में पधारे । विधिपूर्वक वंदना करने के पश्चात् आपने कहा कि आचार्यवर ! आपने अपने उपदेशरूपी जल से हमारी आशारूपी लतिका का सिंचन किया वह अंकुरित तो पहले ही हो गई थी अब वह लतिका आप के उपदेशामृत द्वारा निरन्तर सिंचन द्वारा खूब बढ़ी जिस के प्रताप से बिंब को हम मूल स्थान में रखवाने को सफल हुए हैं । अब आप से यही विनम्र निवेदन है कि प्रतिष्ठा रूपी प्रसाद का दान कर हमारे मनोरथों को शीघ्र पूर्ण करिये । मुख्य मन्दिर के शिखर का उद्धार छेदक (भंग) से कलश पर्यंत परिपूर्ण करवा लिया गया है । इस के अतिरिक्त दक्षिण दिशा में अष्टापद के आकार का चौबीस जिनेश्वरों युक्त नया चैत्य भी करवाया गया है ।

पूर्वजों के उद्धार के स्मरणार्थ श्रेष्ठिवर्य त्रिभुवन सिंहने

(मंडप) के सम्मुख बलानक मण्डप का उद्धार भी करवाया है। तथा तात्कालीन पृथ्वी पर विचरते हुए अरिहंतों का नया मन्दिर भी उनके पीछे करवाया है। आचार्यश्री को उपरोक्त सूचनाएं की तथा यह भी बताया कि स्थिरदेव के पुत्र शाह लंदुकने भी चार देवकुलिकाएं करवाई हैं। जैत्र और कृष्ण नामक संघवियोंने जिनबिंब सहित आठ श्रेष्ठ देहरियाँ भी करवाई हैं। शाह पृथ्वीभट (पेथड़) की कीर्ति को प्रदर्शित करनेवाले सिद्ध-कोटाकोटि चैत्य जो तुर्कोंने गिरा दियाँ था उस का उद्धार हरि-श्चन्द्र के पुत्र शाह केशवने कराया है। इसी प्रकार देवकुलिकाओं का लेप आदि जो नष्ट हो गया था उस का उद्धार भी पृथक पृथक भाग्यशाली श्रावकोंने करा लिया है। कहने का अभिप्राय यह है कि आचार्यश्री ! अब इस तीर्थ पर ध्वंशित भाग कोई नहीं रहा है सब उद्धरित हो गए हैं तथा नये की तरह मालूम होते हैं। इस कारण अब केवल कलश, दंड और दूसरे सर्व अर्हतों की प्रतिष्ठा करवाना ही शेष रहा है।

शाह देसलने श्रेष्ठ सूरिवर, ज्योतिषी और श्रावकों आदि को

१-वि. सं. १५१७ में भोजप्रबंध आदि के कर्ता श्री रत्नमन्दिर गणि यशो-विजय ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित 'उपदेश तरंगिणी' के पृष्ट १३६ और १३७ में उल्लेख करते हैं कि योगिनीपुर (दिल्ली) से १ लाख ८० हजार यवनों की सेना जब गुजरात प्रान्त में पहुंची तो म्लेच्छोंने संघवी पेथड़शाह और झांझणशाह द्वारा कराए हुए सुवर्ण के खोल से मँढे हुए इस मन्दिर को देखा तो वे शत्रुंजय गिरिपर चढे और उन्होंने जावड़शाह द्वारा स्थापित प्रतिमा को तोड डाला।

बुलाकर प्रतिष्ठा के लिये मुहूर्त दिखलाया । सर्व सम्मति से शुभ मुहूर्त निकलने पर प्रधान ज्योतिषी से लग्नपत्रिका तुरन्त लिखवाई गई । लग्नपत्रिका ग्रहण करते हुए देसलशाहने बड़ा उत्सव मनाया तथा ज्योतिषियों को द्रव्य आदि दे तोषित किया । प्रतिष्ठा का समय निकट ही था अतएव देसलशाहने सर्व प्रान्तों में अपने कौटुम्बिक जन, पुत्र, पौत्र और कर्मचारियों को भेज कर संघ को निमंत्रण दिया । देसलशाहने जो एक नया देवालय बनवाया था वह रथ की तरह था । उस देवालय को आचार्यश्री सिद्धसूरि के समक्ष लेजा कर पोषधशाला में वासक्षेप डलवाया । शुभ दिन को देवालय का प्रस्थान कराना निश्चित हुआ । निश्चित दिन आने पर प्रस्थान करवाने के लिये देसलशाहने पोषधशाला में सर्व संघ को एकत्रित किया । देसलशाहने भक्तिपूर्वक श्री संघ का बहुत सत्कार किया और पश्चात् स्वयं आचार्य श्री सिद्धसूरि के आगे वासक्षेप डलवाने के लिये प्रस्तुत हुए। देसलशाह के ललाटपर शुभ हेतु श्री संघ की ओर से तिलक किया गया । आचार्यश्री सिद्धसूरिजीने स्वयं अपने करकमलों से देसलशाह के मस्तक पर ऋद्धि सिद्धि और कल्याण करनेवाला वासक्षेप डाला । तत्पश्चात् हमारे चरितनायक भी वासक्षेप के हेतु आचार्यश्री के सम्मुख पधारे । आचार्यश्रीने उनके मस्तक पर वासक्षेप डालते हुए यह शुभाशीर्वाद दिया कि " तू, सब संघपतियों में श्रेष्ठ हो । "

इस के बाद शुभ मिति पौष कृष्णा ७ को मङ्गल मुहूर्तानु-

सार देसलशाहने गाजों बाजों सहित श्री आदीश्वर भगवान् की प्रतिमा जो गृहमन्दिर में थी उसे मांगलिक क्रियापूर्वक नूतन देवालय में स्थापित की। कपर्दी यक्ष और सच्चाईका देवीने हमारे चरितनायक के सहायार्थ मानो शरीर में प्रवेश किया। बाद रथ में वृषभ जोड़े गये। सौभाग्यवती स्त्रियोंने संघपति देसलशाह और समरसिंह के मस्तक पर अक्षत उछालने का मंगल कार्य किया। सारथीने देवालय को रवाने किया। चलते ही अभ्युदयका संकेत-रूपी शुभ शकुन सब ओर से होने लगे। पहले संघ चला। भीड़ इतनी अधिक थी कि रास्ता संकीर्ण मालूम होने लगा। हमारे चरितनायकने घोड़े पर सवारी की। देसलशाह पालखी में बिराजे। चहुं ओर मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी। संगीत और वाजिंत्र के सब साधन साथ ही में थे। देवालय की कदम कदम पर पूजा हो रही थी। पहले दिन देवालय संखारिया नामक ग्राम में पहुँचा और वहाँ विविध प्रकार से प्रभु-भक्ति होने लगी।

हमारे चरितनायकने पोषधशाला में जाकर सर्व आचार्यों को वंदना कर यात्रा करने के लिये पधारने की प्रार्थना की। इतना ही नहीं पर पाटण के श्रावकों के घर घर पर जा कर स्वयं समरसिंहने निमंत्रण दिया था अतएव प्रायः पाटण नगरी के सारे श्रावक संघ में चलने के लिये सम्मिलित हो लिये थे।

सर्व सिद्धान्त रूपी अगाध महासागर को पार करने के हेतु नौका रूप आचार्य श्री विनयचंद्रसूरि भी यात्रा में साथ थे। बृहद् गच्छ रूपी निर्मलाकाश में चंद्रमा की तरह मनोहर चारित्र-

पालने वाले आचार्य श्री रत्नाकरसूरि भी संघ के साथ थे। गौरवयुक्त अंतःकरण वाले श्री देवसूरि गच्छ के आचार्य श्री पद्मचंद्रसूरि, जिनदर्शन के उत्कट अभिलाषी धीर षं (सं) डेर गच्छ के आचार्य श्री सुमतिसूरि, भावड़ा गच्छ की विभूति को प्रदर्शन करनेवाले आचार्य श्री वीरसूरि भी प्रसन्नतापूर्वक यात्रा में चले थे। थारपद्र गच्छ के आचार्य श्री सर्वदेवसूरि और ब्रह्माण गच्छ के आचार्य श्री जगत्चन्द्रसूरि भी संघमें चले थे। श्री निवृत्ति गच्छ के आचार्य श्री आम्रदेवसूरि जिन्होनें देसलशाह की यात्रा का रास[1] बनाया है तथा नाणकगण रूपी आकाश को भूषित करने में सूर्य समान आचार्य श्री सिद्धसूरि भी साथ ही थे। बृहद् गच्छ के मनोहर व्याख्यानी आचार्य श्री धर्मघोषसूरि, 'राज्यगुरु' सदृश उपनाम के धारी श्री नागेन्द्र गच्छ के भूषण आचार्य श्री-प्रभानंदसूरि, श्री हेमचन्द्रसूरि के आचार्य पद के शुद्ध भावना वाले पवित्र श्री वज्रसेनसूरि आचार्य तथा इस के अतिरिक्त दूसरे गच्छों के गण्यमान्य अनेक धर्मधुरंधर आचार्य प्रभृति भी देसलशाह की यात्रा में साथ थे।

चित्रकूट, वालाक, मरुधर और मालवा प्रदेश में विहार

---

१ देसलशाह की यात्रा का रास जिस का दूसरा नाम समरा रास भी है, श्री निवृत्तिगच्छ के भूषण श्री अम्ब (आम्र) देवसूरिने विक्रम संवत् १३८३ के पहले लगभग विक्रम संवत् १३७१ के चैत्र कृष्णा ७ की यात्रा कर पाटण पहुंचने के बाद तुरन्त ही बना लिया होगा, ऐसा ज्ञात होता है। यह रास विक्रम की १४ वीं शताब्दी की प्राचीन और मनोहर गुजराती भाषा में होने के कारण गुजराती साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है। परिशिष्ट में मूल रास (संशोधित) सम्पूर्ण देखिये।

करने वाले पदस्थ प्रायः सब मुनि भी इस यात्रा में सम्मिलित हुए थे। शुभ दिन के मङ्गलमय मुहूर्त को देख कर देसलशाह के साथ उपकेशगच्छाचार्य श्री सिद्धसूरिने प्रस्थान किया। उस समय देसलशाहने आचार्यश्री के शुभप्रस्थान का महामहोत्सव बड़े धूम धाम से किया था।

संघपति जैत्र और कृष्ण भी, संघपति श्री देसलशाह के सौजन्य व्यवहार से मुदित हो यात्रार्थ चले थे। मोतियों के गुण संयोग करनेवाला हरिपाल, चतुर सं० देवपाल, श्रीवत्सकुल के स्थिरदेव के सुपुत्र लुंढक, सोनी प्रह्लादन सत्यभाषी श्रावककुल भूषण सोढ़ाक, धर्मवीर श्रीवीर श्रावक और दानेश्वरी देवराज भी समरसिंह के अनुरोध से यात्रा में प्रसन्नता पूर्वक सम्मिलित हुए इतना ही नहीं वरन् गुजरातप्रान्त में से प्रायः सब श्रावक सम्मिलित हुए थे। इसी प्रकार से दूसरे प्रान्तों में से भी बड़े बड़े संघ आ आ कर सम्मिलित हुए तब संघ को आगे चलाना शुरु किया। जिस प्रकार मण्डप को खड़ा रखने के आधारभूत स्तम्भ होते हैं उसी प्रकार इस संघ के चारों महिधर थे जिन के नाम जैत्र, कृष्ण, लुंढक और हरिपाल थे। इन चारों धर्मवीरोंने संघ सेवा में खूब ही मदद की।

अलपखान को अनुज्ञापित करने के उद्देश से हमारे चरित नायक भेंट करने के लिये विपुल सामग्री लेकर राजमन्दिर में जा उपस्थित हुए और भेंट के पदार्थ व द्रव्य खान के सम्मुख रखे। खान इस भेंट से संतुष्ट हो कर समरसिंह को अश्व सहित बढ़िया

शिरोपाव दिया । हमारे चरितनायकने उस समय खान से कहा कि हमारा संघ श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रार्थ जा रहा है । मार्ग में दुष्ट जनों के त्रास से संघ की रक्षा करने के लिये कतिपय जमादार भेजे जांय जो दुष्टों का निग्रह करें और संघ को किसी भी प्रकार की बाधा न होने दें । बस समरसिंह के कहनेमात्र ही की देर थी कि खानने तुरन्त दस वीर, धीर और मुख्य महामीरों को साथ जाने के लिये हुक्म दिया । उन महामीरों तथा दूसरे पीछे रहे हुए लोगों को ले कर हमारे चरितनायक संघनायक के पास पधारे ।

सुखासन में बैठे हुए देसलशाह देवालय के पथ–प्रदर्शक की तरह यात्रा कर रहे थे । सहजपाल के सुपुत्र सोमसिंह संघ के पीछे रक्षक की तरह जा रहे थे । हमारे चरित नायक भोजन और आच्छादन प्रदान करने की व्यवस्था कर संघ के श्रावकों की आवश्यकाओं की पूर्ती करने में संलग्न थे और सेल्हार राजपुत्र सछत्र सशस्त्र अनेक भूषणों से विभूषित अश्वारूढ़ हो कर हमारे चरित नायक के साथ संघ की रक्षा चहुं ओर से करते थे। संघ का पर्यटन संगीत और वाजिंत्र की ध्वनि सहित हो रहा था । रास्ते में कई गाँव आते थे । वहाँ के अधिपति ठाकुर आदि दूध और दही की भेंट लेकर समरसिंह से मिलते थे । गाँव गाँव के संघ समरसिंह की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए संघवी की चरणरजसे अपने आप को पवित्र कर रहे थे । देसलशाहने एक योजना यह भी की थी कि नित्य यह घोषणा की जाती थी कि " भूखे को

भोजन दिया जाता है।" भूखों को भोजन कराने के लिये एक दानशाला की व्यवस्थित सुन्दर योजना की गई थी।

इस प्रकार रात दिन चलते हुए देसलशाह संघ सहित सेरीसा गाँव में पहुँचे। इस ग्राम में पार्श्व प्रभु की प्रतिमा (काउसग्ग ध्यानावस्थ) है। धरणेन्द्र से पूजित जो पार्श्व प्रभु अब तक कलिकाल में सकल (सप्रभाव) विद्यमान हैं, इन की प्रतिमा एक सूत्रधारने अपनी आँखों पर पट्टी बांध कर देव के आदेश से केवल एक ही रात भर में घड़ कर तैयार करदी थी। मंत्र शक्ति से सकल इच्छित प्राप्त करनेवाले श्रीनागेन्द्रगण के अधीश आचार्य श्रीदेवेन्द्रसूरिजीने इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी। इन्हीं चमत्कारी आचार्य श्रीदेवेन्द्रसूरिजीने मंत्रबल से श्रीसम्मेतगिरि से बीस तीर्थंकरों के बिंब तथा कांतीपुरी में स्थित तीर्थंकरों के तीन बिंब यहाँ पर लाए थे। तभी से यह तीर्थ पूज्यपाद आचार्य श्रीदेवेन्द्र-सूरिजीने स्थापित किया है जो देवप्रभाव से भव्य जनों के मनोरथों को पूर्ण करता है।

---

१ संघप्रयाणकेष्वेकं दीव्यमानेष्वहर्निशम्।
श्रीसेरीसाह्वयस्थानं प्राप देसल सङ्घपः॥
श्रीवामेय जिनस्तस्मिन्नूर्ध्व प्रतिमया स्थितः।
धरणेन्द्राश संस्थ्यंहिः सकलेयः कलावपि॥
यः पुरा सूत्रधारेण पट्टाच्छादित चक्षुषा।
एकस्यामेव शर्वर्यां देवादेशादघट्यत॥
श्रीनागेन्द्र गणाधिशैः श्रीमद् देवेन्द्रसूरिभिः।
प्रतिष्ठितो मन्त्रशक्ति सम्पन्न सकलेहितैः॥

संघपति देसलशाह सेरीसा नगर[१] में भगवान् की स्नात्र-पूजा, बड़ी पूजा आदि महोत्सव पूर्वक कर के महा ध्वजा अर्पित कर के आरती की। समरसिंहने भोजन तथा अन्न आदि का दान दिया। एक सप्ताह के पश्चात् संघ देसलशाह सहित क्षेत्रपुर में पहुँचा। वहाँ पर भी जिनेन्द्र भगवान् की पूजा कर संघ धोलके ग्राम में पहुँचा। इसी प्रकार मार्ग के प्रत्येक नगर और ग्राम में चैत्य परिपाटी कर के महाध्वजा, पूजा आदि का लाभ लेता हुआ संघपति देसलशाह संघ सहित पिप्पलालीपुर पहुँचे। इस नगर में श्री पुण्डरिक गिरि दृष्टिगोचर होता है। देसलशाह इस गीरि के दर्शन कर परम प्रसन्न हुए। उन के साहस में सुधा का संचार हुआ। पीयूषवर्षा से द्रवित देसलशाह के मन मन्दिर में आगे बढ़ने

---

१ तैरेव सम्मेतगिरेर्विंशति स्तीर्थनायकाः।
आनिन्यिरे मन्त्रशक्त्या त्रयः कान्तीपुरी स्थिताः॥
तदादीदं स्थापितं सत् तीर्थं देवेन्द्रसूरिभिः।
देवप्रभावविभविसम्पन्न जनवाञ्छितम्॥
नाभिनंदनोद्धार प्रबंध (प्रस्ताव ४ र्थ, श्लो० ६४६-५१)

रत्नमंदिर गणी सेरीसा के सम्बन्ध में इस प्रकार फर्माते हैं—" तथा सेरीसक-तीर्थे देवचन्द्रचुल्लकेनाराधितचक्रेश्वरी दत्तसर्वकार्य सिद्धिवरेण त्रिभूमिमय-चतुर्विंशतिगृह-कायोत्सर्गि श्री पार्श्वादिप्रतिमासुन्दरः प्रासाद एकरात्रि मध्ये कृतः। तत् तीर्थं कलि-कालेऽपि निस्तुल प्रभावं दृश्यते। " —उपदेशतरंगिणी जो य० वि० ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित हुई है उस के पृष्ठ ५ वँ से। अर्थात्—" सेरीसा तीर्थ, श्री देवचंद्र चुल्लक द्वारा आराधित चक्रेश्वरी के दिए हुए वरदान के प्रभाव से चौबीसी तथा खड़े काउस्सग्ग करते पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा आदि का स्थापन सहित तीन सुंदर भूमिवाला भवन एक रात ही में तैयार हो गया था। यह तीर्थ इस कलिकाल में भी अतुल प्रभाव-शाली ज्ञात होता है। "

की उत्कंठा उत्पन्न हुई। देसलशाहने संघ सहित गिरिराज की पूजा की। जयंत की तरह पिता के कार्य में सहायक रहने वाले हमारे चरितनायकने इस अवसर पर संघ को मिष्टान्न भोजन देने की व्यवस्था सफलतापूर्वक सम्पादन की। तिर्थाधिराज पुनीत पुण्डरिक गिरि को टकटकी लगा कर दर्शन कर हमारे चरित-नायकने याचकों को महादान अर्पण किये।

दूसरे ही दिन तीर्थपति के दर्शन करने की उत्सुकता से प्रयाण कर संघ शत्रुंजय गिरि के निकट पहुंचा। वस्तुपाल की धर्मपत्नी श्री ललितादेवी के बनवाए हुए रम्य सरोवर के कूल पर हमारे चरितनायकने संघ को ठहराया इस सरोवर की शोभा संघ के निवास से कई गुणा बढ़ गई।

जब कि संघपति देसलशाह विमलाचल पर्वत पर नहीं चढ़े थे उस समय खंभात नगर से आए हुए बधाई देनेवाले मनु-ष्योंने कहा कि देवगिरि (दौलताबाद) से सहजपाल और खंभात से साहणशाह संघ ले कर पधार रहे हैं। यह समाचार सुन कर हमारे चरितनायक संघप्रेम और भ्रातृभक्ति के कारण बहुत हर्षित हुए। यह संवाद सुन कर समरसिंह आनन्दमग्न हो गये। उल्लास से उत्सुकतापूर्वक अपने भाइयों का स्वागत करने के लिये एक योजन संघ सहित अगवानी के लिये गये। भाइयों से भेट हुई। परस्पर प्रेमालाप हुआ। ऐसी दृढ़ भक्ति देख कर दर्शक आश्चर्य सागर में गोते लगाने लगे। दोनों आए हुए भाई भी अपने भाई की इस साहस भरी प्रवृत्ति को

देख कर कहा कि बन्धुवर, "हम संघवियों को भी जैसे तैसे निभा लेना"। भाइयों की यह वाणी सुन कर समरसिंह मन ही मन प्रसन्न हुए कि इस अवसर पर इन दो संघों का आना सोने में सुगंध वाला कार्य हुआ।

खंभात से आए हुए संघ के साथ बहुत से आचार्य भी थे। हमारे चरित नायकने उनका विधि पूर्वक वंदन किया। इस के अतिरिक्त खंभात से लब्ध प्रतिष्ठित प्रसिद्ध श्रावक भी साथ थे जिन की शुभ नामावली इस प्रकार है:—पातक मंत्री का भाई मं. सांगण, वंशपरम्परागत संघपतित्व प्राप्त करनेवाला सं. लाला, भावसार सं. सिंहभट, सारंगशाह, मालो श्रावक, मंत्रीश्वर वस्तुपाल का वंशज मंत्री बीजल, मदन, मोल्हाक और रत्नसिंह आदि अनेक श्रावक खंभात के संघ सहित प्रसन्नता पूर्वक पधारे थे। हमारे चरित नायकने उपरोक्त साधर्म्मियों का स्वागत करने में किसी भी प्रकार की कोरकसर नहीं रखी। तत्पश्चात् युगल बन्धुओंने (सहजपाल और साहणशाह) आकर संघपति देसलशाह के चरणों को छूकर भक्तिपूर्वक वंदन किया। देसलशाह अपने दोनों पुत्रों के इस प्रकार संघ सहित आकर मिलने से परम प्रसन्न हुए। फिर विमलगिरिवर पर चढ़ने की तैयारियों बड़े उत्साह से होने लगीं।

प्रभातके समयमें संघपति देसलशाह पादलिप्त (पालीताणा) स्थित श्रीपार्श्वप्रभु की प्रतिमा को सविनय वंदन कर सरोवर के तीर पर स्थित श्रीवीरभगवान् को प्रणाम कर पर्वताधिराज के निकट पहुँचे। वहाँ श्रीनेमनाथ भगवान् को भेंट कर आचार्य श्री

सिद्धसूरिजी के साथ देसलशाह पर्वतपर चढ़ने लगे। उस समय की छटा अवर्णनीय थी। पर्वत की झाड़ियों में पक्षियों की सुमधुर बोली, झरने की मनोहर ध्वनि आदि नैसर्गिक आनंदों का अनुभव करते हुए देशलशाह अपने तीनों पुत्रों सहित प्रसन्नतापूर्वक पर्वतपर चढ़ रहे थे। प्रथम प्रवेश में युगादीश्वर की माता मरुदेवी के दर्शन हुए। माता को नमस्कार कर वे श्रीशांतिनाथ भगवान् के मन्दिर में पधारे। वहाँ पूजा करने के पश्चात् सं. देसलशाहने संघ सहित श्रीआदिनाथ भगवान् की पूजा बड़े ही आनंद पूर्वक की। अपने द्वारा उद्धारित कपर्दीयक्ष की मूर्त्ति का अवलोकन कर सं० देसलशाह बहुत संतुष्ट हुए।

फिर वहाँ से आगे चल कर संघपति देसलशाहने फहराती ध्वजाओं वाले मन्दिर को टकटकी लगा कर देखा और अनुक्रम से संघ सहित युगादि जिन के मन्दिर के सिंहद्वार पर पहुँचे। वहाँ से युगादि जिन के दर्शन कर परम तुष्ट हो कर देशलशाहने द्रव्य इस प्रकार वित्तीर्ण किया कि सब ओर सुवर्ण, वस्त्र, मोती और आभूषणों की वृष्टि दृष्टिगोचर होने लगी। इस के बाद मन्दिर में प्रवेश कर अपने द्वारा निर्माण कराई हुई आदिजिन की प्रतिमा को बंदन करने की उत्कट अभिलाषा व उत्सुकता से संघपति देसल बढ़ते हुए आदिनाथ के समीप पहुँचे। दर्शन करते हुए दिल को बड़ा ही आनन्द होता था। भक्तिपूर्वक प्रणाम करने के पश्चात् उस लेप्य मूर्त्ति को पुष्पों से पूज कर प्रदक्षिणा देते हुए संघपति देसलशाहने कोटाकोटि चैत्य में स्थित अर्हतों की भी पूजा की

देसलशाहने पाँडवों की पांचों मूर्त्तियों तथा उन की माता कुंती की भी विविध द्रव्यों से पूजा की।

रायणवृक्ष के नीचे स्थित श्रीआदिजिन की पादुका का पूजन किया गया। सं. देसलशाहने नूतन निर्माण कराई हुई मयूरमूर्त्ति के दर्शन करते हूए मोती, सुवर्ण और आभूषणों आदि की वृष्टि की। श्रीआदीश्वर भगवान् के तीर्थपर उगी हुई रायणवृक्ष भी इसी प्रकार पुनीत दर्शनीय एवं पूजनीय है ऐसे विचार से देसलशाहने महोत्सव कर याचकों को वस्त्र आदि प्रदान किये। उस समय रायण भी आनंद–पीयूष की बर्षा कर रही थी। २२ तीर्थंकरों को वंदन पूजन तथा दर्शन करते हुए सर्वत्र प्रदिक्षणा देते हुए संघपति आदीश्वरजिन को पुनः भक्तिपूर्वक प्रणाम कर अपने आवासस्थान में जाकर प्रतिष्ठा की तैयारी करने में तत्पर हुए।

संघपति देसलशाहने प्रतिष्ठा कराने के महत्वशाली कार्य को सम्पादन करने के लिये हमारे चरितनायक को आदेश दिया। आदेश प्राप्त कर समरसिंहने अपने को परम अहोभागी समझा और उसी क्षण से आनन्दसागर में निमग्न होने लगे। सब से प्रथम उन्होंने १८ स्नात्र मयूर (? प्रचुर) पिंड पकवान्न सहित मूल शत आदि प्रतिष्ठा की उपयोगी सामग्री के सर्व पदार्थ तैयार करवाकर रखे जिस से कि प्रतिष्ठा के अवसरपर किसी प्रकार का विलम्ब न हो। प्रतिष्ठाविधि को अवलोकन करने की उत्कट

अभिलाषा से सुराष्ट्रानव और वालाक से जैन समुदाय झुंड के झुंड आ रहे थे।

हमारे चरित नायकने माघ शुक्ला १३ गुरुवार को यात्राके हित चतुर्विध संघ को एकत्र किया। आचार्य श्री सिद्धसूरि तथा अन्य आचार्यों सहित हमारे चरितनायक पानी लाने के लिये कुंड पर पधारे। दिक्पाल, कुंडाधिष्ठायक देव आदि की विधि-पूर्वक पूजा की गई तथा साथ ही में ग्रह आदि की भी पूजा हुई। श्री सिद्धसूरि के मुखारविंद से उच्चरित मंत्रों द्वारा किया हुआ पवित्र जल कुंभों में भरा गया। कलशों को ले कर सब गाजे बाजे से आदीश्वर के मन्दिर पर वापस आए। कलश योग्य स्थान पर स्थापित किये गये।

प्रतिष्ठा लातिका की मूल भूमि रूप मूलशत को पिसवाना प्रारम्भ किया गया। हमारे चरित नायकने इस काम के लिए चार सौ सधवा स्त्रियों को काम में लगाया जिन के माता, पिता, सास और ससुर जीवित थे। उन स्त्रियों के मस्तक पर आचार्य श्री सिद्धसूरिजीने क्रम से वासक्षेप डाला। वे स्त्रियें मूल शत को हर्षपूर्वक मंगल गीत गातीं हुई पीसने लगीं। हमारे चरितनायकने उन महि-लाओं को रंग विरंगे वस्त्र और बहु मूल्य भूषण प्रदान किये थे।

जिनालय के चारों ओर नौ वेदियों स्थापित कर उन में जवारे स्थापित किये गये थे। प्रभु के सम्मुख नंद्यावर्त को रखने के लिये मंडप के बीच के भाग में एक हाथ ऊँची वर्गाकार वेदी

हमारे चरितनायकने करवा कर उस के ऊपर चार स्तम्भ स्थापित करवाए थे जिन के ऊपर शिखर की तरह सुवर्ण कलश स्थापित कराया गया था। यह मंडप उत्तम वस्त्रों से तथा केले आदि के पल्लवों से सजाया गया था। उसी के निकट में आदीश्वर प्रभु के मुख्य मन्दिर के ध्वजायुक्त महादंड की प्रतिष्ठा करने के हेतु सूत्रधारों द्वारा उसे वेदिपर रखवाया था। आदीश्वर के जिन मन्दिर के चारों तरफ प्रतिष्ठा के हित मूल सहित डाभ और उत्तम बालू धूल से वेदिकाऐं बनवाई गई थीं। मन्दिर के द्वारों पर आम्र पल्लवों की वंदणमालाऐं सुशोभित थीं। आचार्य श्री सिद्धसूरिजीने गोरोचन, कुंकुम, चंद्र (कर्पूर), कस्तूरी, चंदन और अन्य सुगंधित वस्तुओं के लेपवाली महामूल्य चीजों से नंद्यावर्त पट्ट की आलेखना की।

इस के बाद घटीकारोंने जलयुक्त कुंड से घड़े भर कर रखे। मंगल मुहूर्त्त को देख कर आचार्य श्री सिद्धसूरि जिन मन्दिर के अन्दर पधारे। अन्य आचार्य वर भी प्रतिष्ठा कराने के लिये चैत्य में पधार कर अपने अपने स्थान पर विराजमान हुए। इतने ही में संघपति देसलशाह अपने पुत्रों सहित निर्मल जल से स्नान कर मनोहर और विशुद्ध वस्त्र धारण कर ललाट पर श्रीखण्ड चन्दन से तिलक कर भक्तिपूर्वक चैत्य में प्रविष्ट हुए। अन्य श्रावक भी उस स्थान पर इसी प्रकार पहुँचे। आचार्य श्री सिद्धसूरिजी आदि जिनेश्वर के सम्मुख और संघपति देसलशाह साहण सहित दाहिनी ओर तथा हमारे चरित-

नायक सहजाशाह सहित बांई ओर उपस्थित थे। बांई ओर रहे हुए हमारे चरितनायकने जिनमज्जन कराया। सांगण और सामंत उभय भ्राता चामर लेकर जिन सम्मुख स्थित रहे। चक्षु रक्षा के निमित्त अरिष्ट (अरेठा) की माला उरस्थल में स्थापित कराई गई। कर्पूर, चंदन, फूल, अक्षत, धूपकालेयक, अगर और कस्तूरी आदि युक्त प्रतिष्ठा योग्य वस्तुओं को तैयार कर रक्खी, और गुरुने देसलशाह आदि श्रावकों के कंकण रहित हाथ में मदनफल कौसुंभ सूत्र से बांधा।

इस प्रकार प्रतिष्ठा–सामग्री तैयार होने पर आचार्यवरने स्नात्रकारों द्वारा स्नात्र आरम्भ कराया। लग्न घटी को स्थापित कर एकाग्र चित्तवाले आचार्यश्रीने अधिवासना मुहूर्त को सिद्ध किया। जिन बिंब को उत्तम लाल वस्त्र से ढक कर श्रीखण्ड सुगंधित पदार्थों से पूज कर मंत्रों द्वारा सफल किया। हमारे चरितनायक गुरुकी पोषधशाला में पधारे और वहाँ से नंद्यावर्त के पट्टको सधवा स्त्री के मस्तक पर रख कर शीघ्र आदीश्वरजिन के चैत्य में पधारे और वह गाजेबाजे से मंडप वेदीपर रखा गया। आचार्य श्री सिद्धसूरि पट्टके समीप गये और विधियुक्त आलेखित सुयंत्रको कर्पूरसमूहसे पूजा। सिद्धाचार्यजीने नंद्यावर्त मंडल बनाया और मंत्रवादियोंने कर्पूर आदिसे उसकी पूजा कर उसे दोष रहित किया। सारे आचार्योंने नंद्यावर्त की पूजा की। पुनः वापस लौटकर सिद्धसूरिजी आदिजिन के पास आकर लग्नसिद्ध करने को प्रस्तुत हुए। कौसुम्भ कंकण भी बांधे जाने लगे।

शुभ लग्नके समय पर एक हाथमें रजत कचौली तथा दूसरे हाथमें सुवर्ण सलाई लेकर आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज अंजनशलाका प्रतिष्ठा करने को तैयार हुए। प्रतिष्ठा सम्बन्धी वेला निकट आई। उस समय उस भव्यभवनमें 'समय' 'समय' ऐसी आवाज चारों दिशाओं से सुनाई दी। प्रतिष्ठा के समय सिद्धसूरि-

---

१ वि. सं. १३७१ की यह प्रतिष्ठा उपकेशगच्छ के आचार्य श्री सिद्धसूरि द्वारा हुई थी। यह उपर्युक्त दर्शित प्रामाणिक रास व प्रबंध के उल्लेख से स्पष्ट है। इतने पर भी वि. सं. १४९४ में रचित गिरनार तीर्थ पर की विमलनाथ प्रासाद की प्रशस्ति (बृहत्पोशालिक पट्टावली में सूचित श्लोक ७२) में, पं. विवेकधीर गणि रचित वि. सं. १५८७ के शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबंध (आत्मानंद सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित) के उल्लास १, श्लोक ६३ में, वि. सं. १६३८ में नयसुन्दर गणि रचित शत्रुंजय रास में और इन्हीं के आधार से लिखने वाले पाश्चात्य लेखकोंने यह बतलाया है कि इस प्रतिष्ठा को कराने वाले आचार्य श्री रत्नाकरसूरि थे। यह उल्लेख उन्होंने बिना रास और प्रबंध को देखे किया है। उनके उल्लेख इस प्रकार हैं।

" आसन् बृद्धतपागणे सुगुरवो रत्नाकराह्वा पुरा
ऽयं रत्नाकर नामभृत् प्रवबृते येभ्यो गणो निर्मलः।
तैश्चकै समराख्य साधुरचितोद्धारे प्रतिष्ठा शशि–
द्वीय व्येकमतिषु १३७१ विक्रमनृपादब्देष्वतीतेषु च ॥ ६३ ॥

प्रशस्त्यन्तरेऽपि—

वर्षे विक्रमतः कु–सप्त–दहनैकस्मिन् १३७१ युगादि प्रभु
श्री शत्रुंजय मूलनायकमतिप्रौढप्रतिष्ठोत्सवम्।
साधुः श्री समराभिधास्त्रिभुवनीमान्यो वदान्यः क्षितौ
श्री रत्नाकरसूरिभिर्गणधरैर्यैः स्थापयामासिवान् ॥

(गिरनार–विमलनाथ प्रासाद की प्रशस्ति।)

जीने जिनेश्वर भगवान् की प्रतिमा से वस्त्रों को दूर किया और दोनों नेत्रों को सौवीर–सीतायुक्त उन्मीलन किया। गाजेबाजे से

—पं० विवेकधीरगणिकृत शत्रुंजयोद्धार प्रबंध से जो मु० जिनविजयजी द्वारा सम्पादित हो कर आत्मानंद सभा भावनगर से प्रकाशित हुआ है।

भावार्थ—बृद्धतपागण में पहले रत्नाकर सुगुरु हुए जिस से यह निर्मल रत्नाकर नामक गण (गच्छ) प्रवृत्त हुआ। उन्होंने समरशाह के किये हुए उद्धार में वि. सं. १३७१ में प्रतिष्ठा की। अन्य प्रशस्तियों में भी कहा है कि वि. सं. १३७१ में त्रिभुवन मान्य, संसार में वदान्य स्वनाम धन्य समरशाहने उत्सवपूर्वक श्री शत्रुंजय तीर्थ के मूलनायक युगादीश्वर प्रभु की प्रतिष्ठा रत्नाकरसूरि द्वारा करवाई—

संवत् तेर एकोतरे–श्री ओसवंश शणगार रे।
शाह समरो द्रव्य व्यय करे–पंच दशमो उद्धार रे, धन्य०
श्री रत्नाकर सूरिवरू, वडतपगच्छ शणगार रे।
स्वामी ऋषभज थापीया, समरे शाहे उदार रे, धन्य०

—वि० सं० १६३८ में कवि नयसुंदर द्वारा रचित शत्रुंजय रास से (ढाल ९ कडी ९३–९४)

आचार्य कक्कसूरिजीने नाभिनंदनोद्धार प्रबंध के प्रस्ताव चतुर्थ के श्लोक नंबर ५९५ में उल्लेख किया है कि—" बृहद्गच्छ के रत्नाकरसूरि साथ गए थे।' प्रतिष्ठा के प्रसंग पर अन्य आचार्यों के साथ ये आचार्य भी सम्मिलित थे। इस में बताए हुए बृहद् गच्छ के रत्नाकरसूरि और बृद्धतपागण (वडतप गच्छ) में हुए रत्नाकर गच्छ के प्रवर्तक रत्नाकरसूरि–ये दोनों एक ही आचार्य हो तो भी वि. सं. १३७१ में शत्रुंजय तीर्थ के मूलनायक श्री आदीश्वर प्रभु की प्रतिष्ठा करनेवाले उपकेश गच्छ के सिद्धसूरि ही प्रभुख थे। यह सत्य स्वीकार करने योग्य है कि इस प्रसंग पर आचार्य रत्नाकरसूरिजीने अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई होगी क्योंकि यह सर्वथा सम्भव हो सकता है। पर मूलनायक श्री युगादीश्वर की अञ्जनशिलाका (प्रतिष्ठा) कर्त्ता तो श्री उपकेशगच्छाचार्य श्री सिद्धसूरि ही हैं।

विक्रम सं. १३७१ के तप (माघ) मास की शुक्ल चतुर्दशी सोमवार को युगादीश्वर प्रभु की प्रतीष्ठा की। पहले वज्रस्वामीने और पीछे से सिद्धसूरिजीने प्रतिष्ठा की, अतः दोनों की समता कही जा सकती है। उस समय मुख्य मन्दिर के दंड की प्रतिष्ठा तो आचार्य श्री सिद्धसूरि के आदेश से वाचनाचार्य नागेन्द्रने की थी।

संघपति देसलशाह अपने सर्व पुत्रों सहित चन्दन और घनसार आदि विलेपन से तथा पुष्प, नैवेद्य और फल आदि से प्रभु पूजा कर जिन हस्त को कंकणाभरण सहित देख कर बहुत प्रसन्न हुए। नृत्य और गीत क्रम से हुए। लोग कस्तूरी के विलेपन तथा पुष्पों से पूजन करते हुए जिन बिंब के निर्माण करने वाले तथा चैत्योद्धार कराने वाले भाग्यशाली भद्र भविक जनों की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। देसलशाह महोत्सव पूर्वक दंड चढ़ाने को तत्पर हुए। सिद्धसूरि आचार्य के परामर्शानुसार देसलशाह अपने पुत्रों सहित दंड स्थापित करने के हित मंदिर पर चढ़े। आचार्य श्री सिद्धसूरिने मंदिर के कलश पर वासक्षेप डाला। सं. देसलशाहने सूत्रधारों द्वारा दंड स्थापित कराया। ध्वजा प्रसन्नता से बांधी गई। आदर्श पिता अपने पाँचों होनहार कर्त्तव्यपरायण पुत्रों सहित सुशोभित था। पहले जावड़शाहने वायुपत्नी सहित नाच किया था उस को तो उस समय कोई नहीं जानता था पर मनोरथ की सिद्धि होने की खुशी में सं. देसलशाह सकल संघ तथा पांचों पुत्रों सहित प्रसन्नतापूर्वक नाचने

लगे यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था। इन रंगरलियों में निमग्न होते हुए भी चैत्य पर से सोना, चांदी, अश्व, वस्त्र और आभूषणों का दान दिया जा रहा था। कल्पवृक्ष की नांई सुवर्ण, रत्न और आभरणों की अनवरत वृष्टि हो रही थी। पाँचों भाई पाँडवों की तरह क्रमसे सहजपाल, साहणशाह, हमारे चरितनायक, सामंतशाह और सांगणशाह धनवृष्टि कर रहे थे।

सं. देसलशाहने शिखरपरसे उतर कर प्रभुके सम्मुख उपस्थित हो देव शिरोभागसे शुरुकर बलानक मंडप के आगे के भाग में होती हुई चैत्यदंड पर्यंत पट्टदुकूलयुक्त महा ध्वजाऐं बांधी। अनेक चित्रवाले हिमांशु, पट्टांशु और हाटकांशु ऐसे तीन छत्र और दो उज्ज्वल चामर आदि जिनके पास रखे गये। इसके अतिरिक्त सोनेके दस्तेवाले चांदी के तांतणों से बनाए हुए दूसरे दो चामर भी दिये गये। सोना, चांदी और पीतल के कलश, मनोहर आरती और मंगलदीपक भी दिये गये। सारी चौकियों और मंडलों में पट्ट दुकूलवाले मोतियों के गुच्छोंसे युक्त वितान (चंदरवे) बांधे गए। आदीश्वरके सम्मुख संघपति देसलशाहने अखंड अक्षत, सुपारी, नारियल और आभूषणों आदिसे मेरु पूरा। उस मेरुपर जिनजन्माभिषेक का अनुकरण किया गया।

उपवासी व्रतनिष्ठ सं. देसलशाहने पुत्र पौत्रों सहित दूसरे सर्व जिनों को पूजकर दस दिन तक महोत्सव मनाया। घनसार, श्रीखंड, पुष्प और कर्पूर से विलेपन किया गया। रात्रिको साहण-

शाहने कस्तूरी का विलेपन किया । भाँति भाँतिके लाख पुष्पोसे साहणशाहने विचित्र पूजा की । हमारे चरितनायकने घनसार से भी श्रेष्ठतर कालागरु धूप प्रज्वलित किया । देसलशाहने सहजपाल सहित मंडप में बैठकर अरिहंत प्रभुकी ओर दृष्टिकर तीर्थपति के गुणों में सावधान हो प्रेक्षणक्षण कराया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल देसलशाहने आचार्य श्री सिद्धसूरि को वंदना कर सुविहित सर्व साधुओं को सम्पूर्ण तृप्तिकारक भक्त-पानसे पडिलाभकर पुत्रों सहित पारणा किया। चारण, गायक और भाटों आदि को सर्व श्रेष्ठ भोजन कराया गया। दीन, हीन, निर्बल, विकल, अटके, भटके, अनाथ और असाह्य याचकों के लिये दानशाला खुली रखी गई ।

दस दिनों के महोत्सव होनेके बाद ग्यारहवें दिवस प्रातः काल देसलशाहने संघ के साथ सिद्धसूरि आचार्यवरके हाथसे प्रभुके कंकणबंध का मोक्ष कराया । देसलशाहने विश्वप्रभुको अपने बनवाए हुए नये आभूषण—मुकुट, हार, ग्रैवेयक (कंठा), अंगद और कुंडल आदिसे पूजा की । दूसरे भव्य श्रावकोंने भी महा ध्वजा बांध, मेरु पर स्नात्र करा महा पूजा कर अपनी शक्ति के अनुसार दान आदि दे अपने मानव जीवन को सफल किया ।

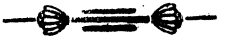
संघ के साथ देसलशाहने आदिजिनके सम्मुख रह हाथमें आरती ले आरती उतारी । उस समय साहण और सांगण दोनों भाई जिनेश्वर भगवान् के दोनों ओर चामर लेकर उपस्थित थे ।

सामंत और सहजपाल, ये दोनों भाई हाथमें श्रेष्ठ शृंगार रखे हुवे थे। हमारे चरितनायकने भक्तिपूर्वक पिता के पैरोंसे लेकर नौ अंगों की तिलक करके पूजा की[1]। चंदन तिलकवाली ललाटपर अखंड अक्षत लगाये और पिता के गले में पुष्पहार डाला। संघ के दूसरे पुरुषोंने भी देसलशाह के पैर और ललाटपर तिलक कर आरती से पूज संघपति के कंठमें पुष्पहार डाले। चारों ओर सुवर्ण वृष्टि होने लगी। जिनेन्द्रके गुण गानेवाले गवैयों को हमारे चरित नायकने अपने सोनेके कंकण, घोड़े और वस्त्रों के दानसे प्रसन्न किया। देसलशाहने आदीश्वर भगवान् की आरती करने के पश्चात् प्रणाम कर मंगल दीपक हाथमें लिया। द्वारभट्ट (बारोट) और भाट आदि युगादीश्वर के गुणगानमें निरत थे। बिरदावली बोलते हुए बंदीजन देसलशाह और समरसिंह की प्रशंसा कर रहेथे। हमारे चरितनायकने हर्षसे चांदी, सोना, रत्न, घोड़े, हाथी और वस्त्रों आदि का दान बारोट तथा भाटों को दिया। बजते हुए बाजाओं के निनाद में देसलशाहने कर्पूर जलाकर मंगल दीपक उतारा। संघ सहित शक्रस्तव से आदि जिन की स्तुति की गई। आचार्य श्री सिद्धसूरि भी शक्रस्तव के बाद अमृताष्टक स्तवनसे स्तुति कर देसलशाहके साथ वापस आए। इसी प्रकार पांचों पुत्रोंने संघ सहित आरती उतारी।

---

१ चन्दनस्य पितुः पादावाराभ्याथ नवाप्यसौ।
अङ्गानि तिलकैः साधुभक्तिमनार्चयत् स्मरः॥
(नाभिनंदनोद्धार प्रबंध का प्रस्ताव पाँचवे का ८१८ वाँ श्लोक)

इस प्रकार सानंद प्रतिष्ठा कर देसलशाह अपने सुयोग्य पुत्र पंचरत्नके साथ नृत्यमें निमग्न हो हाथ जोड़ भगवान्से विनय प्रार्थना करने लगे कि ' प्रभो ! फिर दर्शन देना ' । युगादिदेवसे इस प्रकार निवेदन कर देसलशाह कपर्दियक्षके स्थानपर आए । मोदक, नारियल और लपसीसे पूजा कर, यक्षके मन्दिर पर अनुपम पट्टयुक्त महा ध्वजा बांध—जिनपूजा—बद्ध कक्ष यक्षसे विनती की कि ' विघ्नों का विनाश करिये, सर्व धार्मिक कार्यों में सहायता दीजिये । ' पश्चात् देसलशाह आचार्य श्री सिद्धसूरिके साथ पर्वत से नीचे उतरे ।



सातवाँ अध्याय

प्रतिष्ठा के पश्चात् ।



सलशाहने स्वयं प्रार्थना कर मुनीश्वरों का मिष्टान्न आदिसे सत्कार किया । सारे संघको सकुटुम्ब उत्तम सात्विक पदार्थोंवाला भोजन दिया । चारण, गायक, भाट और याचकों को भी रुचि-अनुसार भोजन कराया गया । दूर से आए हुए दीन, दुखी और दुस्थित लोगों के लिये अवारित सत्रागार कराया गया ।

आचार्य, वाचनाचार्य और उपाध्याय आदि पदस्थ ५०० साधु इस महोत्सव में सम्मिलित थे । शाह सहजपाल महाराष्ट्र और तैलंग से जो सुन्दर और बारीक वस्त्र साथ लाए थे मुनिराजों को वे वस्त्र सं० देसलशाहने परम भक्ति सहित आनंदपूर्वक दिये । इस के अतिरिक्त अन्य दो सहस्र मुनियों को भी विविध वस्त्र दिये गये थे ।

हमारे चरितनायकने दानमंडप में बैठ कर सातसौ चारणों, बीन हजार बंदियों को तथा एक सहस्र से अधिक गवैयों को

घोड़े, वस्त्र और द्रव्य देकर उनका यथायोग्य सन्मान किया। इस के अतिरिक्त वहाँ एक वाटिका थी जिस का रहट टूटा हुआ था और जहाँ के पौधे पानी के अभाव से कुम्हला गए हुए थे जिस के चारों ओर वाड़ का अभाव था उसे चतुर मालियों के सुपूर्द कर प्रचुर द्रव्य देकर उन वाटिकाओं का इस लिये पुनः सुधार किया गया कि जिस से प्रभु की पूजा के लिये नित्य नये नये सुगंधित पुष्प पर्वत पर पहुँचा दिये जाँय। जिनेन्द्र की सेवा में निरत सारे पूजारियों तथा जिन-गुण-गान करनेवाले सर्व सुरीले मधुरभाषी गवैयों तथा जिन बिंब तथा मन्दिर के जीर्णोद्धार में दत्त हो कर काम करनेवाले कार्यकुशल सारे चतुर सूत्रधारों को

---

१ रत्नमंदिरगणि का कहना है कि उस प्रतिमोद्धार के उत्सव में संघपूजा के १४०० सोना के नकर वेढ आए उस अवसर पर भूरु से वाणोतर महत्ताने परदेशी मल्ल नामक भाट को लाख से भरा हुआ वेढ दे दिया। बाद में जब स्वाधर्मीवात्सल्य (संघ जेवनार) के समय उस भाटने गरम गरम चावल और दाल परोसते समय अपने वेढको उतारकर जमीनपर रख दिया उस समय हमारे चरितनायकने उस भाट से कारण पूछा कि कहो तुमने यह आभूषण क्यों उतार दिया? भाटने उत्तर दिया कि आपका जो यह पुण्यमय दान है उस को जाकर यदि मैं अपने गांव के श्रावकों को बतलाऊंगा तो वे इसका जरूर अनुमोदन करेंगे। किन्तु यदि मैं इस को इस समय नहीं उतारता हूँ तो वेढ के अंदर जो लाख भरी है वह चावल और दाल आदि की गर्म भाप के कारण पिघल कर निकल जायगी और यह खाली वेढ उतना अच्छा मालूम नहीं होगा। इसपर समरसिंहने उस भाट को दस नई अंगूठियों और दीं। यह प्राप्त कर भाट समग्र संघ के समक्ष उच्च स्वर में बोल उठा सुनिये! सुनिये!!

अधिकं रेखया मन्ये समरं सगरादपि।
कलौ म्लेच्छ बलाकीर्णे येन तीर्थं समुद्धृतम्॥

इच्छित आजीविका अर्पण की गई। इस प्रकार सारे जनों को संतोषित कर संघपति देसलशाह शत्रुंजय तीर्थपर पुण्यवृक्ष का अंकुर वपन कर उज्ज्यंत तीर्थ को नमने के लिये गये।

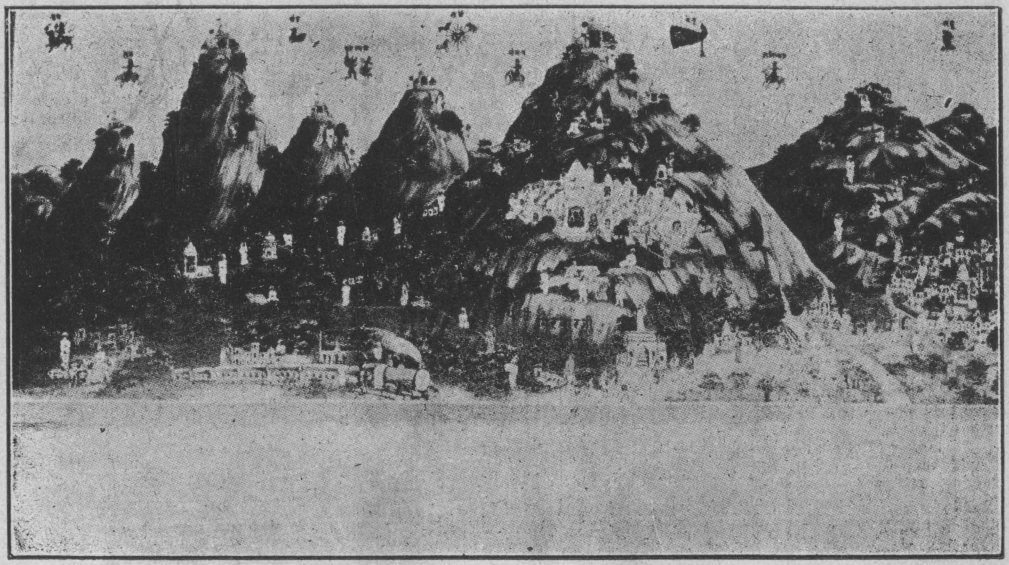
शुभ मुहूर्त में सबसे आगे देवालय चला और उसके पीछे देसलशाह संघ के सब लोगों के साथ चले। सब संघ अमरावती (अमरेली) आदि गाँवों में अद्भुत कृत्यों से जिनशासन को प्रभासित करता हुआ क्रमसे उज्जयंतगिरि पहुँचा। जूनागढ़ नगर के स्वामी महीपालदेव सं. देसलशाह तथा समरसिंह के अलौकिक गुणों से आकर्षित हो संघ के सम्मुख गये थे। इन्द्र उपेन्द्र की नांई शोभित वज्रचक्रयुक्त हाथवाले महीपाल और समरसिंह परस्पर प्रेमपूर्वक मिले। आपस में मधुरालाप होने लगा। विविध भेंट देकर हमारे चरितनायकने महीपालदेव को तोषित किया। हमारे चरितनायक को साथ लिये हुए जूनागढ़ नरेश महीपालदेव देसलशाह से मिले। देसलशाह और महीपालदेव के परस्पर क्षेमप्रश्नालाप हर्षपूर्वक हुआ। पश्चात् संघ समरसिंह की

अर्थात् सगर से भी मैं समरसिंहको रेखा के हिसाब से अधिक समझता हूँ जिसने कि म्लेच्छों के बलसे व्याप्त तीर्थ की कलिकाल में भी उद्धार कर रक्षा की। समरसिंहने तुष्ट होकर उसे इतना द्रव्य अर्पण किया कि जितना उसके जीवन पर्यंत निर्वाह के लिये पर्याप्त था।

उपदेशतरंगिणी (यशोविजय ग्रंथमाला से प्रकाशित) के पृष्ठ १३७ वें से.

पं. शुभशील मणि के वि. सं. १५२९ में रचित ग्रंथ पंचशती प्रबंध (कथाकोष) के २५६ वें सम्बन्ध में उल्लेख किया हुआ है कि उपर्युक्त श्लोक संघपूजा के समय रामभट्टद्वारा कहा गया था—

समरसिंह—



श्री गिरनारजी तीर्थ (पृष्ट २०१)

संरक्षता में चलता हुआ तेजपालपुर के निकट पहुंचा। राजा महीपालदेव अपने नगर की ओर पधार गये।

उज्जयंतगिरि शिखर के भूषण श्री नेमीजिन को नमस्कार करने के लिये संघपति देसलशाह सब संघ सहित गये और शत्रुंजय तीर्थ की तरह यहाँ पर भी महाध्वजा, पूजा और दान आदि किये। प्रद्युम्न, शाँब, अवलोकन शिखर और तीन कल्याणक आदि सब मंदिरों की यात्रा कर देसलशाहने महापूजा कर महाध्वजा चढ़ाई।

इसके पश्चात् देसलशाहने अम्बादेवी की पूजा की। उसी समय समरसिंह के पुत्र जन्मने की खबर वहाँ पहुँची। सुनकर सब अति प्रसन्न हुए। शुभ कृत्य का फल शीघ्र मिला। पुनः देसलशाहने चरितनायकजी के पुत्र होने की खुशी में अम्बामाता की प्रसन्नतापूर्वक पूजा की। गजेन्द्रकुण्ड में देसलशाह तथा सहजा आदिने स्नान किया। इस प्रकार परम आनंद और उल्लास से दस दिन तक इस तीर्थ पर रहकर गिरनार गिरि से नीचे उतरे।

हमारे चरितनायक की प्रशंसा चारों ओर फैल गई। उस समय देवपत्तन के नरेश मुग्धराज की उत्कट अभिलाषा थी कि समरसिंह से मिलूँ। मुग्धराजने अपने मंत्री द्वारा हमार चरित-नायक को इस आशय का पत्र लिखकर भेजा—"वीर समरसिंह! आप पुनीत कलाधर (चन्द्र) की तरह है। बड़ी कृपा हो यदि आप मुझसे चातक के मनोरथ को शीघ्र पूरित करें।" हमारे चरितनायक इस पत्र के अभिप्राय को तुरन्त समझ गये।

हमारे चरितनायक वहाँ पधारने को उत्सक हुए। कामदेव सदृश समरसिंह भेंट लेकर महीपालदेव की आज्ञा लेने के लिये गये। संतुष्ट हो कर महीपालदेवने स्वयं समरसिंह को सुपद वस्त्र सहित घोड़े और सरोपाव दिया।

कर्पूर का व्यवहार नमक की तरह साधारण था। चारों और श्रवणप्रिय संगीत का निनाद सुनाई देता था। चलता हुआ

---

१ यह महीपाल, राखेगार के पीछे गद्दीनशीन मंडलिक के पुत्र नोघण का पुत्र था। मंडलिक के समय में दिल्ली के बादशाह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने अलफखान को गुजरात प्रान्तपर आक्रमण करने के लिये भेजा था। सोमनाथ का मन्दिर जो ईसवी सन १०२४ में मुहम्मद गजनवी द्वारा तोड़ा जाकर फिर सुधरवाया गया उसे अलफखानने तोड़ डाला। और इसके अतिरिक्त घोघा और माधवपुर के बीच के काँठे के प्रदेश को भी अपने अधिकार में उसने कर लिया। कहा जाता है कि उस समय राजा मंडलिकने अलफखान की टुकडी को हरा दी थी। किन्तु ऐसा होना संभव था कि अलफखान द्वारा भेजे हुए किसी हाकिम ही को हराया होगा। चाहे जैसा हो परन्तु रेवतीकुन्ड ऊपर के लेख में मंडलिक को मुगल को हराने वाला लिखा है। गिरनार पर के एक लेख में जिक्र है कि उसने श्री नेमीनाथ स्वामी के मन्दिर को सोने के पत्रों से सुशोभित किया था। मांडलिक के पीछे राजा नोंघण चतुर्थ गद्दीपर आरूढ हुआ। गिरनार के लेख में वर्णन है कि वह महा शूरवीर योद्धा था। नोंघण दो वर्ष राज्य कर पंचत्व को प्राप्त हुआ। अतः उसका पुत्र महीपाल गद्दीपर बैठा। महीपालने सोमनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने तथा अन्य धार्मिक खेतों में बहुतसा द्रव्य खर्च किया। इसका राज्यकाल ७० वर्ष रहा। इसके बाद में इसका पुत्र राखेंगार ईस्वी सन् १३२५ में गद्दी पर बैठा जिसने सन् १३५१ तक राज्य किया—

काठियावाड़ सर्व संग्रह के पृष्ठ ४०० और ४०१ से (१८८६ की आवृत्ति)

संघ सिन्धु स्थान स्थान पर ठहरता था, पैर पैर पर पादचर चलते थे। मनुष्यों और घोड़ों की भीड़ के कारण आने जाने के रास्ते रुके हुए थे। जिन शासन की विजय वैजंती फहरा रही थी। सोमेश्वरदेव के दर्शन कर कबडीवार जलनिधि को अवलोकन कर संघ प्रियमेल से उतरा। चंद्रप्रभु की पूजा कर, कुसुम करंडा पूजा रच जिन भवन में उत्सव किया गया। शिव देवलमें पचरंगी महा ध्वजा दी गई।

प्रबंधकारों का कथन है कि मुग्धराज नृप के पत्र को देख कर हमारे चरितनायकजी देवपत्तनपुर की ओर सिधारे। मार्ग में श्रीधाम, वामनपुरी (वणथली) आदि सब स्थानों में चैत्यपरिपाटी पूर्वक महोत्सव मनाया गया। सोमेश्वर नरेश परिवार सहित संघ से सामने आ कर समरसिंह से मिले। दोनोंने परस्पर मधुरालाप द्वारा अपनी भेंट को चिरस्मरणीय किया।

संघपति देसलशाहने हमारे चरितनायक को आगे किया। आपने देवालय और संघ सहित द्वारों पर तोरण और पताकायुक्त देवपत्तनपुर में प्रवेश किया। सोमेश्वरदेव के समक्ष एक प्रहरतक सब रहे। सम्प्रति, शालिवाहन, शिलादित्य और आमराज्य आदि राजा तथा इस कृतयुग में उत्पन्न हुए अनेक धनीमानी जैनों एवं चौलुक्य कुमारपाल राजा आदि भी जिस कार्य को न कर सके वह कार्य कलिकाल में देसल के भाग्य से हो गया। श्रीजिन शासन और ईश शासन के पारस्परिक स्वाभाविक वैमनस्य को दूर कर परस्पर प्रीतिमय मार्ग का उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित किया गया। इसी

कारण से कहा गया है कि "इस पृथ्वीपर अनेक संघपति तो अवश्य उत्पन्न हुए हैं किन्तु हे वीर समरसिंह! आप के मार्ग का कोई अनुसरण न कर सका। श्रीआदिजिन का उद्धार, प्रत्येक नगर के नृपति का सामने आकर मिलना और सोमेश्वर नगर में बिना विघ्न प्रवेश ये कार्य अवश्यमेव अद्वितीय हुए। आप की यह धवलकीर्ति जैसी प्रसारित हो रही है वैसी किसी अन्य की नहीं हुई।"[1]

देवपत्तन में भी अवारित दान देकर जिनमन्दिर में साम्राहिक महोत्सव तथा सोमेश्वर की पूजा की गई। मुरधराज से घोड़ा और सरोपाव प्राप्त कर हमारे चरितनायक सं० देसलशाह सहित पार्श्वप्रभु को वंदन करने के लिये अजाधर (अजार) की ओर पधारे। ये पार्श्वनाथ समुद्रमार्ग से पर्यटन करनेवाले तरीश को आदेश कर समुद्र से बाहर निकले थे तथा तरीश द्वारा स्थापित जिन चैत्य में विराजमान थे। वहाँ महापूजा कर महाध्वजा देकर देसलशाह कोडीनार की ओर चले। कोडीनार अधिष्ठायक देवी की मूर्त्ति का कर्पूर, कुंकुम आदि से पूजन किया गया तथा एक महाध्वजा भी चढ़ाई गई। इस देवी का विस्मय-

---

१ तथा चोक्तम्—नैतस्मिन् कतिनाम सङ्घपतय क्षोणितले जज्ञिरे।
किन्त्वेकोऽपि न साधु वीर समर! त्वन्मार्गमन्वग् ययौ॥
श्रीनाभेयजिनोद्धृतिः प्रतिपुरं तत्स्वामिनोऽभ्यागतः।
श्रीसोमेश्वरपुर प्रवेश इति या कीर्तिर्नवा वल्गति॥
नाभिनंदनोद्धार प्रबंध (प्रस्ताव ५ श्लोक ६०४)

जनक पूर्व वृतान्त इस प्रकार है। एक ब्राह्मण की पत्नी जिस का नाम अम्बा था एक बार मुनिराज को अन्नदान दे रही थी। इस बात पर उस का पति बहुत क्रोधित हुआ जिस के फलस्वरूप वह ब्राह्मणी अपने दो पुत्रों सहित घर से निकल कर श्रीगिरनार तीर्थ पर श्रीनेमीश्वर भगवान् के शरण में पहुँची। प्रभु को नमन कर वह आम्रवृक्ष के नीचे जा बैठी। वहाँ जब वह अपने पुत्रों को आम्रफल देकर राज़ी कर रही थी कि यकायक उसने अपने पति को वहाँ आता हुआ देखा। पति को देख कर वह ब्राह्मणी बहुत ही डरी। भय से व्याकुल हो वह शिखरपर से कूए में कूद पड़ी। वहाँ वह मर गई और तीर्थ की अधिष्ठायक देवी प्रकट हुई। उसी के स्मरणार्थ कोडीनार में उस देवी की वह मूर्त्ति थी जिस की पूजा का ऊपर वर्णन किया गया है।

अनुक्रम से संघ चलता हुआ द्वीपवेलाकूल (दीवबंदर) आया। समरसिंह के स्नेही दीव स्वामी मूलराजने दो नौकाओं को आपस में बांध कर उन के ऊपर एक मज़बूत चटाई स्थापित की और उस के ऊपर देवालय को स्थापित कर संघपति सहित नौका को जल में चलाया। उस समय का दृश्य अति मनोहर एवं चित्ताकर्षक था। अनुक्रम से दूसरे संघ के यात्री भी दीव पहुँचे। दीव ग्राम के क्रोडपति व्यवहारी हरिपालने संघ का अपूर्व स्वागत किया। यहाँपर भी संघपतिने अष्टाह्निक उत्सव मनाया। याचकों को मनमांगा दान दिया गया। यहाँ से चल कर संघपति एक बार और शत्रुंजय तीर्थ की यात्रार्थ पधारे थे।

संघ के पुनः शत्रुंजय जाने के पूर्व आचार्य श्रीसिद्धसूरिजी किसी रोग से पीड़ित हुए थे। अतः आप जीर्णदुर्ग (जुनागढ़) नगर में कुछ समय के लिये ठहरे थे। संघ के प्रमुख प्रमुख व्यक्तियोंने एक बार आचार्यश्री से विनती की कि आप का शरीर इस समय व्याधियुक्त है और कैवल्यज्ञान के अभाव में अन्य कोई आप के आयुष्य की अवधि को बता नहीं सकता। अच्छा हो यदि आप अपनी आचार्य पदवी किसी सुयोग्य शिष्य को इस समय प्रदान करावें। गुरुश्रीने सब के समक्ष अपने अभिप्राय को स्पष्टतया प्रदर्शित कर दिया कि मेरी आयु पांच वर्ष, एक मास नौ दिवस और शेष है। सत्यदेवी का कहा हुआ सुयोग्य शिष्य भी विद्यमान है। जिस को मैं अलग नहीं करूंगा और समय आने पर सूरिपद भी देदूँगा। आप लोग निश्चिन्त रहिये।

सर्व संघने पुनः प्रार्थना की कि इतना होनेपर भी हमारा नम्र निवेदन है कि श्रीपूज्यने जिस प्रकार स्थावर तीर्थ स्थापित किया है उसी प्रकार हमारे पर महरबानी कर जंगम तीर्थ भी स्थापित करने की कृपा करें। इस प्रार्थना को स्वीकार कर आचार्यश्रीने मेरुगिरि नामक अपने शिष्य को सूरिपद अर्पण कर उस का नाम कक्कसूरि रखा। वि० सं० १३७१ में फाल्गुन शुक्ला ९ को पद हुआ। उस समय चैत्रगच्छीय भीमदेवने पदस्थापना का श्लोक कहा था जिस में श्रीकक्कसूरि की प्रशंसा की थी कि जिन के उदय में सर्व कल्याण सिद्ध होते हैं। सूरिपद का महोत्सव मं. धारसिंहने किया था। पाँच दिन उसी जगह रह कर

देसलशाह पुनः शत्रुंजय में उत्सवपूर्वक संघ से मिले और पुनः यात्रा की।

शत्रुंजय की पुनः यात्रा कर संघपति देसलशाह गुरु सहित पाटलापुर पधारे। पहले जब जरासंध से युद्ध करते समय श्रीकृष्ण की सारी सेना रणक्षेत्र में विकल और विह्वल हो गई थी उस समय श्रीनेमीनाथ भगवान्ने शंख की जबरदस्त उद्घोषणा कर एक लाख राजाओं को जीता था[1]। उस स्थानपर विष्णु कृष्णने नेमीजिन को स्थापित किया था। उन श्रीनेमीजिनेश्वर को पूज कर वे सब संखेश्वरपुर नगर में पहुँचे। संखेश्वरपुर के भूषण श्रीपार्श्वजिन हैं। जो प्राणत् देवलोक के स्वामी से दीर्घकाल तक पूजे गये थे। जो पार्श्वप्रभु ९४ लाख वर्ष तक प्रथम कल्प में देवलोक के स्वामी से पूजे गये थे और उतने ही लाख वर्ष तक चन्द्र, सूर्येन्द्र और पाताल के तक्षक नागपति से भी पूजे गये थे, नेमीनाथ स्वामी के आदेशानुसार वासुदेवने पाताल से श्रीपार्श्वनाथ को प्रकट कर प्रतिवासुदेव के युद्ध के समय के पीड़ित सैनिकों को शांति पहुँचाई थी और जिन के स्नात्र के जल के छींटों से सर्व रोगी निरोग हुऐ थे ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु को

---

१ शङ्खः श्रीनेमिनाथेन, यज्जरासिन्धुविग्रहे;
नृपलक्षजयोऽपूरि तस्मात् शङ्खेश्वरं पुरम्।
नाभिनंदनोद्धार प्रबंध प्रस्ताव ५ वाँ, श्लोक ९३४

२ पातालात् प्रतिवासुदेव समरे श्रीवासुदेवेन यः
सैन्यैर्मारिमदर्दितेते विलसति श्रीनेमिनाथांतिके।

प्रणाम कर उस तीर्थ पर विधिपूर्वक महादान, महापूजा और महाध्वजा कर संघपति हारिज ग्राम को गये और वहाँ जा कर श्रीऋषभप्रभु को प्रणाम कर पत्तनपुर की ओर प्रयाण किया।

पत्तनपुर के समीप सोइलग्राम में संघपति श्रीदेसलशाहने संघ को ठहराया। संघ सहित देसलशाह को कुशलक्षेम पूर्वक आया हुआ जान कर पत्तनपुर निवासी स्वागत के लिये सामने आये। उत्साह और उत्कंठा से आद्रित हुए पत्तनपुर निवासियोंने श्रीदेसलशाह और श्रीसमरसिंह के चरणकमलों को चंदन और सुवर्ण कमलों से पूजा। उनके चरणकमलों को अपने हाथों से छूकर वे ऐसा समझते थे कि हमने विमलाचल की यात्रा की है। हर्ष पूर्वक वे लोग दोनों के गले में पुष्पहार डालते थे। वे मिष्टान्न आदि उपस्थित कर स्वागत करने के लिये परम रुचि प्रदर्शित कर रहे थे। उस नग्र में ऐसा कोई भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य, शूद्र या यवन नहीं होगा जो देसलशाह और समरसिंह के कार्यों से प्रसन्न हो कर उन के स्वागत के लिये सामने न आया हो। देसलशाह तथा हमारे चरितनायकने भी वस्त्र, ताम्बूल आदि दे कर उन सब का सन्मान किया।

शुभ मूहूर्त में पुर प्रवेश हुआ। हमारे चरितनायक घोड़े पर सवार संघ के आगे चलते हुए खूब शोभ रहे थे। खान के

तच्छान्त्यै प्रकटीकृतोऽथ सहसा तस्नालवारिच्छटा-
संयोगेन जनोऽखिलोऽपि विदधे नीरुक् स पार्श्वःश्रिये ॥
नाभिनंदनोद्धार प्रबंध प्रस्ताव ५ श्लो० ६३९

सुखासन (पालखी) में बैठे हुए संघपति देसलशाह संघ के पीछे पीछे आ रहे थे । आचार्य श्रीसिद्धसूरि प्रमुख मुनीश्वर और श्रावक देवालय सहित शोभ रहे थे । चामरधारी शीघ्रता से नम्रतापूर्वक चामर डुला रहे थे । मृदंग, भेरी, पहड आदि वाजित्र बज रहे थे । तालाचरों से नृत्य कराते हुए जिस समय देसलशाह और हमारे चरितनायक नगर में प्रविष्ट हुए तो यह सुध्वनि सुन कर घरों के लोग ऊपर चढ़ कर संघ समुद्र की शोभा निरखते थे । उन का हर्ष हृदय में नहीं समाता था । नगर कुंकुम गहुंली, वंदनवार, वितान, पूर्णकलश और तोरणों से शोभायमान हो रहा था । घर घर में ध्वजा और पताकाएँ वायु में फहराती हुई संघपति के यश को फैला रही थी । मार्गभर में महिलाएँ बधैयों ले रहीं थीं । सज्जन पुरुष दोनों की भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे जो चारों ओर से सुनाई देती थी । हमारे चरितनायक इस प्रकार मंगल ग्रहण करते हुए अपने आवास में प्रविष्ट हुए । सौभाग्यवती स्त्रियोंने दीपक, दूब, इत्तर और चन्दन आदि थाल में रख कर हमारे चरितनायक के पुण्यशाली ललाटपर तिलक किया । श्री देसलशाहने पंचपरमेष्ठि महामंत्र को जपते हुए गृह प्रवेश किया ।

देसलशाहने देवालयमें से श्रीआदिजिन को उतार कर कपर्दी यक्ष और सत्यकादेवी सहित गृहमन्दिर में स्थापित किये । पुत्रों सहित सुभासन पर बैठे हुए संघपति से मिलने के लिये सब लोग ठट्ठ के ठट्ठ आ आ कर नमस्कार और आशीर्वादपूर्वक

वंदना करने लगे। हमारे चरितनायकने कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए सब को ताम्बूल वस्त्र आदि भेंट किये। बन्दीजनों, गवैयों, ब्राह्मणों और याचकों को मुँहमाँगा द्रव्य दिया। सहजपालने तथा अन्य पुत्रोंने अपने पिता के चरण दूध से धोए। तीसरे रोज देव भोज दिया गया। उस भोज में नगर के ९००० व्यक्ति सम्मिलित हुए। इस तीर्थयात्रा में सब मिला कर २७,७०,००० सत्ताईस लाख सत्तर हजार द्रव्य व्यय हुआ[1]।

गोत्रवृद्धा यथाशक्ति, संमान्यां बहुमानतः।
विधेया तीर्थयात्रा च, प्रतिवर्षं विवेकिना॥



१ सप्तविंशतिलक्षाणि सहस्राणि च सप्ततिः।
तीर्थोद्धारे व्ययति स्म देसल संज्ञनायकः॥
—नाभिनंदनोद्धार प्रबंध प्रस्ताव ५ श्लोक ९७०

आठवाँ अध्याय

आचार्य सिद्धसूरि का शेष जीवन

हमारे चरित नायक राज्य सन्मान से उन्नति करते हुए अपने जीवन को परोपकार के कार्य करते हुए बिताने लगे। वि. सं. १३७९ में देसलशाह पुनः सात संघपति, गुरु और ७२००० यात्रियों सहित सर्व महातीर्थों की यात्रार्थ पधारे थे। पहले की तरह दो यात्राऐं की। इस में ११,००,००० ग्यारह लाख से अधिक रुपये व्यय हुए। उस समय सौराष्ट्र प्रान्त में जैनी लोग म्लेच्छों के अत्याचार से पीड़ित थे उनसे हमारे चरितनायकने प्रतिद्वंद कर जैनियोंको सुरक्षित कर म्लेच्छोंके बंधनोंसे उन्मुक्त किया।

आचार्य श्री सिद्धसूरि अपने आयुष्य के सिर्फ तीन ही महीने अवशेष रहे जान कर देसलशाह को सम्बोधन कर बोले

---

१ पञ्चसप्ततिसङ्ख्येऽब्दे देसलः पुनरप्यथ।
सप्तभिः सङ्घपतिभिरन्वितो गुरुभिः सह॥
महातीर्थेषु सर्वेषु सहस्राद्वितीयेन सः
सार्धं याति करोति स्म द्वियात्रामेष पूर्ववत्॥
व्ययस्तु तत्र यात्रायां लक्षा एकादशाधिकाः।
द्विनवत्या द्रम्मसत्काः स्वयं देसलसाधुना॥
—नाभिनंदनोद्धार प्रबंध प्रस्ताव ५, श्लोक ९७३-७५।

कि आपका आयुष्य भी केवल एक महीने का शेष है। अतः मैं उपकेशपुर (ओसियों) में जाकर स्वयं कक्कसूरि (प्रबंधकार) को मुख्य चतुष्किका समाधी में स्थापित करूँगा। आपकी भी इच्छा हो तो वहाँ शीघ्र चलिये। देवनिर्मित वीर भगवान् का वह तीर्थ अति उत्तम है। सब सामग्री को संग लेकर संघ और देसलशाह आचार्य श्री सिद्धसूरि सहित चले। किन्तु मार्ग ही में देसलशाह का देहावसान हो गया।

आचार्यश्री सिद्धसूरिजीने माघ शुक्ला पूर्णिमा को अपने करकमलों से कक्कसूरि को अपने पद पर स्थापित किया। उसी अवसर पर रत्नमुनि को उपाध्याय पद तथा श्रीकुमार और सोमेन्दु इन दो मुनियों को वाचनाचार्य पद अर्पण किया गया। देसलशाह के साहसी पुत्र सहजपालने अठारह कुटुम्बियों सहित वीर भगवान् का स्नात्र कराया। आचार्य आदि मुनिवर्यों को आहार आदि देकर प्रतिलाभ करते हुए उन्होंने स्वामीवात्सल्य भी किया। यहाँ पर अष्टाह्निकोत्सव सम्पादन कर आचार्यश्रीने फलवृद्धिका (फलोधी) की ओर विहार किया। वहाँ पहुंच कर श्री पार्श्वप्रभु को वंदन कर आचार्यश्री संघ सहित विहार करते हुए वापस पत्तनपुर पधारे।

सिद्धसूरि महाराज की आयुष्य का जब एक मास शेष रहा तो आपश्रीने अपने शिष्यरत्न श्री कक्कसूरि आचार्य को सम्बोधन कर आदेश दिया कि जब मेरे मरने के आठ दिन शेष

रहें तब संघ क्षमणापूर्वक मुझे अनशन करा देना। किन्तु कक्कसूरिने यह समझ कर कि कलिकाल में यह मृत्युज्ञान कब संभव है निश्चित दिन पर अनशन व्रत नहीं दिया। गुरु महाराजने स्वयं दो उपवास किये। इसके बाद संघ के समक्ष अनशन व्रत पच्चक्खाया गया। सहजपाल आदि उदार सुश्रावकोंने इस अवसर पर महोत्सव मनाया। नगरभर के सारे लोग—बूढ़े, जवान और बालक गुरुश्री के दर्शनार्थ आए। उस नगर से पांच योजन दूर तक के सब लोग दर्शनार्थ झुंड के झुंड आने लगे। छ दिनों के बाद बताए हुए समय में सिद्धसूरिजी नमस्कार मंत्र का उच्चारण करते हुए समाधीपूर्वक स्वर्ग सिधारे। सूरीश्वर की ज्ञान की प्रशंसा करते हुए लोगों ने बड़े समारोह से उत्सव मनाया। मुनिलोगों से पूजित सूरीश्वर को ६ दिन में तैयार की हुई २१ मंडपवाली मांडवी (विमान) में स्थापित किया। जगह जगह पर होते हुए रास, दंडीआ, रास प्रेक्षणक और आगे बजते हुए बाजों सहित सूरीश्वर विमान में बैठे हुए साक्षात् देव की तरह देवलोक की यात्रा के लिये नगर में हो कर निकले। स्पर्धापूर्वक स्कंध देते हुए श्रावक विमान को बात ही बात में एक कोस तक ले गये। सिद्धसूरिजी के शरीर का दाह संस्कार केवल चन्दन, काष्ट, अगर, और कर्पूर से किया गया। वि. सं. १३७५ के चैत्र शुक्ला १३ के दिन सूरीश्वर स्वर्ग सिधारे[1]।

---

१ षट्सप्ततिसंयुतेषु त्रयोदशशतेष्वथ।
चैत्रशुद्धत्रयोदश्यां सूरयः स्वर्भुवं ययुः॥
—नाभिनंदनोद्धारप्रबंध प्रस्ताव ५, श्लोक १००४.

नववाँ अध्याय

समरसिंह का शेष जीवन।



द्धसूरि के पश्चात् श्रीकक्कसूरि गच्छ को चला रहे थे। आप के शासन में हजारों साधु साध्वियें और करोड़ों श्रावक आत्मकल्याण कर रहे थे। आप बड़े ही प्रभावशाली और धर्म प्रचारक थे उस समय सार्वभौमिक बादशाह कुतुबुद्दीन के कानों तक समरसिंह की प्रशंसा पहुँची। बादशाहने तुरन्त फरमान लिख कर हमारे चरित नायकजी से मिलने की प्रबल उत्कंठा प्रकट की। जब यह संदेश आप के पास पहुँचा तो चरितनायकजीने आचार्य कक्कसूरिजी के पास आकर अनुमति मांगी। सूरीश्वरजीने भी स्वरोदय ज्ञान से बासक्षेप दिया। इस आशीर्वाद को ग्रहण कर आप बादशाह से भेंट करने के लिये तैयारी कर दिल्ली की ओर पधारे। दिल्ली में पहुँचते ही मीरत्राण (सुलतान)ने समरसिंह को बुला कर दर्शन किये। हमारे चरितनायकजीने बादशाह के सम्मुख भेंटस्वरूप कुछ अमूल्य पदार्थ रख कर नम्रतया नमन किया। उस समय बादशाहने आप को स्नेहभरी दृष्टि से देखा और अपनी चिर

अभिलिषित इच्छा को पूर्ण कर हृदय में परम प्रसन्न हुए। सुलतान की ओर से समरसिंह का अपूर्व स्वागत किया गया। बादशाहने भरी सभा में यह वाक्य कहे कि सर्व व्यवहारियों में समरसिंह का प्रथम स्थान है। इस प्रकार बादशाहने समरसिंह का बहुमान किया। बादशाह के महमान रह कर चरितनायकजीने बहुत से दिन दिल्ली में प्रसन्नता पूर्वक बिताये। एक बार समरसिंह की गुणग्राहकता की प्रशंसा सुन कर एक गवैया उन के सामने उपस्थित हो वार घाव तर्ज की कविता सुनाने लगा। आपने प्रसन्न हो कर उदारता पूर्वक एक सहस्र टंक गवैये को प्रदान कर उसे निहाल किया।

कुतुबुद्दीन और आपश्री में खूब घनिष्ट सम्बन्ध रहा। इस के बाद में कुतुबुद्दीन की राज्यलक्ष्मी के तिलकस्वरूप ग्यासुद्दीन बादशाह हुआ। उस समय उसने अति प्रमोद और उल्लासपूर्वक आपश्री का आदर सम्मान किया। समरसिंह की प्रतिभा का प्रभाव बादशाहपर था जिस का प्रमाण यह है कि खान के यहाँ पाण्डूदेश का राजा वीरवल्ल (बीरबल) बंदी की तरह कैद था। यह सुअवसर पाकर बुद्धिशाली समरसिंहने बादशाह का ध्यान उस ओर आकर्षित किया जिस के परिणामस्वरूप वीरवल्ल जेल से मुक्त हो कर अपने देश को सकुशल प्रसन्नतापूर्वक लौट गया। वहाँ पहुँच कर उसने अपने राज्य को फिर से अपने हाथ में लिया। वह इस उपकार के लिये हमारे चरितनायकजी की चतु-

राई की युक्ति को जन्मभर नहीं भूला। आपश्री के प्रसाद ही से उसे पुनः शासन करने का योग मिला था।

बादशाह से इच्छित फरमान प्राप्त कर हमारे चरितनायकने जिनेश्वर की जन्मभूमि मथुरा और हस्तिनापुर में संघपति हो कर संघ तथा आचार्य[1] श्री के साथ तीर्थयात्रा की थी।

इस के पश्चात् चरितनायकजी तिलंग देश के अधिपति ग़यासुद्दीन के पुत्र उल्लखान के पास भी रहे। उल्लखान भी आपश्री को भाई के सदृश समझता था तथा तदनुरूप ही व्यवहार करता था। उल्लखानने आपश्री की कार्यकुशलता तथा प्रखर बुद्धि को देख कर तिलंग देश के सूबेदार के स्थानपर आपश्री को ही नियत कर दिया। इस पद को पाकर भी समरसिंहने अपने स्वाभाविक उदार गुणों का ही परिचय दिया। तुर्कोने ११,००,००० ग्यारह लाख मनुष्यों को अपने यहाँ कैद कर लिया था। समरसिंहने[2] उन्हें छोड़ दिया। इस प्रकार अनेक राजा, राणा और व्यवहारी भी हमारे चरितनायक की सहायता पाकर निर्भय हुए थे।

चरितनायकजीने सर्व प्रान्तों से अनेक श्रावकों को सकुटुम्ब

---

१ इन आचार्यश्रीने शत्रुंजय, गिरनार और फलौधी आदि तीर्थों को मुसलमानी राज्यकाल में सुरक्षित रखने का आदर्श प्रयत्न किया था।

२ वि० सं० १६३८ में विरचित कवि जयसुन्दरके ग्रंथ श्रीशत्रुंजय तीर्थोद्धारक रास में इस प्रकार उल्लेख है कि–"नवलाख बंधी (दी) बंध काप्या, नवलाख हेम टका तस आप्या; तो देसलहरीयें अन्न चाख्युं, समरशाहे नाम राख्युं" ढाल १० वीं कड़ी १०१ वीं।

बुला कर तिलंग देश में बसाया। उरंगलपुर में जैनियों की काफी बसती होजाने पर आपश्रीने जिनालय आदि बनवा कर जिन शासन के साम्राज्य को एक छत्र किया। प्रभुता पाकर भी आप को मद नहीं हुआ। इस के विपरीत अधिकारों का सदुपयोग करने में आपश्रीने किसी भी प्रकार की कसर नहीं रखी। आपश्री के शुभ और अनुकरणीय कृत्यों से पूर्वजों की महिमा भी चहुँ ओर फैली। जन्म लेने के पश्चात् आपश्रीने प्रतिदिन क्रमशः उन्नति करते हुए अन्त में जिनशासन में चक्रवर्ती सदृश होकर शासन को खूब दिपाया। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जिस के हृदय पर विश्वप्रेमी समरसिंह का अधिकार नहीं हुआ हो। विश्वप्रेम आप के रोम रोम में विद्यमान था। आपश्रीने नीति पूर्वक रक्षण करते हुए तेलंग देश में रामराज्य स्थापित कर दिया। आप कर्ण की तरह दानी और मेघ की तरह सबों के जीवन रक्षक थे। आप की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही है।

इस भूमंडलपर कलिकाल को अपने बुद्धिबलद्वारा सतयुग कर स्वर्ग भी इसी हेतु से सिधारे कि वहाँ भी यही परिवर्तन कर दिया। शत्रुंजय तीर्थ के पहले यद्यपि कई उद्धार हो चुके हैं पर उद्धारक भरतेश्वर के सदृश सब राज–राजेश्वर ही थे परंतु इस विषम काल में आपश्रीने ऐसा अपूर्व कार्य कर दिखाया जिस से वास्तव में अचंभित होना पड़ता है। समरसिंह असाधारण और अलौकिक गुणों से विभूषित थे। ऐसे पुरुष की बराबरी दूसरा कौन कर सकता है?

श्रीविमलाचल मंडन श्रीआदीश्वर जिन के उद्धारक श्रीसमरसिंह के जीवन वृतान्त का इतना पता लगने का श्रेय श्रीकक्कसूरीश्वर को है। जिन के बनाए हुए वि. सं. १३९३ के प्रबंध से समरसिंह के जीवनपर इतना प्रकाश डाला जा सका है। श्रीपुंडरीकगिरि के मुकुटरूप तीर्थनाथ की संस्थापना विधिविधान पूर्वक करानेवाले आचार्य श्रीगुरु चक्रवर्ती श्रीसिद्धसूरि थे जिन के सुयोग्य शिष्यरत्न श्रीकक्कसूरिजीने उपरोक्त प्रबंध कंजरोटपुर में उपरोक्त संवत् में लिखा था। आत्महितार्थी मुनिकलश साधुने भी इस ग्रंथ के लिखने में सहायता दी थी।

बड़े खेद का विषय है कि हमारे चरितनायकजीद्वारा स्थापित हुए आदीश्वर के बिंब को भी कालक्रम में दुष्ट म्लेच्छोंने खंडित कर दिया था। अतः वि. सं. १९८७ में राजकोठारीकुलदिवाकर श्रीकर्माशाहने तीर्थोद्धार करा आचार्य श्रीविद्यामंडनसूरि द्वारा आदीश्वर प्रभु की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करवाई थी। यदि पाठकोंने इस चरित को अपनाया तो श्रीकर्माशाह का जीवन भी शीघ्र ही आप की सेवा में उपस्थित करने का प्रयत्न करूँगा।

पात्रे त्यागी गुणे रागी भोगी परिजनै सह।
शास्त्रे योद्धा रणे योद्धा पुरुषः पंचलक्षणः॥



[परिशिष्ट संख्या १]

ऐतिहासिक प्रमाण

संघपति देसलशाह और हमारे चरितनायक धर्मवीर समरसिंहने अपने गुरुवर्य उपकेशगच्छाचार्य श्री सिद्धसूरि की पूर्ण कृपा से पुनीत तीर्थ शत्रुंजय के पंद्रहवे उद्धार को सफलतया सम्पादन कर अपने मानवजीवन को सफल किया जिसका विस्तृत वर्णन इस ग्रंथद्वारा पाठकों के समक्ष रखा गया है। जिन महापुरुषोंने उपर्युक्त उद्धार को होते हुए अपनी आँखो से प्रत्यक्ष देखा था उनके हस्तकमलों से लिखित "नाभिनंदनोद्धार" और "समरारास" के आधार पर प्रस्तुत वृत्तान्त हिन्दी भाषा में लिखा गया है। अतः यह ग्रंथ ऐतिहासिक कहा जा सकता है। इस विषय में उस समय के तीन शिलालेख श्री शत्रुञ्जय तीर्थ पर की बड़ी टुँक से प्राप्त हुए हैं जिनको स्वर्गस्थ साक्षर चमनलाल दलालने गा० ओ० सीरीज द्वारा प्रकाशित कराया है।

उनमें से एक शिलालेख तो हमारे चरितनायक की कुलदेवी की मूर्त्ति पर है, दूसरा संघपति के वृद्ध भाई आशधर (सपत्नी) की मूर्त्ति पर और तीसरा शिलालेख सिद्धगिरि-मण्डन आदीश्वर भगवान् की मूर्त्ति के लिये अमूल्य पाषाण देनेवाले राणा महीपाल की मूर्त्ति पर है। ये तीनों लेख साहसी

समरसिंह की जीवनी पर विशेष प्रकाश डालते हैं अतः यहाँ आवश्यक समझकर उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

॥ संवत् १३७१ वर्षे माह शुदि १४ सोमे श्रीमदूपकेशवंशे वेसट गोत्रीय सा० सलखण पुत्र सा० आजडतनय सा० गोसल-भार्या गुणमतीकुक्षिसम्भवेन संघपति आसाधरानुजेन सा० लूणसी-हाग्रजेन संघपतिसाधुश्रीदेसलेनपुत्र सा० सहजपाल सा० साहणपाल सा० समर सा० सांगणप्रमुखकुटुंबसमुदायोपेतेन निजकुल देवीश्री-सामंत सा० सच्चिकामूर्त्तिः करिता । यावद् व्योम्नि चन्द्रार्कौ याव-न्मेरुर्महीतले । तावत् श्री सच्चिकामूर्ति.....

(२)

॥ संवत् १३७१ वर्षे माहसुदि १४ सोमे श्रीमद् केशवंशे वेसटगोत्रे सा० सलषणपुत्र सा० आजडतनय सा० गोसलभार्या-गुणमतीकुक्षिसमुत्पन्नेन संघपति सा० आशाधरानुजेन सा० लुण-सीहाग्रजेन संघपतिसाधुश्रीदेसलेन सा० सहजपाल सा० साहण-पाल सा० सामंत सा० समरसीह सा० सांगण सा० सोमप्रभृति-कुटुंबसमुदायोपेतेन वृद्धभ्रातृसंघपतिआसाधरमूर्तिः श्रेष्ठिमाढल-पुत्री संघ० रत्नश्रीमूर्तिसमन्विता कारिता ॥ आसाधरः कल्पतरु .....युगादिदेवं प्रणमति ॥

(३)

॥ संवत् १३७१ वर्षे माह सुदि १४ सोमे.....राणक श्री महीपालदेवमूर्त्तिः संघपति श्रीदेसलेन कारिता श्रीयुगादिदेवचैत्ये ॥

इनके अतिरिक्त एक शिलालेख श्री सिद्धगिरि के उच्च शिखर पर और आज भी दृष्टिगोचर हो रहा है। यह लेख समरसिंह के देहान्त के बाद वि. सं. १४१४ में समरसिंह और उनकी धर्मपत्नीकी मूर्त्ति (युगुल) पर, जो समरसिंह के होनहार पुत्ररत्न सालिग और सज्जनसिंहने करवा के आचार्यश्री कक्क-

---

१ वि० सं० १५१६ चैत्र शुक्ल ८ रविवार को देसलशाह के वंश में शिवशंकर धर्मपत्नी देवलदेने उपकेश गच्छाचार्य कक्कसूरि के उपदेश से वाचनाचार्य वित्तसार को सुवर्णाक्षरों के कल्पसूत्र की प्रति दान दी थी। उस प्रति की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समरसिंह के ६ पुत्र थे। प्रशस्ति के प्रारम्भ में अर्थात् ६ वें श्लोक से १७ वें श्लोक तक इस का वर्णन है। जो ऐतिहासिक रास संग्रह प्रथम भाग के पृष्ट २ से ४ तक है। इस ग्रंथ के संशोधक स्वर्गस्थ जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरीश्वर और प्रकाशक यशोविजय जैन ग्रंथमाला—भावनगर है। श्लोक ये हैं—

तत्पुत्र **नायन्द** इति प्रसिद्धस्तदङ्गज **आजड** इत्युदीर्णः ।
सुलक्षणो लक्षणयुक् क्रमेण गुणालयौ **गोसल–देसलौ** च ॥
श्री **देसलाद् देसल** एव वंशः ख्यातिं प्रपन्नो जगतीतलेऽस्मिन् ।
शत्रुंजये तीर्थवरे विभाति यन्नामस्त्वादि कृतो विहारः ॥
तत्सूनवः साधु गुणैरुपेतास्त्रयोऽपि सद्धर्मपरा बभूवुः ।
तेष्मादिमः श्री **सहजो** विवेकी **कर्पूरधारा** बिरुद प्रसिद्धः ॥

सूरि के पट्टधर देवगुप्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठा करवाई थी, विद्यमान है। जो इस प्रकार है—

तदङ्गभूर्भावविभूषितान्तः **सारङ्ग** साधु प्रथितप्रतापः ।
आजन्म यस्याभवदात्तशोभः **सुवर्णधारा** बिरुद प्रवाहः ॥
श्री **साहणः साहिनृपाधिपानां** सदापि सन्मानपदं बभूव ।
देवालयं **देवगिरौ** जिनानामकारयद् यो गिरिशृङ्गतुङ्गम् ॥
बन्धुस्तृतीयो जगती जनेन सुगीत कीर्तिः **समरः** सुचेताः ।
शत्रुञ्जयोद्धार विधि विधाय जगाम कीर्ति **भरताधिकान्यः** ।
य पारुडुदेशाधिपमोचनेन गतः परांख्यातिमतीव शुद्धाम् ॥
महम्मदे योगिनीपीठनाथे तत्प्रौढतायाः किमु वर्णनं स्यात् ।
सुरत्नकुक्षि **समरश्रिय** सा यहुद्भवाः षट् तनुजा जगत्याम् ।
साल्हाभिधः श्रीसहितो हितज्ञैस्तेष्वादिमोऽपि प्रथितोऽद्वितीयः ॥
देवालयैर्देव-गुरुप्रयोगाद् द्विवाणसंख्यैर्महिमानमाप ।
सत्याभिधः सिद्धगिरौ सुयात्रां विधाय सङ्घाधिपतेर्द्वितीयम् ॥
यो **योगिनीपीठनृपस्य** मान्यः सङ्गरस्त्यागधनस्तृतीयः ।
जीर्णोद्धृतेर्धर्मकरश्चतुर्थः श्री **सालिगः** शूरशिरोमणिश्च ॥
श्री **स्वर्णपालः** सुयशोविशालश्चतुष्कयुग्मप्रमितैरमोघैः ।
सुरालयैः सोऽपि जगाम तीर्थ **शत्रुञ्जय** यात्रिकलोकयुक्तः ॥
स सज्जन **सज्जनसिंह** साधुः **शत्रुञ्जये** तीर्थपदं चकार ।
योद्वयाब्धि संख्ये समये जगत्या जीवस्य हेतुः समभूज्जनानाम् ॥ १७ ॥

उपर्युक्त वि० सं० १३७१ के शिलालेखों में बतलाई हुई समरसिंह की वंशावली और प्रस्तुत प्रशस्ति में दी हुई वंशावली में कुछ अन्तर है तथापि

संवत् १४१४ वर्षे वैशाख शुदी १० गुरौ संघपति देसल-
सूत सा० समरासमर श्रीयुग्मं सा० सालिग सा० सज्जनसिंहाभ्यां
कारितं प्रतिष्ठितं श्रीकक्कसूरिशिष्यैः श्रीदेवगुप्तसूरिभिः ॥ शुभं भवतुः

शिलालेखों की वंशावली ही को अधिक विश्वसनीय इस लिये मानना चाहिये-क्योंकि नाभिनंदनोद्धार प्रबंध में दी हुई वंशावली जो समरसिंह के समकालीन आचार्यद्वारा लिखी गई है शिलालेख की वंशावली से ठीक मिलती है।

प्रशस्ति के अष्टम पद्य से स्पष्ट होता है कि देसलशाह के प्रथम पुत्र सहज "कर्पूरधारा" विरुद से विभूषित थे और इस के आगे के पद्य से यह भासित होता है कि सहज का पुत्र सारंगशाह शुद्ध अंतःकरण वाला सूर्य की तरह विमल गुणों से प्रतापशाली था। इन के लिये "सुवर्णधारा" विरुद जीवन पर्यंत शोभा पा रहा था। दसवें पद्य से ज्ञात होता है कि देसलशाह के दूसरे पुत्ररत्न साहण अपनी प्रखर बुद्धि चातुर्य के लिये सदैव बादशाहों से सम्मानित होते थे। जिन्होंने देवगिरि (दोलताबाद) में पर्वत के शिखर सदृश सुवर्ण के कलश और ध्वजादंड संयुक्त जिनेश्वर भगवान् का भीमकाय मन्दिर बनवा कर धर्म के बीज का वपन किया था। समरसिंह के प्रबंध से मालूम होता है कि सहजाशाहने देवगिरि को ही अपनी निवास भूमि बनाली थी। इस के अतिरिक्त उन्होंने चौबीसों भगवानों के मन्दिर और गुरुवर्य और सच्चिका देवी के लिये भी चैत्य बना लिये थे जिस का उल्लेख हम मूलग्रंथ में पहले ही यथास्थान कर चुके हैं।

प्रशस्ति के ११-१२ वें श्लोक में हमारे चरितनायक साहसी समरसिंह का संक्षिप्त परिचय दिया गया है कि संघपति देसलशाह के तीसरे पुत्र समर-सिंह थे। जिन की धवलकीर्त्ति विश्व में दिवानाथ की रश्मियों की नांई चहुँ ओर प्रस्तारित थी। धर्मवीर एवं दानेश्वरी समरसिंहने अपनी उत्साहपूर्ण कार्य कुशलता ओर बुद्धिबल से उस विकट समय में पुनीत तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय गिरि का उद्धार करा के भरत और सगर जैसे प्रतापी चक्रवर्तियों से भी

श्री सिद्धगिरि की प्रतिष्ठा के समय भिन्न भिन्न गच्छों के आचार्यों का वर्णन आया है। इस सम्बन्ध में कतिपय ऐतिहासिक प्रमाणों का यहाँ उल्लेख कर देना हमारे उपर्युक्त लेख को सिद्ध करने में विशेष पुष्टिकारक होगा।

अधिक कीर्ति को सम्पादित की थी क्योंकि भरत और सागर के समय में तो सारा वातावरण पूर्णतया अनुकूल था ही। बरन् ऐसे विषम काल में उद्धार के कार्य योग्यतापूर्ण सम्पादित कर लेना कोई साधारण युक्ति कार्य का नहीं था। समरसिंहने प्रतिज्ञापूर्ण इस कार्य को कर दिखाया यह समरसिंह की असाधारण योग्यता का स्पष्ट प्रमाण है।

इतना ही नही वरन् योगनीपीठ (देहली) के ऊपर बादशाह महम्मूद की अनुचित सत्ता के कारण पाण्डु देश का अधिपति विवश हो कर कुचेले जा रहा था। हमारे दयाद्रवित चरितनायकने उसे इस दुःख से उन्मुक्त किया। इस से समरसिंह की कीर्ति बहुत फैली। इसी प्रकार के विविध गुणों के आगार समरसिंह की पूर्ण योग्यता को सम्यक् प्रकार से प्रकट करना इस इस्पात की लेखनी की शक्ति के परे की बात है।

प्रशस्ति के १३ वें से १७ वें पद्यों में साधु समरसिंह के पुत्ररत्नों का परिचय करवाते हुए यह बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि चरितनायक की धर्मपत्नी समरसी के सुरत्न कुक्षी से छ पुत्ररत्न उत्पन्न हुए जिन में प्रौढ पुत्र का नाम साल्हशाह। यह इनका जेष्ठ पुत्र था। जिसने विश्व में अनेकानेक चोखे और अनोखे काम करके भरपूर ख्याति उपार्जित की। इस से इन के पिता समरसिंह का यश भी संसार में स्थायी तथा परिवर्द्धित हुआ। अतः साल्हशाह यदि चतुर, दक्ष और श्लाघ्य कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

दूसरे पुत्र का नाम सत्यशाह था जिसने देवगुरु धर्म की उत्कृष्ट भक्ति

सिद्धसूरि

वि. सं. १३७१ में शत्रुंजय के मूलनायक आदीश्वर भगवान् की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करनेवाले उपकेशगच्छ के आचार्य सिद्धसूरि से वि. सं. १३५६ में तथा वि. सं. १३७३ में प्रतिष्ठित

करने में कोई कमी नहीं रखी। वह इसी कार्य में सदैव तत्पर रहता था। गुरुकृपा से यह ऊँचे ऊँचे शिखरवाले २५ देवालय बनवाने में समर्थ हुआ था। इस के अतिरिक्त सिद्धगिरि का संघ भी निकाला जिस से इसने स्वयं और भी कई जगहों की यात्रा की तथा दूसरे लोगों को भी यात्रा करवाकर संघपति की वंश परम्परा से आती हुई पदवी को प्राप्त किया।

तीसरे पुत्रका नाम डूँगरशाह था। जिस की चतुराई से दिल्लीश्वर बादशाह इस से परमप्रसन्न था और बादशाहपर इसका प्रभाव भी कम नहीं था। यही कारण था कि वह कई धर्म कार्य निर्विघ्नतया करने में समर्थ हुआ था।

चतुर्थ पुत्र का नाम सालिगशाह था। इन की वीरता विश्वविख्यात थी अतः आप 'शूरशिरोमणि' नामक विरुद से लोक प्रसिद्ध थे। आप लोक मान्य तो थे ही। नवीन मन्दिर बनवाने की अपेक्षा आपने जीर्णोद्धार के कार्य को करना ही अधिक उचित और उपयोगी समझा अतः आपने यही कार्य अधिकांश में किया।

पंचम पुत्रका नाम स्वर्णपाल था। इन का यश प्रस्तारित और उद्योग प्रशंसनीय था। इन्होंने ४२ जिनालय बना श्रीशत्रुंजय का संघ निकाल तीर्थ यात्रा का लाभ उपार्जन कर विश्वभर में ख्याति प्राप्त की।

छट्ठे पुत्र का नाम सज्जनसिंह था। जो महान् प्रतापी और जिनशासन की अतुल प्रभावना करनेवाले थे। इन्होंने वि० सं० १४२४ में पुनीत तीर्थ

की हुई श्रीशांतिनाथ भगवान् की मूर्त्तियों अनुक्रम से खंभात खारवाडा स्तंभनपार्श्वजिनालय में और बड़ौदे की पीपलागली के चिंतामणि पार्श्वनाथ जिनालय में विद्यमान है (देखो—बुद्धि सागरसूरि संग्रहित जैन प्रतिमा लेख संग्रह भा. २ रा—लेख नं. १०४४,१६६

उपकेशगच्छ के आचार्य ककसूरि द्वारा वि. सं. १३१(?९)९ में प्रतिष्ठित सिद्धसूरि की मूर्त्ति पालणपुर के जिनमन्दिर में विद्यमान है (देखो—साचर जिनविजयजी सम्पादित प्राचीन जैन लेख-

---

शत्रुंजय पर तीर्थपद स्थान प्राप्त किया । आप का लक्ष्य अधिकतर यह था कि साधर्म्मियों की भरसक प्रयत्न से अधिकाधिक सेवा की जाय । साधर्म्मियों की सहायता तो आप खुले दिल से करते ही थे इस के अतिरिक्त जगत के इतर प्राणी भी आप से सहायता समय समय पर प्राप्त करते थे जिस के परिणामस्वरूप आप की सर्वत्र जगत में भूरि भूरि प्रशंसा श्रवणगोचर होती थी ।

इन सहोदरों में से सालिग और सज्जनने वि० सं० १४१४ में अपने मातापिता की युगल मूर्त्तियों की स्थापना सिद्धगिरिपर की जिस के ऊपर का शिलालेख पाठकों के समक्ष उपर रखा जा चुका है ।

डूंगरसिंह की स्त्री दुलहदेवीने वि० सं० १४३२ में आदिनाथ की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी जिस का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है ।

वि० सं० १६८७ में डीसा में तपागच्छीय कविवर गुणविजयजी विरचित कोचर व्यवहारिया का रास में उल्लेख है कि समरसिंह के बाद उन के पुत्र सज्जनसिंहने खंभात में रह कर बादशाह से अच्छा सम्मान प्राप्त किया था। और कोचरशाहने जिस प्रकार जीवदया के विषय में इनकी सहायता की थी वह भी स्पष्टतया उस रासमें प्रकट है ।

संग्रह भाग २ रा लेख नं ५९३) यह मूर्त्ति उपर्युक्त सिद्धसूरि की ही होने का अनुमान है ।

ककसूरि

वि. सं. १३८३ में उपर्युक्त नाभिनंदनोद्धार प्रबंध के रचयिता ककसूरिद्वारा प्रतिष्ठित जिन प्रतिमाऐं:—

वि. सं १३७८ में प्रतिष्ठा कराई हुई आदिनाथ की मूर्त्ति अर्बुदगिरि पर ' विमल वसही ' में विद्यमान है । (देखो—जिन-विजय० लेख० भाग २ रा लेख नं. ३१२)

वि. सं. १३८० में प्रतिष्ठित देसलशाह के संतानवालों से कराया हुआ चतुर्विंशतिपट्ट खंभात के श्री चिंतामणिजी पार्श्वनाथ भगवान् के मन्दिर में विद्यमान है । (देखो बुद्धि० ले० भाग २ रा लेख नं. ५३१)

वि. सं. १३८० में प्रतिष्ठित शांतिनाथ बिंब पेथापुर के बावन जिनालय में मौजूद है (देखो बुद्धि० भाग २ रा लेख नं. ७११—७०६ पुनरावृत्ति है)

वि. सं. १३८७ में प्रतिष्ठित अजितनाथ बिंब बड़ौदे में जानीगली में चंद्रप्रभ जिनालय में है । (बुद्धि० ले० भाग २ रा ले० नं. १४३)

वि. सं. १४०० में प्रतिष्ठित देसलशाह के पुत्र सहजपाल की धर्मपत्नी नयणदेवी का कराया हुआ समवसरण खंभात,

मारवाड़े में सीमंधरस्वामी के जिनालय में है। (बुद्धि० भाग २ रा ले० नं० १०७६)

वि. सं. १४०१ में प्रतिष्ठित शांतिजिन बिंब बालोतरा (मारवाड़) में शीतलनाथजी के मन्दिर में है (देखो--पूरणचन्द्रजी नाहर के लेखसंग्रह के लेख नं० ७२९)

वि. सं. १४०५ में प्रतिष्ठित ऋषभजिन बिंब जयपुर के बेपारी के पास है (देखोः-- पूरणन्द्रजी नाहर के लेख संग्रहके लेख ० नं० ४००)

देवगुप्त सूरि

प्रस्तुत आचार्य कक्कसूरि के शिष्य देवगुप्तसूरिद्वारा वि. सं. १४१४, १४२२, १४३२, १४३९, १४५२, १४६८ और १४७१ में प्रतिष्ठित जिन-मूर्त्तियों देखने में आती हैं। इन में से सं. १४१४ का लेख ऊपर दिखाया गया है। सं. १४३२ में प्रतिष्ठित आदिनाथ भगवान् की मूर्त्ति हमारे चरितनायक के पुत्र डूँगरसिंह की भार्या दुलहदेवीने साधु समरसिंह के श्रेय के अर्थ बनवाई थी। (बुद्धि० भाग २ ले० नं. ६३९)

वि. सं. १४५२ में प्रतिष्ठित संघद्वारा कराई हुई उपर्युक्त आचार्य कक्कसूरि की पाषाणमयी मूर्त्ति पाटण में पंचासरा पार्श्वनाथस्वामी के मन्दिर के एक गवाक्ष में है। (जिन वि० भा० २ रा ले० नं० ५१६)

वि. सं. १४६८ में प्रतिष्ठित आदिनाथ प्रमुख चतुर्विंशति

पट्ट हमारे चरितनायक के पुत्र सगरने अपने मातापिता के श्रेय के अर्थ करवाई थी जो इस समय खंभात के चिंतामणि पार्श्वनाथ जिनालय में विद्यमान है (देखो—बुद्धि० भा. २ रा ले. नं. ५६०)

भिन्न भिन्न गच्छों के आचार्य

वि. सं. १३७१ में शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार यात्रा प्रतिष्ठा के प्रसंगपर देसलशाह के संघ में एकत्र हुए भिन्न भिन्न आचार्यों के नामों का उल्लेख प्रबंधकार कक्कसूरिने किया है जिनमें से:—

पासड़ (पार्श्वदत्त) सूरि

" समरारास " के रचयिता निवृत्तिगच्छ के अंब (आम्र) देवसूरि की प्रतिष्ठित मूर्त्तियों आदि के लेखों का उल्लेख अभी तक कहीं देखने में नहीं आया है। किन्तु उनके गुरु पासड़सूरि द्वारा वि० सं० १३३० में प्रतिष्ठित आदिनाथ की मूर्त्ति वीजापुर में पद्मावती के मन्दिर में मौजूद है (वीजापुर वृतान्त और बुद्धि-सागर भाग १ लेख नं० ४१६)

निवृत्तिगच्छ के इन्हीं पासड़ (पार्श्वदत्त) सूरिद्वारा वि. सं. १३८(!४)८ में प्रतिष्ठित पद्मप्रभ बिंब बड़ौदे में मनमोहन पार्श्व-नाथस्वामी के मन्दिर में स्थित है। (इसका उल्लेख बुद्धि० भाग० २ रा लेख नं. ८१ में हुआ है।)

विनयचन्द्रसूरि

वि. सं. १३७३ में शुभचन्द्रसूरिद्वारा प्रतिष्ठित की हुई

सैद्धान्तिक श्रीविनयचन्द्रसूरि की मूर्त्ति पाटण में वासुपूज्य जिनालय में है। (जिन वि० भाग २ रा लेख सं० ५२८)

प्रद्मचन्द्रसूरि

बृहद्गच्छ के पद्मचन्द्रसूरिद्वारा वि. सं. १३९६ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ जिनबिंब खंभात में चोकसी की पोलमें चिंतामणि पार्श्व जिनालय में विद्यमान है। (बुद्धि० भाग २ लेख नं० ८०३) प्रबंधकारने देवसूरिगच्छ के पद्मचंद्रसूरि बताए हैं, वे कदाचित् यही आचार्य हो।

सुमतिसूरि

संडेरगच्छ के सुमतिसूरिद्वारा वि. सं. १३९० में प्रतिष्ठित कराई हुई श्रीअजितनाथ प्रभु की मूर्त्ति दिल्ली में लाला हजारीमलजी के घर देवालय में है। एवं वि. सं. १३७९ में प्रतिष्ठित मूर्त्ति बनारस के रामघाट पर आए हुए " कुशलाजी का बड़ा मन्दिर" के नाम से जो स्थान प्रसिद्ध है उसमें विद्यमान है। (पूर्ण० नाहर ले० संख्या ९१९, ४१९)

वीरसूरि

भावडारगच्छ के वीरसूरिद्वारा वि. सं. १३६३ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथबिंब बड़ौदे में दादा पार्श्वनाथजी के मन्दिर में है। (बुद्धि० भाग २ रा ले० संख्या १३२)

सर्वदेवसूरि

थारापद्रगच्छ के शांतिसूरि के शिष्यरत्न इन सर्वदेवसूरिद्वारा

वि. सं. १३९६ में प्रतिष्ठित हुई सुपार्श्वनाथ भगवान् की मूर्त्ति वीरमगाम के अजित जिनालय में स्थित है। (बुद्धि० भाग १ लेख संख्या १४९३)

सिद्धसेनसूरि

नाणकीयगच्छ के सिद्धसेनसूरिद्वारा वि. सं. १३१ (!७)३ में प्रतिष्ठित शांतिनाथ भगवान् का बिम्ब दरापरा जिनमन्दिर में है। (बुद्धि० भाग २ रा लेख संख्या २९)

जज्जग (जगत्) सूरि

ब्रह्माणगच्छ के जज्जग (क) सूरिद्वारा वि. सं. १३३० में प्रतिष्ठित हुए बिम्ब सलखणपुर, संखेश्वर और पाटण के जिन मन्दिरों में हैं। (जिन वि० भाग २ लेख संख्या ४७०, ४८०, ४९०, ४९७, ५११८ और ५१९) एवं वि. सं. १३४९ में प्रतिष्ठित नेमीश्वर बिंब और पं. रत्नकी मूर्त्ति सलखणपुर और पाटण में पंचासरा पार्श्वनाथ जिनमन्दिर में मौजूद हैं। (जिन वि० भाग २ रा लेख संख्या ४७३, ५०९) और वि. सं. १३८२ में प्रतिष्ठित श्रीशांतिनाथ जिनबिंब खंभातमें नवपल्लव पार्श्व जिनालय में है। (बुद्धि० भाग २ लेख संख्या १०९३ इन जज्जगसूरि को प्रबंधकारने जगत्सूरि के नाम से लिखा है।

[उपसंहार]—संघपति देसलशाह और उन के प्रतापी वीरवर पुत्ररत्न समरसिंहने जिनशासन की तन—मन—धन से खूब सेवा की। इनके वंशज भी बाद में ऐसे ही धर्म--प्रेमी और व्रत-

नेमी हुए जिन्होंने अपने पूर्वजों के कमाए हुए यश को विशेष परिवर्द्धित किया। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रारम्भ का इस परिशिष्ट के फुटनोटों में दिया गया है। इस सम्बन्ध में ऐसे कई लेख इस समय और भी प्राप्त हो चुके हैं जिन में हमारे चरितनायक के वंशजों का वर्णन विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक का मिलता है। यदि इस विषय में कुछ और गवेषणा की जाय तो अवश्य कुछ और विशेष वर्णन प्राप्त हो सकता है।

परिशिष्ट सं. २

वि० सं० १३७१ में निवृति गच्छीय आम्रदेवसूरि विरचित–



पहिलउ पणमिउ देव आदीसरु सेत्तुजासिहरे ।
अनु अरिहंत सव्वे वि आराहउं बहुभत्तिभरे ॥ १ ॥
तउ सरसति सुमरेवि सारयससहरनिम्मलीय ।
जसु पयकमलपसाय मूरुषु माणइ मन रलिय ॥ २ ॥
संघपति देसलपूत्रु भणिसु चरिउ समरातणउ ए ।
धम्मिय रोलु निवारि निसुणउ श्रवणि सुहावणउ ए ॥ ३ ॥
भरह सगर दुइ भूप चक्रवति त हूअ अतुलबल ।
पंडव पुहविप्रचंड तीरथु उधरइ अतिसबल ॥ ४ ॥
जावडतणउ संजोगु हूअउं सु दूसम तव उदए ।
समइ भलेरइ सोइ मंत्रि बाहडदेउ ऊपजए ॥ ५ ॥
हिव पुण नवी य ज वात जिणि दीहाडइ दोहिलए ।
खत्तिय खग्गु न लिंति साहसियह साहसु गलए ॥ ६ ॥
तिणि दिणि दिनु दिरखाउ समरसीहि जिणधम्मवाणि ।
तसु गुण करउं उद्योउ जिम अंधारइ फटिकमणि ॥ ७ ॥
साराणि अमियतणी य जिणि वहावी मरुमंडलिहिं ।
किउ कृतजुगअवतारु कलिजुगि जीतउ बाहुबले ॥ ८ ॥

ओसवालकुलि चंदु उदयउ एउ समानु नही ।
कलिजुगि कालइ पाखि चांद्रिणउं सचराचरिहिं ॥ ९ ॥
पान्हणपुरु सुप्रसीधु पुन्नवंतलोयह निलउ ।
सोहइ पान्हविहारु पासभुवणु तहि पुरतिलउ ॥ १० ॥

प्रथम भास

हाट चहुटा रूअडा ए मढमंदिरह निवेसु त ।
वाविकूवआरामघण घरपुरसरसपएस त ।
उवएसगच्छह मंडणउ ए गुरु रयणप्पहसूरि त ।
धम्मु प्रकासइं तहि नयरे पाउ पणासइ दूरि त ॥ १ ॥
तसु पटलच्छीसिरिमउडो गणहरु जक्खदेवसूरि त ।
हंसवेसि जसु जसु रमए सुरसरीयजलपूरि त ॥ २ ॥
तसु पयकमलमरालुलउ ए कक्कसूरि मुनिराउ त ।
ध्यानधनुषि जिणि भंजियउ ए मयणमल्ल भडिवाउ त ॥ ३ ॥
सिद्धसूरि तसु सीसवरो किम वन्नउं इकजीह त ।
जसु घणदेसण सलहिजए दुहियलोयवप्पीह त ॥ ४ ॥
तसु सीहासणि सोहई ए देवगुप्तसूरि बईठु त ।
उदयाचलि जिम सहसकरो ऊगमनउ जिण दीठु त ॥ ५ ॥
तिह पहुपाटअलंकरणु गच्छभारधोरेउ त ।
राजु करइ संजमतणउ ए सिद्धिसूरिगुरु एहु त ॥ ६ ॥
जोइ जसु वाणीकामधेनु सिद्धंतवनि विचरेउ त ।
सावइजणमणइच्छिय घण लीलइ सफल करेउ त ॥ ७ ॥

उवएसवंसि वेसटह कुलि सपुरिसतणउ अवतारु त ।
वयरागरि कउतिगु किमउ ए नही य ज रतनह पारु त ॥८॥
पुन्नपुरुषु ऊपन्नु तहिं सलषणु गुणिहि गंभीरु त ।
जणआणंदणु नंदणु तसो आजडु जिणधमधीरु त ॥ ९ ॥
गोत्रउदयकरु अवयारिउ ए तसु पुत्रु गोसलुसाहु त ।
तसु गेहिणि गुणवंत भली य आगाहइ नियनाहु त ॥ १० ॥
संघपति आसधरु देसलु लूणउ तिणि जन्मा संसारि त ।
रतनसिरि भोली लाछिलु भणउं तीहलणी य घरनारि त ॥११॥
देसलघरि [illegible]च्छी य निसुणि भोली भोलिमसार त ।
दानि सीलि लूणाघरणि लाछि भली सुविचार त ॥ १२ ॥

द्वितीय भाषा

रतनकुषि कुलि निम्मली [illegible] भोलीपुत्तु जावा ।
सहजउ साहणु समरसीहु बहुपुन्निहि आवा ॥ १ ॥
लहूअलगइ सुविचारचतुर सुविवेक सुजाण ।
रत्नपरीक्षा रंजवइ राय अनु राण ॥ २ ॥
तउ देसल नियकुलपईव ए पुत्र लधन्न ।
रूपवंत अनु सीलवंत परिणाविय कन्न ॥ ३ ॥
गोसलसुति आवासु कियउ अणाहिलपुरनयरे ।
पुन्न लहइ जिम रयणलाहि नर समुद्रह लहरे ॥ ४ ॥
चउरासी जिणि चउहटा वरवसहि विहार ।
मढ मंदिर उत्तंग चंग अनु पोलि पगार ॥ ५ ॥

तहिं अछइ भूपतिहिं भुवण सतखणिहि पसत्थो ।
विश्वकर्मा विज्ञानि करिउ धोइउ नियहत्थो ॥ ६ ॥
अमियसरोवरु सहसलिंगु इकु धरणिहिं कुंडलु ।
कित्तिपंभु किरि अवररेसि मागइ आखंडलु ॥ ७ ॥
अज्ज वि दीसइ जत्थ धम्मु कलिकालि अगंजिउ ।
आचारिहिं इह नयरतणइ सचराचरु रंजिउ ॥ ८ ॥
पातसाहि सुरताणभीवु तहिं राजु करेई ।
अलपखानु हींदूअह लोय घणु मानु जु देई ॥ ९ ॥
साहु रायदेसलह पूतु तसु सेवइ पाय ।
कला करी रंजविउ खानु बहु देइ पसाय ॥ १० ॥
मीरि मलिकि मानियइ समरु समरथु पभणीजइ ।
परउवयारियमाहि लीह जसु पहिली य दीजइ ॥ ११ ॥
जेठसहोदरि सहजपालि निज प्रगटिउ सहजू ।
दक्षणमंडलि देवगिरिहि किउ धम्मह वणिजू ॥ १२ ॥
चउवीसजिणालय जिणु ठविउ सिरिपासजिणिंदो ।
धम्मधुरंधरु रोपियउ धर धरमह कंदो ॥ १३ ॥
साहणु रहियउ षंभनयरि सागरगंभीरे ।
पुव्वपुरिसकीरितितरंडु पूरइ परतीरे ॥ १४ ॥

तृतीयभाषा

निसुणऊ ए समइप्रभावि तीरथरायह गंजणउ ए ।
भवियह ए करुणारावि नीठुरमनु मोहि पडिउ ए ।

समरऊ ए साहसधीरु वाहविलग्गउ बहू अ जण ।
बोलई ए असमवीरू दूसमु जीपइ राउतवट ए ॥ १ ॥

अभिग्रहू ए लियइ अविलंबु जीवियजुव्वणबाहबलि ।
उधरऊ ए आदिजिणाबिंबु नेमु न मेन्हउ आपणउ ए ।
मेटिऊ ए तउ षानषानु सिरु धूणइ गुणि रंजियउ ए ॥ २ ॥

वीनती ए लागु लउ वानु पूछए पहुता केण कज्जे ।
सामिय ए निसुणि अडदासि आसालंबणु अम्हतणउ ए ।
भइली ए दुनिय निरास ह ज भागी य हींदूअतणी ए ।
सामिय ए सोमनयणेहिं देषिउ समरा देइ मानु ॥ ३ ॥

आपिऊ ए सव्ववयणेहिं फुरमाणु तीरथमाडिवा ए ।
आहिदर ए मलिकआएसि दीन्ह ले श्रीमुखि आपण ए ।
षतमत ए षानपएसि किउ रलियाइतु घरि संपत्तो ।
पणमई ए जिणहरि राउ समणसंघो तहि वीनविउ ए ॥ ४॥

संघिहि ए कियउ पसाउ बुद्धि विमासिय बहूयपरे ।
सासण ए वर सिणगारु वस्तपालो तेजपालो मंत्रे ।
दरिसण ए छह दातारु जिणधर्मनयण बे निम्मला ए ।
आइसी ए रायसुरताण तिणि आणीय फलही य पवर ॥ ५ ॥

दूसम ए तणी य पुणु आण अवसरो कोइ नही तसुतणउ ए ।
इह जुग ए नही य वीसासु मनुमात्रे इय किम छरए ।
तउ तुहु ए पुन्नप्रकासु करि ऊधरि जिणवरधरमु ॥ ६ ॥

चतुर्थभाषा

संघपतिदेसलु हरषियउ अति धरमि सचेतो ।
पणमइ सिधसुरिपयकमलो समरागरसहितो ।
वीनती अम्हतणी प्रभो अवधारउ एक ।
तुम्ह पसाइ सफल किया अम्हि मनोरहनेक ॥ १ ॥
सेत्तुजतीरथ ऊधरिवा ऊपन्नउ भावो ।
एकु तपोधनु आपणउ तुम्हि दियउ सहाउ ।
मदनु पंडितु आइसु लहवि आरासणि पहुचइ ।
सुगुरवयणु मनमाहि धरिउ गाढउ अति रूचइ ॥ २ ॥
राणेरा तहि राजु करइ महिपालदेउ राणउ ।
जीवदया जगि जाणिजए जो वीरु सपराणउ ।
पालउ नामिहि मंत्रीवरो तसुनणइ सुरजे ।
चंद्रकन्हइ चकोरु जिसउ सारइ बहुकजे ॥ ३ ॥
राणउ रहियउ आपुणपई वाणिहि उपकंठे ।
टंकिय वाहइ सूत्रहार भांजइ घणगंठे ।
फलही आणिय समरवीरि ए अतिबहुजयणा ।
समुद्र विरोलिउ वासुगिहिं जिम लाधा रयणा ॥ ४ ॥
कूआरसि उछवु हूअउ त्रिसींगमइनइरे ।
फलही देपिउ धामियह रंगु माइ न सइरे ।
अभयदानि आगलउ करुणारसचित्तो ।
गोत्ति मेन्हावइ पइरालुअह आपइ बहुवित्तो ॥ ५ ॥

भांडू आव्या भाउघणउ भवियायण पूजइ ।
जिम जिम फलही पूजिजए तिम तिम कलि धूजइ ।
खेला नाचइ नवलपरे घाघरिरवु झमकइ ।
अचरिउ देखिउ धामियह कह चित्तु न चमकइ ॥ ६ ॥

पालीताणइ नयरि संघु फलही य वधावइ ।
बालचंद्रमुनि वेगि पवरु कमठाउ करावइ ।
किं कप्पूरिहि घडीय देह षीरसायरसारिहि ॥ ७ ॥

सामियमूरति प्रकट थिय कृप करिउ संसारे ।
मागी दीन्ह वधावणी य मनि हरषु न माए ।
देसलऊत्रह चरित्रि सहू रलियातु थाए ॥ ८ ॥

पञ्चमी भाषा

संघु बहुभत्तिहिं पाटि बयसारिउ ।
लगनु गणिउ गणधरिहिं विचारिउ ।
पोसहसाल खमासण देयए ।
सूरिसेयंबर मुनि सवि संमहे ए ॥ १ ॥

घरि बयसवि करी के वि मन्नाविया ।
के वि धम्मिय हरासि धम्मिय धाइया ।
बहुदिसि पाठविय कुंकुमपत्रिया ।
संघु मिलइ बहुभली य सज्जाइया ॥ २ ॥

सुहगुरुसिधसुरिवासि अहिसिंचिउ ।
संघपति कल्पतरु अमिय जिम सिंचिउ ।

कुलदेवत सचिया वि भुजि अवतरइ ।
सूहव सेस भरइं तिलकु मंगलु करइं ॥ ३ ॥

पोस वदि सातमि दिवासि सुमुहुत्तिहिं ।
आदिजिणु देवालए ठविउ सुहचित्तिहिं ।
धम्मधोरी य धुरि धवल दुइ जुत्तया ।
कुंकुमपिंजरि कामधेनुपुत्तया ॥ ४ ॥

इंदु जिम जयरथि चडिउ संचारए ।
सूहवसिरि सालिथालु निहालए ।
जा किउ हयवरो वसहु रासिउ हूउ ।
कहइ महासिधि सकुनु इहु लद्धउ ।
आगलि मुनिवरसंघु सावयजणा ।
तिलु न पिरइ तिम मिलिय लोय घणा ॥ ५ ॥

मादलवंसविणाझुणि वज्जए ।
गुहिरभेरीयरवि अंबरो गज्जए ।
नवयपाटणि नवउ रंगु अवतारिउ ।
सुपिहि देवालउ संखारी संचारिउ ॥ ६ ॥

घरि बयसवि करि के वि समाहिया ।
समरगुणि रंजिउ विरलउ रहियउ ।
जयतु कान्हु दुइ संघपति चालिया ।
हरिपालो लंडुको महाधर दृढ थिया ॥ ७ ॥

षष्ठी भाषा

वाजिय संख असंख नादि काहल दुडुदुडिया ।
घोडे चडइ सल्लारसार राउत सींगडिया ।
तउ देवालउ जोत्रि वेगि घाघरिरवु झमकइ ।
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ॥ १ ॥
सिजवाला घर घडहडइ वाहिणि बहुवेगि ।
धरणि धडक्कइ रजु ऊडए नवि सूझइ मागो ।
हय हींसइ आरसइ करह वेगि वहइ बइल्ल ।
साद किया थाहरइ अवरु नवि देई बुल्ल ॥ २ ॥
निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु ।
पावलपारु न पामियए वेगि वहइ सुखासण ।
आगेवाणिहि संचरए संघपति साहुदेसलु ।
बुद्धिवंतु बहुपुंनिवंतु परिकमिहिं सुनिश्चलु ॥ ३ ॥
पाछेवाणिहि सोमसीहु साहुसहजापूतो ।
सागणुसाहु लूणिगह पूतु सोमजिनिजुत्तो ।
जोड करी असवारमाहि आपणि समरागरु ।
चडीय हींड चहुगमे जोइ जो संघअसुहकरु ॥ ४ ॥
सेरीसे पूजियउ पासु कलिकालिहिं सकलो ।
सिरषेजि थाइउ धवलकए संघु आविउ सयलो ।
धंधूकउ अतिक्रमिउ ताम लोलियाणइ पहुतो ।
नेमिभुवणि उछवु करिउ पिपलालीय पत्तो ॥ ५ ॥

सप्तमी भाषा

संघिहिं चउरा दीन्हा तहिं नयरपरिसरे ।
अलजउ अंगि न माए दीठउ विमलगिरे ।
पूजिउ परवतराउ पणमिउ बहुभत्तिहिं ।
देसलु देयए दाणे मागणजणपंतिहिं ॥ १ ॥

आजियजिणिंदजुहारो मनरंगि करेवि ।
पणमइ सेत्रुजसिहरो सामिउ सुमरेवि ॥ २ ॥

पालीताणइ नयरे संघ भयलि प्रवेसु ।
ललितसरोवरतीरे किउ संघनिवेसु ।
कज्जसहाय लहुभाय लहु आवियउ मिलेवि ॥ ३ ॥

सहजउ साहणु तीहि त्रिन्हइ गंगप्रवाह ।
पासु अनइ जिण वीरो वंदिउ सरतीरिहिं ।
पंपि करइ जलकेलि सरु भरिउ बहुनीरिहिं ॥ ४ ॥

सेत्रुजसिहरि चडेवि संघु सामि ऊमाहिउ ।
सुललितजिणगुणगीते जणदेहु रोमंचिउ ।
सीयलो वायए वाओ भवदाहु ओल्हावए ।
माडीय नमिय मरुदेवि संतिभुवणि संघु जाए ॥ ५ ॥

जिणविंबइ पूजेवी कवाडिजक्खु जुहारए ।
अणुपमसरतडि होई पहुता सीहदुवारे ।
तोरणतलि वरसंते धणदाणि संघपत्ते ।
भेटिउ आदिजगनाहो मंडिउ पत्रीठमहल्लवो ॥ ६ ॥

अष्टमी भाषा

चलउ चलउ सहियडे सेत्रुंजि चडिय ए ।
आदिजिणपत्रीठ अम्हि जोइसउं ए ।
माहसुदि चउदसि दूरदेसंतर संघ मिलिया तहिं अति अवाह ॥१॥
माणिके मोतिए चउकु सुर पूरइ रतनमइ वेहि सोवन जवारा ।
अशोकवृक्ष अनु आम्र पल्लवदलिहि रितुपते रचियले तोरणमाला ।२।
देवकन्या मिलिय धवलमंगल दियइ किंनर गायहि जगतगुरो ।
लगनमहूरतु सुरगुरो साधए पत्रीठ करइ सिधसूरिगुरो ॥३॥
भुवनपतिव्यंतरजोतिसुर जयउ जयउ करइ समरि रोपिउ
द्रिढ धरमकंदो ।
दुंदुहि वाजिय देवलोकि तिहुअणु सीचिउ अमियरसे ॥ ४ ॥
देउ महाधज देसलो संघपते ईकोतरु कुल ऊधरए ।
सिहरि चडिउ रंगि रूपि सोवनि धनि वीरि रतनि वृष्टि
विरचियले ॥ ५ ॥
रूपमय चमर दुइ छत्त मेघाडंबर चामरजुयल अनु दिअदुनि ।
आदिजिणु पूजिउ सहलकंतिहिं कुसुम जिम कनकमयआभरण ।६।
आरतिउ धरियले भावलभत्तारिहिं पुन्नपुरिस सग्गि रंजियले ।
दानमंडपि थिउ समर सिरिहि वरो सोवनसिणगार दियइ
याचकजन ॥ ७ ॥
भत्ति पाणी य वरमुनि प्रतिलाभिय अचारिउ वाहइ दुहियदीख ।
वाविउ सुधम वितु सिद्धखेत्रि इंद्रउच्छवु करि ऊतरए ॥ ८ ॥

भोलीयनंदणु भलइ महोत्सवि आविउ समरु आवासि गनि ।
तेरइकहत्तरइ तीरथउद्धारु यउ नंदउ जाव रविससि गयणि ॥९॥

नवमी भाषा

संघवाछलु करी चीरि भले मान्हंतडे पूजिय दरिसण पाय ।
सुणि सुंदरे पूजिय दरिसण पाय ।
सोरठदेस संघु संचरिउ मा० चउंडे रयणि विहाइ ॥ १ ॥
आदिभक्तु अमरेलीयह मान्हं० आविउ देसलजाउ ।
अलवेसरु अल जवि मिलए मान्हं० मंडलिकु सोरठराउ ॥२॥
ठामि ठामि उच्छव हुअइ मान्हं० गढि जूनइ संपत्तु ।
महिपालदेउ राउलु आवए मान्हं० सामुहउ संघअणुरत्तु ॥३॥
महिषु समरुबिउ मिलिय सोहइं मान्हं० इंदु किरि अनइ गोविंदु
तेजि अगंजिउ तेजलपुरे मा० पूरिउ संघआणंदु । सुणि० ॥४॥
वउणथलीचेत्रप्रवाडि करे मान्हं० तलहटी य गढमाहि ।
ऊजिलऊपरि चालिया ए मान्हं० चउव्विहसंघहमाहि । सुणि० ।
दामोदरु हरि पंचमउ मान्हं० कालमेघो क्षेत्रपालु । सुणि० ।
सुवनरेहा नदी तहिं बहए मान्हं० तरुवरतणउं झमालु ॥ ५ ॥
पाज चडंता धामियह मा० क्रमि क्रमि सुकृत विलसंति । सुणि० ।
ऊची य चडियए गिरिकडाणि मा० नीची य गति षोडंति ॥६॥
पामिउ जादवरायभुवणु मा० त्रिनि प्रदक्षिण देइ ।
सिवदेविसुतु भेटिउ करिउ मा० ऊतरिया मढमाहि । सुणि० ।

कलस भरेविणु गयंदमए मा० नेमिहिं न्हवणु करेइ ।
पूज महाधज देउ करिउ मा० छत्र चमर मेल्हेइ ॥ ७ ॥

अंबाई अवलोयणसिहरे मा० सांबिपज्जूनि चडंति । सुणि० ।
सहसारामु मनोहरु ए मा० विहसिय सवि वणराइ । सुणि० ।
कोइलसादु सुहावणउ ए मा० निसुणियइ भमरझंकारु । सुणि० ८

नेमिकुमरतपोवनु ए मा० दुट्ठ जिय ठाउं न लहंति । सुणि० ।
इसइ तीरथि तिहुयणदुलभे मा० निसिदिनु दानु दियंति ॥९॥

समुदविजयरायकुलतिलय मा० वीनतडी अवधारि । सुणि० ।
आरतीमिसि भवियण भणइं मा० चतुगतिफेरडउ वारि । सुणि० १०

जइ जगु एकु मुहु जोइयए मा० त्रिपति न पामियइ तोइ । सुणि० ।
सामलधीर तउं सार करे मा० वलि वलि दरिसणु देजि । सुणि० ११

रलीयरेवयगिरि ऊतरिउ ए मा० समरडो पुरुषप्रधानु ।
घोडउ सीकिरि सांकलिय मा० राउलु दियइ बहुमानु । सुणि० १२

दशमी भाषा

रितु अवतरिउ तहि जि वसंतो सुरहिकुसुमपरिमल पूरंतो
समरह वाजिय विजयढक्क ।
सागुसेलुसल्लइसच्छाया केसूयकुडयकयंबनिकाया
संघसेनु गिरिमाहइ वहए ।
बालीय पूछइं तरुवरनाम वाटइ आवइं नव नव गाम
नयनीझरणरमाउलइं ॥ १ ॥

देवपटणि देवालउ आवइ संघह सरवो सरु पूरावइ
अपूरवपरि जहिं एक हुईअ ।
तहिं आवइ सोमेसरछत्तो गउरवकारणि गरुउ पहूतो
आपणि राणउ मूधराजो ॥ २ ॥
पान फूल कापड बहु दीजइं लूणसमउं कपूर गणीजइ
जबाधिहिं सिरु लिंपियए ।
ताल तिविल तरविरियां वाजइं ठामि ठामि थाकणा करीजइं
पगि पगि पाउल पेषण ए ॥ ३ ॥
माणुस माणुसि हियउं दलिजइ घोडे वाहिणिगाहु करीजइ
हयगय सूझइ नवि जणह ।
दरिसणसउं देवालउ चल्लइ जिणसासणु जगि रंगिहिं मल्हइ
जगतिहिं आव्या सिवभुवणि ॥ ४ ॥
देवसोमेसरदरिसणु करेवी कवाडिवारि जलनिहिं जोएवी
प्रियमेलइ संघु ऊतरिउ ।
पहुचंदप्पहपय पणमेवी कुसुमकरंडे पूज रएवी
जिणभुवणे उच्छवु कियउ ॥ ५ ॥
सिवदेउलि महाधज दीधी सेले पंचे वन्नसमिद्धी
अपूरवु उच्छवु कारविउ ।
जिनवरधरमि प्रभावन कीधी जयतपताका रवितलि बद्धी
दीनु पयाणउं दीवभणी ।
कोडिनारिनिवासणदेवी अंबिक अंबारामि नमेवी
दीवि वेलाउलि आवियउ ए ॥ ६ ॥

एकादशी भाषा.

संघु रयणायरतीरि गहगहए गुहिरगंभीरगुणि ।
आविउ दीवनरिंदु सामुहउ ए संघपतिसद्दु सुणि ॥ १ ॥
हरषिउ हरपालु चीति पहुतउ ए संघु मोलविकरे ।
पमणइं दीवह नारि संघह ए जोअण ऊतावली ए ।
आउलां वाहिन वाहि वेगुलइ ए चलावि प्रिय बेडुली ए ॥ २ ॥
किसउ सुपुन्नपुरिषु जोइउ ए नयणुलां सफल करउ ।
निवछणा नेत्रि करेसु ऊतारिसू ए कपूरि ऊआरणा ए ।
बेडीय बेडीय जोडि बलियऊ ए कीधउं बंधियारो ॥ ३ ॥
लेउ देवालउमाहि बइठउ ए संघपति संघसहिउ ।
लहरि लागइं आगासि प्रवहणु ए जाइ विमान जिम ।
जलवटनाटकु जोइ नवरंग ए रास लउडारस ए ॥ ४ ॥
निरुपमु होइ प्रवेसु दीसई ए रुवडला धवलहर ।
तिहां अच्छइ कुमरविहारु रुअडऊ ए रुअडुला जिणभुवण ।
तीर्थंकर तीह वंदेवि वंदिऊ ए सयंभू आदिजिणु ।
दीठउ वेणिवच्छराजमंदिरु ए मेदनीउरि धरिउ ।
अपूरवु पेषिउ संघु उत्तारिऊ ए पइली तांडि समुदला ए ॥ ५ ॥

द्वादशी भाषा

अजाहरवरतीरथिहिं पणमिउ पासजिणिंदो ।
पूज प्रभावन तहिं करहिं ।
अजिउ ए अजिउ ए अजिउ सफल सुछंदो ॥ १ ॥

गामागरपुरवोलिंतो वलिउ सेतुजि संपत्तो ।
आदिपुरीपाजह चडिऊ ए ।
वंदिऊ ए वंदिऊ ए वंदिऊ ए मरुदेविपूतो ॥ २ ॥

अगरि कपूरिहिं चंदणिहि मृगमदि मंडणु कीय ।
कसमीराकुंकुमरासिहिं अंगिहिं ए अंगिहिं ए अंगो अंगि रचीय ।
जाइवउलविहसेवत्रिय पूजिसु नाभिमल्हारो ।
मणुयजनमुफलु पामिऊ ए ।
भरियऊ ए भरियऊ ए भरियऊ सुकृतभंडारो ॥ ३ ॥

सोहग ऊपरि मंजरिय बीजी य सेत्रुजि उधारि ।
.....ठिय ए समरऊ ए समरऊ ए समरु आविउ गुजरात ।
पिपलालीय लोलियणे पुरे राजलोकु रंजेई ।
छडे पयाणे संचरए राणपुरे राणपुरे राणपुरे पहुचेई ॥ ४ ॥

वढवाणि न विलंबु किउ जिमिउ करीरे गामि ।
मंडलि होईउ पाडलए ।
नमियऊ ए नमियऊ ए नमियऊ नेमि सु जीवतसामि ।
संखेसर सफलीयकरणु पूजिउ पासजिणिंदो ।
सहजुसाहु तहिं हरषियउ ए ।
देषिऊ ए देषिऊ ए देषिऊ फणिमणिवृंदो ॥ ५ ॥

डुंगरि डरिउ न खोहि खलिउ गलिउ न गिरवरि गव्वो ।
संघु सुहेलइ आणिउ ए ।
संघपती ए संघपती ए संघपतिपरिहिं अपुव्वो ॥ ६ ॥

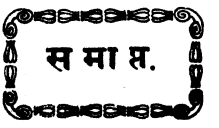
सजण सजण मिलीय तहिं अंगिहिं अंगु लियंते ।
मनु विहसइ ऊलटु घणउ ए ।
तोडरू ए तोडरू ए तोडरू कंठि ठवंते ॥ ७ ॥

मंत्रिपुत्रह मीरह मिलिय अनु ववहारियसार ।
संघपति संघु वधाविय उ ।
कंठिहिं ए कंठिहिं ए कंठिहि घालिय जयमाल ।
तुरियघाटतरवरि य तहि समरउ करइ प्रवेसु ।
अणाहिलपुरि वद्धामणउ ए ।
अभिनवु ए अभिनवु ए अभिनवु पुन्ननिवासो ॥ ८ ॥

संवच्छरि इक्कहत्तरए थापिउ रिसहजिणिंदो ।
चैत्रवदि सातमि पहुत घरे नंदऊ ए नंदऊ ए नंदऊ जा रविचंदो ६
पासडसूरिहिं गणहरह नेऊअगच्छनिवासो ।
तसु सीसिहिं अंबदेवसूरिहिं ।
रचियऊ ए रचियऊ ए रचियऊ समरारासो ।

एहु रासु जो पढइ गुणइ नाचिउ जिणहरि देइ ।
श्रवणि सुणइ सो वयठऊ ए ।
तीरथ ए तीरथ ए तीरथजात्रफलु लेई ॥ १० ॥

॥ इति श्रीसंघपतिसमरसिंहरासः ॥



जैन साहित्यका नवीन प्रभाकर

जैन जाति महोदय—(प्रथमखण्ड)

[लेखक-मुनिवर्यश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज]

जिस पुस्तकके लिये सारी जैन समाज टकटकी लगाए बैठी थी, जिसके लिये लोग दस वरसोंसे प्रतीक्षा कर रहे थे उस ग्रंथका प्रथम खण्ड बड़ी सजधज के साथ छपकर आज तैयार है।

इस ग्रंथमें भगवान् महावीरसे ४०० बर्ष का इतिहास बड़ी खोज और परिश्रम के साथ लिखा गया है इसमें पूर्व बंगाल, कलिंग, मगध, महाराष्ट्र, नेपाल, मरुधर, मालवा, सिन्ध, कच्छ, पञ्जाब बगेरहका इतिहास तथा महाजन संघ—ओसवाल, पोरवाल और श्रीमाल आदि जातियोंकी उत्पति व वृद्धिका सोंगोपांग वर्णन किया गया है। इसके अलावा महाजन संघ के दानीमानी नररत्नोंकी वीरता, उदारता का सच्चा इतिहास इसमें विस्तारसें लिखा गया है।

इस विषयपर इतनी बड़ी पुस्तक ऐसी सरलभाषामें पहले प्रकाशित नहीं हुई। पुस्तकको पढ़ना शुरु करनेके बाद आपका जी पुस्तक छोड़ना नहीं चाहेगा। चित्र इतने अधिक संख्यामें बढ़िया आर्ट पेपरपर दिये गये है कि आपका चित्त चित्र देखकर अति प्रसन्न हो जावेगा। पृष्टसंख्या १००० से अधिक है। दो तिरंगे चित्र तो निहायत बढ़िया हैं ४१ चित्र ईकरंगे हैं। पुस्तककी जिल्द रेशमी है।

ऐसे बड़े ग्रंथका मूल्य दस रुपये रखना चाहिये था परन्तु प्रचार की गरजसे सिर्फ ४) चार रुपया रखा गया है टपाल खर्च दसआने। अभी आर्डर लिखदीजिये क्योंकि पुस्तकें सिलकमें बहुत थोड़ी रही हैं और मांग बढ़ रही है। दूसरा संस्करण निकलना बहुत मुश्किल है।

जैन आगमोंका मक्खन

शीघ्रबोध—२५ भाग

[लेखक—मुनिवर्य श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज]

जैनधर्मके सिद्धान्त और तत्व आज सारी दुनियामें प्रसिद्ध और प्रशंसनीय हैं। परन्तु सारा साहित्य सूत्र रूपमें है जो सिर्फ बड़े धुरंधर पंडितोंसे ही पढ़ा जासकता है।

उन महा उपयोगी सूत्रोंके लाभसे वंचित रहनेवाली साधारण जनता के लिये मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराजने बड़ी भारी महनत करके सूत्रोंका अर्थ ऐसी सरल भाषामें दिया है कि मामूली पढ़ा लिखा मनुष्य भी बहुत आसानी से समझ सकता है।

अगर आपको जैन आगमोंका सार आसानीसे चखना है। अगर आपको गागरमें सागर भरना है तो जरूर इस ग्रंथको मंगाकर अपने घरको पवित्र और शोभायमान कीजिये। इस एक ग्रंथमें दुनियाभरके तत्वज्ञानका निचोड है। जैनधर्म के जिज्ञासु बालकों और स्त्रियोंके लिये तो यह ग्रंथ एक सरल पथप्रदर्शक है।

कई साधु साध्वियोंने इसकी उपयोगिताको स्वीकार किया है। ऐसा कोई भी जैन घर या पुस्तकालय नहीं रहना चाहिये जिसमें यह उपयोगी ग्रंथ ९ हो

मूल्य भी सिर्फ ९) रखागया है। अब बहुत ही थोड़े सेट रहगये हैं अतः अगर आपने अबतक इस ग्रंथको नहीं देखाहो तो जरूर आर्डर देकर वी. पी. द्वारा इस ठिकानेसे मंगालीजिये—

जैन ऐतिहासिक ज्ञानभंडार—जोधपुर।

जैन सिद्धान्त के दो अमूल्य रत्न

कर्मग्रंथ

सरल हिन्दी अनुवाद सहित

(अनुवादक—श्री मेघराजजी मुनोहित—फलोधी)

जैन धर्मकी कर्म फिलासफी बहुत प्रमाणिक और तथ्य है । आचार्य देवेन्द्रसूरिने इस मूल ग्रंथको ऐसी खूबीसे बनाया कि सारा संसार उनकी तारीफ करता है । ऐसे उपयोगी ग्रंथको हिन्दीके सरल अनुवाद सहित प्रकाशित करके रत्नज्ञान प्रभाकर पुष्प-मालाने जैन साहित्यकी अच्छी सेवा की है । प्रत्येक धर्मप्रेमीसे अनुरोध है कि इस ग्रंथकी एक प्रति मंगाकर अवश्य पढ़े इस पुस्तकमें कर्म प्रकृतियोंके स्वरूप, कर्मबंधनेके हेतु, स्वरूप स्थिति अनुभाग आदि आदि बहुत रोचक ढंगसे लिखे गये हैं । आध्यात्मिक विषयको सरलतासे समझाने के उद्देशसे ज़रूरी ज़रुरी यंत्र भी दियेगये है पृष्ठ संख्या १२० । न्योछावर चार आना मात्र

नयचक्रसार

सरल हिन्दी अनुवाद सहित

(अनुवादक—श्री० मेघराजजी मुनोहित—फलोधी)

इस ग्रंथमें देवचन्द्रजी महाराजने षट्द्रव्य और स्याद्वादके स्वरूपका प्रतिपादन अति सुबोध ढंगसे किया है । इस छोटेसे ग्रंथमें न्यायप्रियता के साथ अन्य दर्शनि-योंका निराकरण करते हुए जैन सिद्धान्तों और तत्वोंका समुचित विवेचन किया गया है । यह तर्क विषय ग्रंथ अतीव उपयोगी समझकर अति सरल हिन्दी भाषामें मूल सहित प्रकाशित किया गया है । पृष्ठ संख्या १४४ न्योछावर सिर्फ ८ आने । एक प्रति प्रत्येक धर्मप्रेमी के पास होना ज़रूरी है । इस पतेसे आज ही मंगवालीजिये—

जैन ऐतिहासिक ज्ञान भंडार—जोधपुर ।

हमारी दो सामयिक पुस्तकें

" राजस्थान संदेश " अजमेरकी सम्मति–

अर्द्ध भारतकी समस्या

लेखक श्रीनाथ मोदी जैन । प्रकाशक श्री रत्न प्रभाकर ज्ञान पुष्प माला पो० फलौधी (मारवाड़) । पृष्ट संख्या ३२ कागज छपाई सुन्दर । मूल्य तीन आना ।

" प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम भाग में लेखकने स्त्री समाज की समस्यापर अपने विचार प्रकट किये हैं । स्त्रियोंकी दासता, तजन्य बुराइयां और मौजूदा शिक्षा–प्रणाली से पैदा होनेवाली उच्छृखलता पर लेखकने भली प्रकार अपने विचार प्रकट किये हैं । लेखक स्त्रियोंकी मर्यादित स्वतन्त्रता के पक्षपाती हैं । पुस्तकके दूसरे भागमें स्वर्गीय लाला लाजपतराय की ' अनहैपी इन्डिया ' से उद्धर्ण पेश करके पश्चिममें फैली हुई स्त्री समाजकी बुराइयोंका नग्न चित्र दिया गया है । इससे लेखकका तात्पर्य है कि पश्चिमी सभ्यतासे हमें अपनेको बचाए रखना चाहिये । यह भाग मिस मेयोकी मदर इंडियाका मुंहतोड़ जवाब है । पुस्तक पठनीय है । "

उगता राष्ट्र

"लेखक श्रीनाथ मोदी–स्काउट मास्टर सातवीं ट्रुप जोधपुर ! प्रकाशक जैन ऐतिहासिक ज्ञान भंडार जोधपुर । पृष्ट संख्या ३२, साइज गुटका । मूल्य १ आना । कागज छपाई सुन्दर । आधी पुस्तकमें युवकों को सदाचारी, धैर्यवान, वीर और समाज सेवी होनेका उपदेश है । शेष आधी में रुस की बालसेना स्काउटका इतिहास है—कि वह कब और किन परिस्थितियों में स्थापित हुई और उसने रूसके नवराष्ट्र निर्माण के कार्य में कैसी २ सेवाऐं की । पुस्तकका यह भाग युवकों के लिए और विशेषकर स्काउटस के लिये ग्रहणीय है । "

मंगानेका पता—

जैन ऐतिहासिक ज्ञान भंडार—जोधपुर

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी रचित

चार अनमोल रत्न

(१)

जैन जातियोंका प्राचीन सचित्र इतिहास

महाजन संघ स्थापित होनेका कारण बहुत खूबी से लिखा गया है। बीच बीच में ६ फोटू रंगीन बढ़िया आर्ट पेपर पर हैं। परन्तु कीमत चार आना मात्र

(२)

जैन जाति निर्णय

प्रथम द्वितीयाङ्क

अगर आपको प्रत्येक गोत्र का सच्चा इतिहास जानना है तो इस पुस्तकको ज़रूर मंगाकर पढ़िये। इसमें महाजन वंश मुक्तावली की सच्ची आलोचना है।

कीमत चार आना मात्र

(३)

जैन जातिकी वर्तमान दशा पर प्रश्नोत्तर

कई लोग बिना सोचे समझे जैनधर्म और जातिपर कई तरहके झूठे कलंक लगाते है उनका मुंहतोड उत्तर देखनाहो तो इसको ज़रुर मंगाकर पढिये

कीमत तीन आना

(४)

ओसवाल जाति समय निर्णय

विषय पुस्तकके नाम से ही स्पष्ट है। ओसवाल कब हुए इस विषयमें कई मतभेद है। इस पुस्तकमें सब मतोंकी ऐतिहासिक आलोचना की गई है और सिद्ध किया गया है कि ओसवाल जाति कब बनी थी।

कीमत तीन आना

मंगानेका पता—जैन ऐतिहासिक ज्ञान भंडार—जोधपुर।

हानिकारक कुरूढ़िएँ कब मिटेंगी ?

आज सभ्यता के ज़माने में प्रत्येक सुधारक के हृदय में हानिकारक कुरूढ़िएँ खूब खटकने लगी हैं इन को निर्मूल करने का आन्दोलन भी खूब ज़ोर शोर से किया और कर रहे हैं फलस्वरूप कई सुधार हुए पर खेद है कि हमारी मरूभूमि में कई ऐसे भी ग्राम हैं कि जहाँ अविद्या के कारण इस की हवा का स्पर्श तक भी नहीं हुआ, मारवाड़ के गाँवों में अच्छे २ घराना की बहन बेटियें मैदान में ढोल पर नाचती हैं और निर्लज्ज–खराब गीत तो इस कद्र गाती हैं कि सभ्य पुरुषों को सुनते ही शरमाना पड़ता है इन कुरूढ़िओं को मिटाने के लिये ही हमने हाल ही में कई पुस्तकें प्रकाशित करवा के उनका प्रचार किया है जिस से अच्छा सुधार हुआ है अतएव प्रत्येक समाज सुधारक को चाहिये कि इन पुस्तकों को सस्ते भाव से मंगवा के खूब प्रचार करे।

१ शुभगीत भाग पहला मूल्य दो पैसा १०० नकल का रु. २)
२ ,, ,, दूसरा ,, तीन पैसा ,, ,, रु. ४)
३ ,, ,, तीसरा ,, ,, ,, ,, रु. ४)

ज्ञान प्रभावना के लिये जल्दी ही मंगा लीजिये।

मिलने का पताः—

जैन ऐतिहासिक ज्ञान भण्डार
जोधपुर (मारवाड़)

शेष पुस्तकें

मेझरनामा	॥)	प्राचीनगुण छंदावली	
शुभ मुहूर्त्त	≡)	दूसरा तीसरा और चौथा	।=)
जिनगुणमाला प्रथम भाग	≡)	स्तवन संग्रह ९ वा भाग	≡)
द्रव्यागुयोग प्रथम प्रवेशिका	=)	भाषण संग्रह पहला भाग	≡)
,, द्वितीय ,,	=)	भाषण संग्रह दूसरा ,,	-)
सेठ जिनदत्त	=)	मुनिनाम माला	=)
दानवीर झगडूशाह	-)	दो विद्यार्थी	=)
ओसवालजातिका सं. इतिहास	-)	दो मित्र	-)
सुबोध नियमावली	०॥।	धूर्तपंचोंकी पूजा छोटी	०॥
जीवन समस्या (उपन्यास)	।)	मेवाड़ के सपूत	१)

नियमावली

(१) बारह आनेसे कमकी पारसल नहीं भेजी जाती।

(२) डाक और पेकिंग खर्च जुम्मे खरीददार होगा।

(३) पुस्तकों की आमदनी ज्ञानप्रचार में खर्च होगी।

(४) रेलवे पारसलद्वारा मंगानेवालोंको चौथाई कीमत के लगभग पेशगी भेजनी चाहिये।

(५) एक सप्ताह के अन्दर पुस्तकें नहीं पहुंचे तो फिर लिखिये

मंगानेका पता—

जैन ऐतिहासिक ज्ञान भंडार—जोधपुर.

JODHPUR (Rajputana)

